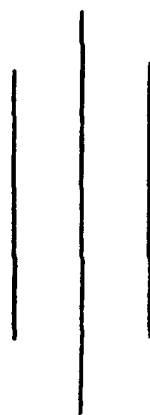


# ‘जंगल का दर्द’ में मानववाद



अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय की एम०फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

तथु शोध-प्रबन्ध



निर्देशक:

डॉ० बुद्धसैन ‘नीहार’

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

शोधछात्रा:

कंचन पाठक

हिन्दी विभाग

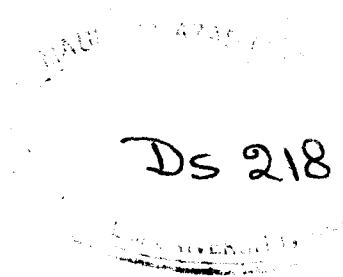
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

१९७९





**DS218**



कलुष

पृष्ठ सं०

कपनी और से

१-३

विषय - प्रवेश

५-२

पहला प्रकरण : सर्वेश्वर दयाल स्वधेना : व्यक्तित्व और कृतित्व

६-३३

( अ ) व्यक्तित्व और कृतित्व: सम्बन्ध और सामंजस्य ।

( आ ) सर्वेश्वर का व्यक्तित्व: विविध वायान

( इ ) जीवन का प्रारम्भिक चरण

( ई ) शिक्षा

( उ ) पत्नी : सामीप्य और सहयोग

( ए ) जीवन-यात्रा

( क ) साहित्यिक वायावरी

दूसरा प्रकरण : मानववाद : स्वधर्म और प्रकृति

३५-६६

( अ ) मानववाद : प्रमुख सम्प्रदाय

( आ ) मानववाद : विभिन्न रूप

( इ ) विवेक मानववाद

( ई ) प्रीति और मानववाद

( उ ) आर्थिक मानववाद

( ए ) सामाजिक मानववाद

( क ) अर्थशास्त्रीय मानववाद

- ( ब ) लेमाण्ट का मानववाद
- ( क ) एकेडेमिक ह्यूमेनिज्म या नव मानववाद
- ( इ ) भारतीय और पारम्परिक मानववाद : तुलनात्मक विश्लेषण
- ( ई ) हिन्दी कविता और मानववाद

तीसरा प्रकरण: ' जगत का दर्द ' में मार्क्सवादी मानववाद

60-113

- ( अ ) मार्क्सवाद : वैचारिक पृष्ठभूमि
  - ( क ) दार्शनिक मौलिकवाद
  - ( ख ) इतिहास की मौलिकवादी व्याख्या
  - ( ग ) वर्ग संघर्ष
- ( आ ) मार्क्सवादी मानववाद
- ( इ ) ' जगत का दर्द ' में मार्क्सवादी मानववाद
  - ( क ) व्यक्तित्व विरोध
  - ( ख ) वर्ग वैरोध और क्रांति
  - ( ग ) सर्वशक्ति की पराधरता
  - ( घ ) ईश्वर : अस्तित्व की मुद्रा

चौथा प्रकरण: ' जगत का दर्द ' में अस्तित्ववादी मानववाद

114-148

- ( अ ) अस्तित्ववाद : दार्शनिक पृष्ठभूमि
- ( आ ) अस्तित्ववादी चिन्तन : सामान्य विशेषताएँ
- ( इ ) ' जगत का दर्द ' : मानववादी परिप्रेक्ष्य
- ( ई ) ' जगत का दर्द ' : अस्तित्ववादी मानववाद
  - ( क ) मृत्युवादी और संन्यास
  - ( ख ) चिन्तन की शक्ति



- ( ग ) आत्म निवासन
- ( घ ) औसापन
- ( ङ ) निरर्घ्यता और निराज्ञा
- ( च ) दाण की व्यवस्था

पाँचवाँ प्रकरण: ' जल का दर्द ' में मानववादी प्रेम-भावना

१५६ — २१२

- ( क ) प्रेम : नये पुराने चरमों से
- ( ख ) ' जल का दर्द ' मानववादी प्रेम-भावना
  - ( क ) वैयक्तिक प्रेम
    - १- प्रेम : दाम्पत्य संबंध
    - २- प्रेम : दाम्पत्येतर संबंध
    - ( १ ) प्रेम : संयोग का आनन्द
    - ( ११ ) प्रेम : वियोगवन्ति पीड़ा
    - ( १११ ) प्रेम बनाम यौनशान्ति
  - ( स ) मानव प्रेम
    - १- जीवट और गरिमायुक्त मानव
    - २- मानव पीड़ा और समस्यार्ह
    - ३- वैदिकों की कस्तीकृति
    - ४- मानव मविष्य के प्रति आस्था
  - ( न ) प्रकृति प्रेम
  - ( ष ) राष्ट्र प्रेम

२१३ — २२१

छठा प्रकरण : उपसंहार

( अ ) ' जगत का दर्द ' के मानववाद का समग्र व्युत्पत्ति

सातवां प्रकरण : परिशिष्ट

२२२ — २२६

( अ ) उपजीव्य ग्रन्थ

( आ ) उपस्कारक ग्रन्थ

( क ) हिन्दी पुस्तकें

( ख ) अंग्रेजी पुस्तकें

( ग ) संस्कृत पुस्तकें तथा कीर्ति

( घ ) पत्र-पत्रिकाएँ

## जपनी और है

मैं नहीं कहूँ कि साहित्य में मुझे जपन से ही राशि थी, कविता में मेरा मन रमता था या नया कविता मुझे बहुत हूँती थी, फकफोरती थी— और मैं ये भी नहीं कहूँ कि सबेरे की कविता ही मुझे बेमेलतम लाती है — क्योंकि यह सब कहना परम्परा-निर्वाह के अतिरिक्त शायद और कुछ न हो । सब तो यह है कि हम० फिल० मुझे करनी थी, विषय ढूँढना था और उसी ढूँढने के अभियान में प्रस्तुत विषय पर तबु शीप- प्रमथ तिलने की अनुमति मुझे किस विधातय से मिली । वहाँ तक विषय का प्ररन है गुरवर डा० बुज्जेन नीहार के सत्परामर्श से प्रस्तुत विषय की रूपरेखा तैयार हुई । यह मेरे फिन्हीं सुम कर्मा का ही प्रतिफल था कि मुझे डा० नीहार जैसे साहित्य-मर्मज्ञ और विद्वान निर्देशक की उपसर्ग्य स्तनी सहजता से हुई । उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहूँ भी तो नहीं कर सकती । आदरणीया धामी की श्रीमती चम्पुबान्ता नीहार ने स्तना अधिक स्नेह और पारिवारिक माहौल दिया है कि यहाँ बाजार- प्रवर्तन से काम नहीं चल सकता ।

महेश डा० पुन स्कम की वृत्त ( विमानाध्यता, हिन्दी - विमान, क० वृ० कि० वि० ) का आजीवाह विमान के प्रत्येक विमावी की प्रसाद रूप में मिलता ही है — मुझे अपना लिखा पुरा-पुरा मिला है । साथ ही विमान अन्य विद्वान गुरुवर्मा का स्नेह और सत्प्रेरणा मुझे मिली रहे हैं — इस प्रसाद, स्नेह और प्रेरणा की स्नेहा पाते रहने का मेरा स्वार्थ ही वयाक्ति है ।

मोक्ष सबेरे वयाव सबेरे रात उनकी सुनी विमा और सुना का अनुभव, वास्तवीय स्नेह और सत्प्रीति मेरी स्वाधी निधि है ।

डा० वेद प्रकाश 'अभिताम' के सहयोग और सत्परामर्शों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। डा० प्रेम कुमार जी से जो कुछ लिया वह पूरी तरह मेरे अधिकारों की सीमा में आता है -- अपने उन अधिकारों के बीच प्रवर्तन की किसी परम्परा की नहीं जाने कुंती। सिर्फ़ इतना ही कहूँगी कि उनके सहयोग के बिना इस कार्य की अथ और इति पूरी तरह अस्मभव थी।

मेरी सम्पूर्ण शिक्षा और इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता का श्रेय मेरे परिचारी-जनों को जाता है जिन्होंने मध्यमगीय सही-मती मान्यताओं और मानसिकता से दूर रहकर मेरी रुचि, स्वास्थ्य और सुविधाओं की पूर्ति करते हुए अध्ययन के लिए एक अच्छा माहौल मुझे दिया। अपनी भिन्न संजना और मनीषा की स्मृति उनकी नाराजी और लहने के मय से जहरी है।

प्रस्तुत त्रु शोध-प्रबन्ध द्वः प्रकरणों में विभक्त है। प्रथम प्रकरण 'सर्वेकारः व्यक्तित्व और कृतित्व' में विवेक्य कवि के जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन करते हुए उन घटनाओं, प्रभावों और प्रेरक शक्तियों को रेखांकित किया गया है जिसे 'जगत का दर्द' के कवि की कविताएँ निश्चित रूप से प्रभावित हुई हैं। दूसरा प्रकरण 'मानववादः संवर्ध और प्रकृति' सेदान्तिक है। इसमें मानववाद पर विभिन्न भारतीय और पश्चात्य मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में विचार करते हुए शोधकार्य की सुगता के लिए अध्ययन की आधार-भूमि निर्मित करने का प्रयास किया गया है। मानववाद के विभिन्न रूपों पर विचार करने के साथ-साथ हिन्दी कविता का मानववाद की दृष्टि से संक्षिप्त मूल्यांकन इस प्रकरण की अन्य विशेषताएँ हैं। तीसरा प्रकरण - 'जगत का दर्द : में मानववादी मानववाद', अध्ययन के व्यावहारिक पक्ष को उजागर करता है। यहाँ मानववाद की वैचारिक पृष्ठभूमि के लिए मानववादी मानववाद को स्पष्ट किया गया है तथा व्यक्त-विरोध, कर्म-वैयर्थ्य और ज्ञानि, सर्वहारा की पक्षधरता, ईश्वरः अवलम्बन की मुद्रा आदि उपजीवनों के माध्यम से 'जगत का दर्द' की कविताओं

का विवेचन किया गया है। चौथे प्रकरण—'कृत का दर्द' में अस्तित्ववादी मानववाद में अस्तित्ववादी मानववाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए विवेच्य कृति की कविताओं को अस्तित्ववादी मानववाद के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत क्रियेणित किया है। 'कृत का दर्द' में मानववादी प्रेम भावना शीर्षक से पाँचवें प्रकरण में प्रेम के सम्बन्ध में विभिन्न माध्यमों और परिवेश को दृष्टि में रखते हुए कवि की मानववादी प्रेम भावना परिचित हुई है। इस प्रेम भावना को वैयक्तिक-प्रेम, मानव-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम जैसे उपशीर्षकों में पर्याप्त विस्तार और गहराई से निरला-परला गया है। अन्तिम प्रकरण में उपसंहार के अन्तर्गत 'कृत का दर्द' के मानववाद का समग्र मूल्यांकन करने के साथ-साथ इस अध्ययन से प्राप्त हुए निष्कर्षों से अवगत कराने की कोशिश की गई है।

अन्त में, विभिन्न स्रोतों और व्यापकताओं से मिले सहयोग के प्रति मैं अदाकर्त हूँ, कृतज्ञ हूँ।

कंचन पाठक  
कंचन पाठक

### विषय - प्रवेश

हिन्दी कविता में हायावाद के बाद जितनी तेजी से कस्तुरी और स्पन्द बढता चला उस सबके पीछे तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का मुख्य हाथ रहा। साहित्य की अन्य क्रियाओं की अपेक्षा हिन्दी कविता में यह बढता बढता पीछे पीछे समय के बाद ही जाता रहा। इसी कारण हायावादी कविता के बाद की हिन्दी कविता की लगभग चार दर्जों आन्दोलनों और कण्ठों के नीचे जबरदस्ती पकने की कोशिश की गई। एक बात और है कि इन असंगत और अतिरिक्त रूप से महत्वाकांक्षी आन्दोलनों और नारों की उम्र भी दिनों, महीनों और बहुत पीछे बर्षों की ही रही। इस सबके विपरीत अपनी उपलब्धियों और संभावनाओं के प्रति आरक्षित करती हुई नई कविता पिछले तीन दशकों से अध्ययन के नये-नये द्वार खोल रही है। वे लोग जो कभी नयी कविता के नाम से विद्वक्ते थे, नाक-मुँह सिकोड़कर उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे, आज उसके कथ्य और शिल्प के विभिन्न अंगों के अध्ययन, अध्यापन और शोध प्रबन्धों के लेखन की अनि-वार्यता पर बल देने लगे हैं। यह सब है कि तमने समय तक खड़ी नयी कविता उन तथाकथित काव्य मर्मज्ञों और समीक्षकों के आसानी से नते नहीं उतरी पर आज विरोध के उस ज्वार के उतर जाने पर उन कट्टर पन्थियों की भी नयी कविता अपनी कथ्यगत उपलब्धियों के आधार पर पूर्वजनों की कविता से अपेक्षाकृत अधिक प्राकाणिक, सामयिक और बहुआयामी लगने लगी है। नये कवियों द्वारा शिल्पगत नवीन प्रयोगों की बहुत संभावनाओं ने उन्हें अपेक्षित महत्त्व देने के लिए विवश किया है। विभिन्न विरह चिन्तनों में नयी कविता पर दूर और हो रहे अनेक शोधकार्य इस दिशा में उत्प्रेरक हैं। नये कवियों में से कई एक पर खल्ल बल-बल शोध-प्रबन्ध तैयार और प्रकाशित हुए हैं तथा अनेक समीक्षा-ग्रन्थ भी उपलब्ध हो चुके हैं।

सर्वेस्वर, जो स्वयं भी नयी कविता के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं, ने लगभग १९५० से काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। जनैकः सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक घटनाक्रम में जाये परिवर्तनों ने किसी एक विधा को नहीं अपितु सम्पूर्ण साहित्य को प्रभावित किया। आम-आदमी के जीवन-क्रम को बदलने प्रभावित करने वाली इन विभिन्न परिस्थितियों तथा भारतीय परिवेश ने ही कवि-मानस को काव्य की पृष्ठभूमि दी।

भारतवासियों को स्वतन्त्रता जैसी अमूल्य वस्तु का जिस रूप में मूल्य चुकाना पड़ा उसने तत्कालीन भारत ही नहीं भावी भारत को भी प्रभावित किया। स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही गान्धी जी की हत्या देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन ऐसे फटके के जिनहोंने एक बारगी सारे स्वप्नों और महत्वाकांक्षाओं को हटाकर दिया। फिर भी वे राजनेता और समाज सुधारक जिन्होंने आजादी की लड़ाई में जमकर संघर्ष किया था, उनके कष्ट भेदों के, भारत के भावी-मानव की प्रतिमा गढ़ने में प्राण-यण से जुटते नजर आये। १९४६ में अपना संविधान तैयार किया गया जिससे भारतीय जनता के मन में स्वर्णिम भविष्य की कल्पनाएं और भी बलवती हो उठीं। शीघ्रित, नरुत और गरुड को एक बार तो यह किरवास ही हो जाता था कि वो सौ बरुणों की लम्बी दासता के बाद अब हम सपनुव आजाद ही नये हैं, अब यह देश हमारा है, इस देश की प्रत्येक वस्तु हमारी है। हमारे दुत, हमारी मुडीकें इस देश की हैं, औररुये राजनेता जो रामराज्य लाने को क्युमें सा रहे हैं वे भी तो हमारे ही हैं, उन्हें हर पांच बरुण बाद चुनने का अधिकार हमारे पास सुरक्षित है। भारतीय संविधान-निर्माताओं ने भारत में धर्म-निरपेक्षा, समाजवादी, लोकतान्त्रिक व्यक्त्वा की स्थापना हेतु अनेक कदम उठाये। संविधान में --- ( १ ) सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय ( २ ) विचार, अभिव्यक्ति, किरवास और धर्म की स्वतन्त्रता ( ३ ) सबकी समान अवसर प्रदान करने और ( ४ ) राष्ट्र की एकता एवं व्यक्त्ति की गरिमा की पुष्ट करने वाले, वन्पुत्व की रीक्षण की

गयी थी । भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री नेहरू के नेतृत्व में भारतवासियों ने गरीबी, अक्षरार्थ, पिछड़ेपन, साम्प्रदायिकता, जातिवाद जैसे पीणाना वाद्यों की सर्जरी के लिये कोसितें प्रारम्भ कीं । देश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के तहत अनेक प्रयत्न हुए। यह बात बाद की है कि ये प्रयत्न फलित हुए, कहां और कब कब हुए ? इन योजनाओं ने निजी उद्योग-धन्यों के साथ-साथ सार्वजनिक या सरकारी रूप में संघालित उद्योग-धन्यों को भी प्रोत्साहन देकर देश की वार्षिक उन्नति में सहयोग दिया । पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने में भारत की सरकार को अनेक वान्तारिक और बाह्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । देश-विभाजन का पाव और साम्प्रदायिकता की लमटों के बाद इन विकास कार्यों में जो सबसे बड़ी बाधा सामने आयी वह बाह्य कम, वान्तारिक अधिक थी । बाह्य बाधाओं के नाम पर चीन ( १९६२ ) पाकिस्तान ( १९६५, ७९ ) के साथ हुए युद्ध, बैल्तिाब जाये शरणार्थी और कई एक प्राकृतिक प्रकोप मुख्य रहे । इन योजनाओं की मन्द गति और असफलताओं का मुख्य त्रैय धन-तोक्ष, सिदान्त-विहीन राजनीतिज्ञों, प्रष्ट और लाभा जाग ही चले तन्त्र को ही जाता है । कार्य-प्रवृत्ति की स्थिति और विकास कार्य के लिए नियमित राशि --सों में से पिचारी केव में हाली की प्रवृत्ति ने विकास मार्ग अवरुद्ध किया । लेकिन फिर भी इन चुनारों, योजनाओं और विभिन्न अभियानों के माध्यम से जो विकास-कार्य हुए उन्हें नकारा नहीं जा सकता । अन्य अपूर्ण और शीर सरावे से युक्त नारों के अतिरिक्त मौक्तिक अधिकार, जमींदारी प्रथा का अन्त, प्रीक्षिपस समाप्ति, बैंकों का राष्ट्रीकरण, शिक्षा, र्ण और कृषि सम्बन्धी अनेक पीणानाओं जैसे कुछ महत्वपूर्ण कदम भी उठाए गए ।

जाबाद भारत की प्रगति और अवनति दोनों के लिए भारतीय राजनीति और राजनीतिज्ञों को दोषी ठहराया जाता रहा है, जो किसी एक तक सब भी है । नेहरू के बाद आत बहादुर शास्त्री के प्रधानमन्त्री कात तक काँग्रेस केन्द्र और राज्य स्तर पर एक महत्वपूर्ण पार्टी मानी जाती रही लेकिन शास्त्री की



के बाद इस सर्वाधिक पुरानी और संगठित पार्टी के चरमरा जाने से देश के समुह-व्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हुई, विकास-कार्यों में बाधा पड़ी, देश-सेवा के जाने वाले कांग्रेसी मन्त्री और नेता कुठ, प्रष्टाचार, बेईमानी, रिरक्तारी, अनेतिक्ता, माई-मंजीबावाद, दल-बदल, पदसीसुप्ता के शिकार हो गये। विघटन पर विघटन होते गये और पार्टी की शक्ति निरन्तर घटिण होती चली गई। लोकतन्त्र में जिस प्रमाणी और सबलपदा की आवश्यकता पर और दिया जाता है, देश के राजनीतिज्ञ भारतीय संसद में अपनी सुश्रुतम हरक्तों और घृण्यतम कृत्यों के कारण -- वह विपदा जनता को न दे पाये। सीमित और व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए लड़ाईयाँ होती रहें, धन, छण्डा और जाति के आधार पर वोट जुटाये जाते रहे और हर बार भारतीय मतदाता को ऊपर से सुन्दर लाने वाले नारों के जरिये बेकतूफ बनाया जाता रहा। शासक-पदा विकास-कार्यों का गान्धी, समाजवाद और लोकतन्त्र की दुहाई देकर अतिरिक्त प्रचार करता रहा और अनेक घटकों में बंटा विपदा वाला और कान भुंद कर असहयोगी मुद्रा अपनाता रहा। एक - दूसरे को बनाने के लिए इन दोनों पदों ने आवश्यकतानुसार हिंसा और बराज्जतावादी ताक्तों का भी निस्संकोच उपयोग किया। स्थानीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर बितरी विभिन्न छोटे-छोटे राजनीतिक-दलों के एकीकरण की समस्या पर मौलिक विचार होता रहा पर भारतीय राजनीति गुटों में बंटी रही। द्वितीय पक्षि भारतीय जनता के चाहने पर भी न का सकी। कांग्रेस का कई बार विभाजन हुआ। आपातकाल के बाद चुनाव में प्रथम बार यह लगा कि जगह जगह बितरी भारतीय राजनीति फिर एक जगह हो गई है, लेकिन यह भी एक क्रम ही साबित हुआ। चार पार्टियों के विलय के बाद नयी जनता पार्टी में घटकवाद के फलस्वरूप हुआ विभाजन इसका उदाहरण है। इस तरह भारतीय राजनीति निरन्तर सिद्धान्तविहीन होती गई और राजनेता सिर्फ पद लौह। राष्ट्र और मानविक के प्रति ऐसा कुछ भी शेष नहीं रहा। सरकारों को बनाने-निराने की प्रक्रिया चलती रही। देश नरुणाई बेरोजगारी, आर्थिक संकट के दौर से गुजरता रहा। पर अपनी लड़ाईयों में उसके

राजनीतिज्ञ झूठे वायवों और नारों के क्लावा कीड़ और स्थायी विकल्प देश की जनता को न दे पाए ।

सन् १९६० तक आते-आते सामान्य नागरिक और बुद्धिजीवी जो सब तक स्वतन्त्रता के व्यामोह में फंसे थे, अनुभव करने लगे कि उनका वे कल्पनाएं और उनका मोह सत्य नहीं है । ज्यों-ज्यों मर्याद, गरिबी, बेकारी, साम्प्रदायिकता, प्रभुवाद, अनुशासनहीनता, प्रसूतीरी, चौरबाजारी, मायावाद, जातिवाद, प्रान्तीयता, माई-पत्नीवाद, धार्मिक - असन्तुलन और वादों, विवादों और जीवन-मूल्यों में आये भ्रमण टकराव के दबाव की देश के नागरिक और साहित्यकार ने अपने ऊपर महसूस किया त्यों-त्यों मोहभंग, निराशा, क्लेश, कूटा और फिर आक्रोश की मूर्छाएं उस पर हावी होती गईं । यह युग अस्तौषा और क्लेशकार का युग रहा । चूंकि युवापीढ़ी इस वेदना, टूटन टकराव और विखंडितियों की सर्वाधिक शिकार रही क्लेश और क्लेशकृति और विरोध का किशोर भी क्लेश पीढ़ी के द्वारा बनाया गया ।

'जगत का दर्द' का कवि साठौत्तरी भारत के सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक परिवेश से प्रेरित-संभावित है। अपने युग की विषम परिस्थिति और अन्तर्विरोधों के मध्य की रहे मानव की समस्याओं, समस्याओं और रिक्तताओं ने कवि-मानव को उद्देक्षित किया है। क्लेशमय प्रगति, मरकर क्लेश-सूत्रों का आविष्कार, बीबीबीकरण, महानगरीय सभ्यता, मूल्यों की टकराव, चारित्रिक एवं नैतिक पतन आदि से उत्पन्न परिस्थितियों से प्रभावित और परिभाषित होने के कारण ही सामाजिक कविता में कवियों द्वारा मानव की तत्त्व बनाकर समस्याओं की हल करने की चेष्टा मिलती है। सर्वेस्वर और उनके अन्य अनेक समकालीन कवि कविता के माध्यम से प्राचीन मान्यताओं से मुक्त होकर नवीन मानववादी सिद्धान्तों और विचार-स्वातन्त्र्य के प्रति आस्था व्यक्त करते नजर आते हैं। आज का कवि मानवता के ऐसे व्यापक-सौन्दर्य-वीथ का हामी है जो मानव जीवन की समग्र यथार्थता का अंज वन जाये । संयोजक: क्लेश सामाजिक कविता से या क्लेश की शारदा और सावैदिक साहित्य ने अन्तराष्ट्रीय मानववादी दृष्टि की अवस्था अनपेक्षित नहीं है ।

पहला प्रकरण

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : व्यक्तित्व

वीर

कृतित्व

.....

: सूक्ष्म वयात सन्धेना : व्यक्तित्व और कृतित्व :

.....

व्यक्तित्व और कृतित्व : सम्बन्ध और सामंजस्य :-

“कलात्मक रचना का मूल व्यक्तित्व ही है।.....व्यक्तित्व ही जीवन-वस्तु को कलारूप में परिणत करता है।”<sup>१</sup> इसीलिए सभी कलाओं के क्षेत्र में कलाकार की कृति को उसके जीवन-सूत्रों से जोड़ने का प्रयत्न ही गया है। डा० रामवरण मिश्र ने साहित्य की व्यक्तित्व का प्रदीपण माना है।<sup>२</sup> मनोवैज्ञानिक सौत्रों के आधार पर पाश्चात्य वादियों ने साहित्य के अध्ययन के लिए उसके सर्जक के जीवन-अध्ययन को आवश्यक माना है। आधुनिक युग में, हिन्दी क्षेत्र में भी साहित्य का अध्ययन —साहित्यकार के जीवन-क्रम, व्यक्तित्व और परिस्थितियों के संदर्भ में किया जाने लगा है। हिन्दी में सम्प्रदायः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम काव्य और कावे जीवन के सम्बन्ध को ‘त्रिवेणी’ के माध्यम से स्वीकारा। ‘त्रिवेणी’ में शुक्ल जी ने कबीर, सूर और जायसी की जीवन-स्थितियों के प्रभाव की उनकी कृतियों में देखा। उसके बाद से हिन्दी साहित्य में भी व्यक्तित्व और कृतित्व की पारस्परिक सम्बद्धता को स्वीकारने की परम्परा चल पड़ी। डा०

१- सीताधर गुप्त - पाश्चात्य साहित्यालोचना के सिद्धान्त : पृ० ६४ ।

२- “हर प्रबुद्ध सर्जक अपने युग का प्रबुद्ध चेतता होता है। उसकी संवेदना अपने में नवीन तत्त्वों को समेटती रहती है। अतः जब वह सर्जन करता है तब उसके व्यक्तित्व में आत्मसात सारी परम्परानत और नवीन-चैतन्य अपने आप व्यक्त होती रहती है।”

डा० रामवरण मिश्र - आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि:

: पृ० १९ ।

संसार पाण्डेय साहित्य की कवि का व्यक्तित्व कही है ।<sup>1</sup> विविध ऐसी उद्धरण संसार के प्रसिद्ध कलाकार के दृष्टिकोण की उसी व्यक्तित्व की प्रतिबिम्बता मानते हैं । उनके अनुसार कलाकार की सामाजिक प्रतिक्रिया पर उसी व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य पड़ा है । प्रत्येक कलाकार अपने आन्तरिक गुणों और वाह्य परिवेश के अनुसार ब्रह्म करता है । जो भी प्रभाव पाण्डेय साहित्य की व्यक्तित्व के आन्तरिक गठन की वाह्य परिणति मानते हैं ।<sup>2</sup> अपने आन्तरिक संस्कारों और वाह्य-परिस्थितियों से प्रभावित होना व्यक्तित्व की मजबूती है । उसी अन्याय और अन्याय की ये प्रभाव उसी व्यक्तित्व की विविध मोड़ लेती रहती हैं और व्यक्तित्व के इन मोड़ों के अनुसार ही साहित्य में विविध-प्रवृत्तियाँ, उतार-चढ़ाव आते हैं । विद्वानों ने कृतित्व के संदर्भ में व्यक्तित्व की जगह महत्वपूर्ण स्थान दिया है कि वाच्य व्यक्तित्व की कृतित्व की बीजनी-सक्ति के रूप में स्वीकारा जाता है । व्यक्तित्व की उपेक्षा करके कलाकार की कृति को समुचित विज्ञा नहीं की जा सकती । 'दूसरा सप्तक' के प्रतिष्ठित कवि समीर महादुर सिंह भी यह स्वीकारते हैं कि कलाकार के शौक, रुचियाँ आदि पारिवर्तिक गुण उसे विशेषतः प्रभावित करते हैं ।<sup>3</sup> क्योंकि किसी कला की समीक्षा करने से

१- "वाह्य कवि का व्यक्तित्व होता है ।"

डा० संसार पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की प्रक्रिया : पृ० ३१५ ।

२- "Art is life seen through a temperament, for the mirror which the artist holds to the world about him is of necessity the mirror of his personality."

William Henry Hudson: An Introduction to the study of Lit.

३- "साहित्य व्यक्तिकरण की अभिव्यक्ति है ।" (महाप्राण निर्दोषता : पृ० १५ )

४- "कलाकार के जाती शौक और उनकी अपनी साहस विस्मयस्थितियों की उसका रूप निहारने और संवारने में जाने - अनजाने तीर से नजर करती हैं ।"

समीर महादुर सिंह - दूसरा सप्तक ( खंड जीव ) : पृ० ८७ ।

पूर्व उन्हीं उन्हीं कलाकार के जीवन- विप्लवों का परत अनिवार्य रूप ही बाधा है ।  
नवी कविता के प्रकाश जीव कलाकार के साथ उसकी परिस्थितियों का विशेष  
सम्बन्ध मानते हैं —

“ साहित्यिक ——— जीव की कलाकार ——— अनिवार्य रूप है  
अपनी परिस्थितियों का परिणाम होता है । वह अपने साथ- पाठ व्याप रहे संघर्ष  
का फल है । उन्हीं आत्मनस्तिक सम्बन्धन नहीं है , न कभी ही समझा है । साहित्य-  
कार होने के नाते ही वह प्रयत्न है , अस्वस्थ है , अस्वस्थ है । उसकी यही अस्वस्थता  
और अस्वस्थता उसकी धरती बाते बाहरी संघर्ष का भीतरी प्रतिरूप है । साहित्य-  
या कवि की कलात्मक रचना-दृष्टि ——— वह मौलिक संघर्ष का प्रतीक है, उसे हल  
करने के लिए कलाकार के प्राणों का उत्कट प्रयास है । ” १

सर्वेस्वर का व्यक्तित्व : विविध आयाम :-

काव्य और व्यक्तित्व के सम्बन्धों की व्यापकता की देखी हुई  
आवश्यक ही जाता है कि ' काल का दर्द ' के मुल्यांकन से पूर्व उन्हीं रचना- कवि  
या सर्वेस्वर दयालु समझना के जीवन और व्यक्तित्व से परिचित हुआ जाये ।

जीवन का आरम्भिक चरण :-

समय- समय पर उच्च - साहित्यिक विप्लवों की कल्पने बाते  
बस्ती मिले के अत्यन्त दूरिद तथा पिछड़े हुए गाँव ' पिछोरा ' में १५ दिसम्बर  
१९२७ को सर्वेस्वर दयालु समझना का जन्म हुआ ।

उनके पिता श्री विदेस्वर दयालु सिंह अत्यन्त स्वच्छन्द प्रवृत्ति के  
व्यक्ति थे । उन्होंने एल० एल० सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी ।  
आजीवनिकीपानी के प्रति वे अत्यन्त आकर्षित थे । वैदिक-यौग्यता के आधार पर  
वे तत्कालीनवार का सही थे लेकिन उनकी स्वच्छन्द- प्रवृत्ति ने किसी कल्पन की स्वीकार

नहीं किया। जीवन निर्वाह के लिए कम की आवश्यकता के लिए उन्होंने कभी पितृ की दुकान नहीं छोड़ी, कभी फीटिंग-कारो करने की और कभी रेशम का काम, किन्तु इन विविध व्यवसायों में वे किसी एक में भी अपना मन नहीं लगा। अन्त में कुछ पितृ के सहयोग से उन्होंने एक पाठशाला की स्थापना की और उसके प्रशासकीय विधियों का कार्य - भार स्वयं सम्भाल लिया।

ये अत्यन्त प्रीति प्रवृत्ति के थे अतः उनके बच्चों को उनके उत्साह और प्रेरणा कम, बहुत आलोचनाएं ही अधिक मिलीं। ये बाईं समाजी विचारधारा अनुयायी तथा माथीबाद से विशेषतः प्रभावित थे। सन् १९५७ में ये विज्ञान की मर्ये।

उनकी माता जीन्सी सीमास्थानी देवी मुम्बकरपुर की रहने वाली थीं। ये कस्ती की एक कच्चा पाठशाला में अध्यापन कार्य करती थीं। उनकी शिक्षा - दीक्षा कार्य कच्चा महाविद्यालय जालन्धर में हुई। ये अत्यन्त विदुषी महिला थीं। संस्कृत का उन्हें विशेष ज्ञान था, संस्कृत धाराप्रवाह बोलती थीं। ये अत्यन्त ज्ञान, सीमा तथा महत्वाकांक्षी महिला थी। उनका सारा जीवन अस्वास्थ्य और वार्षिक विपदाओं के साथ बूझते हुए बीता। अत्यन्त धैर्य और शास्त्र के साथ ये परिस्थितियों से लड़ी रहीं। परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति सर्वेकार की अपनी माता से ही मिली। अपनी मां के प्रति उनकी विशेष मन्त्रा है। उनका प्रथम काव्य संग्रह 'काठ की पीटिया' अपनी मां की स्मृति है। 'मां की स्मृति' में लिखी गयी उनकी कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :-

“ एक मैं ही हूँ

जि मेरी छाँक कुल है

एक मेरी दीप मैं ही बत नहीं है

एक मेरी छाट का विस्तार नम छा

व्यों कि मेरी छीन पर काँपत नहीं है। ”

**हिता :-**  
=====

सर्वेदार की प्रारम्भिक हिता कस्ती के एक नवनिष्ठ हाई स्कूल में हुई। यहाँ में ये साधारण ही थे। कस्ती कारण यह भी था कि ये पाठ्यक्रम में अपनी रुचि न लेते थे किसी पाठ्यक्रम से स्तर साहित्य में। स्कूली जीवन में पूरा प्रेमपूर्ण और शरत्पूर्ण साहित्य कन्होंने पढ़ लिया था। विवाही जीवन से ही ये कस्तीर लिखने लगे थे। प्रारम्भिक कस्तीर देश-प्रेम सम्बन्धी होती थी। जब ये नवी कदा में थे तब एक बार स्कूल से निष्कासित कर दिये गये थे क्योंकि कि कन्होंने अपनी सभा-ठियों के प्रान्तिकारी दल का नेतृत्व -भार सम्पादित किया था और उनके स्वदेश प्रेम सम्बन्धी कार्य प्रिटिब - सरकार की दृष्टि में वराजस्ता और अनुशासन-हीनता। परन्तु सत्यप्रिय, विप्रीही, मुक्त सर्वेदार की यह प्रताड़ना अपने पथ से विनश्वित न कर सकी। वे निरन्तर देश-प्रेम से जीतप्रति काव्य का सुवन करते रहे। यह ही एक प्राकृतिक नियम है कि किसी प्रवाह पर यदि जंझु लगाया जाय तो वह उतना ही अधिक प्रसर होकर फैलता है --- यही सर्वेदार के साथ भी हुआ। स्कूल-प्रशासन ने निष्कासन द्वारा उनकी सामाजिक, राजनीतिक चेतना को बनाना चाहा किन्तु इस जंझु से उनकी यह भावनाएं और अधिक प्रसर ही उठीं।

सन् १९५१ में कस्ती के गैर सरकारी स्कूल ऐंग्लो संस्कृत हाईस्कूल से सर्वेदार ने हाईस्कूल की परीक्षा पास की, तत्पश्चात् वे बनारस जा गये। उनकी माता ने भी अपना सहायता यही करवा लिया। बनारस में कस्ती के मुहल्ले "कनार गीरे" पर, मां के हीस्टल के सामने ये एक कमरा लेकर रहने लगे --- यहीं से संघीय और नृत्य के प्रति उनकी रुचि जागृत हुई, जो आज भी उही प्रकार है।

बनारस के 'नवीन - काचित' से कन्होंने कम्प्यूटरीसाइन्स की परीक्षा पास की। सन् १९५४ में ये अपने एक मित्र श्री महेन्द्र प्रताप सिंह के साथ कलाहावाद जा गये। बी० ए० और एम० ए० की परीक्षा कन्होंने कलाहावाद युनिवर्सिटी से पास की। अर्थात्कारण के कारण ये दुरुस्त करके उस पनराशि से अपने अध्ययन क्रम की जारी रख ली।



पत्नी : दानीय्य और सहयोग :-

=====

जर्जर के वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ सन् १९४७ में हुआ । उनकी पत्नी का नाम सीमा सावन्नी देवी था जो विवाहीचरणों बदलकर विनता देवी बन बिवाह गया । नाम के अनुसार ही ये स्वभाव से अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल तथा हस - कपट से रहित थीं । ये अधिक शिक्षित नहीं थीं , केवल हाईस्कूल पास थीं । उन्हें मध्यमवर्गीय कुछ परेड महिलाओं का प्रतीक माना जा सकता है । ' तिमटा रवाई में ' हीरा के कपड़ा में उनका यह रूप सामने आता है । यहां ' छप की फटर - फटर में तीन ' परेड समस्याओं में उसकी हुई स्त्री का चित्र उपस्थित है जो शिक्षा के अभाव के कारण पैदा उठाकर तरकारी ताने तथा नहाने - धोने के काम की सिलने - पढ़ने तथा काव्य सुनने से अधिक महत्वपूर्ण मानती है । ये मध्यमवर्गीयस्त्रियों की तरह आला - आलापों के उतार - चढ़ावों से निरन्तर घिरी रहती थीं । अपने परिवार में निहित आर्थिक अभावों और संघर्षों की झंझटें पर्याप्त धैर्य और सहनशीलता के साथ केती । अभावों से ग्रस्त पत्नी की

१- " मुझसे अच्छी तुम ही --

तुम उठा तुम्हीं सब बाबत फटके हासे ,

+ + +  
+ + +

तुम की फटर - फटर

' अम्मा - बापा की रट

मुझसे कहती है --

बाक है , कपड़ा है हट,

पैदा उठावी , बाकी ----

तरकारी तानी ,

आपिश का समय ही गया है ,

नहावी , धाबी ,

वह सब सिना-पटना कलना-बिताव है । "

जर्जर गया - कपटारं - १ : पृ० ७७ ।

कलकल कर पंक्तियों में मिलती है :—

“ दूर कहीं

मुझे खोजी फिरते मेरे रीते हुए

बच्चे की बाबाब बाती है

और मेरी पत्नी

रखी है घर की फीकी बीमार रीति में बैठी

मेरी प्रतीक्षा करती दीस जाती है । ” १

फीकी बीमार रीति बीमारों और बच्चावर्ग से उत्पन्न घुटन की प्रतीक है । अपने पति की रचनाक्रम में प्रवृत्त रहने के ना और कोई शिक्षा-शिक्षा न करना इनका बुनियादी स्वभाव था , फिर भी भावनात्मक स्तर पर समझी - ना समझी के तनाव अवसर सर्वेश्वर की प्रविष्टि की ककमकीरती रहती थे , जो अन्ततः उनके रचनाक्रम से बूझ जाते थे । ‘सुशानिन का नील ’ में पारम्परिक रीति-रिवाजों में बंधी हुई परम्परा तथा ‘पति परमेश्वर’ के कहने मुहावरे की अपारतः स्वीकार करने जाती स्त्री का जो चित्र कवि ने खींचा है वह सम्पन्न : उनकी पत्नी का ही चित्र है ।<sup>२</sup>

१६ वर्ग के वैवाहिक काल में उन्हें दो पुत्रियाँ -- विमा, शुभा की प्राप्ति हुई ।

समशीलता, धैर्य और मादुलता की प्रतिरूपा उनकी पत्नी का ४ सुताई १६६६ की हृदयस्थिति तक जाने से अन्तर्मुखिक निष्पत्ति हो गया । ‘पत्नी की मृत्यु पर’

१- कविताएं - १ : पृ० १८० ।

२- हवाई पर पड़ते दीप जलाने की मुकामी  
सुझी की की बावली खाने की मुकामी  
+ + + + +  
कलकली पर बस, फूटत दीप पर जाने की,  
परणामुक्त बाकर ठाकुर कीका खाने की ,  
यह हूनी-हूनी छाँक उदासी का वासन  
में बहता अनन्त पति नहीं जाना वासन । ”

कविताएं - १ : पृ० २४ ।

जीवनक कविता अपनी सीधी सुविधायाँ के कारण वात्सीयों के व्यवहार पर सिद्ध  
नयी एक नैतिक उपलब्धि है — कुछ सीधे इस प्रकार है :-

पर के सब बाकी कामों में

बौद्ध नयी ही दुब एक शिलासेक भी मैं हूँ ;

नहीं भी दुम्हारी मृत्यु है ।

भी दुम्हारी मृत्यु है

यही मैं हूँ.....। \* \* \*

**जीवन - यात्रा :-**

इसका साँवला बदन, लौटी गहरी बाँहें, उसके बिखरे बाल, लौठी  
में नयी हुयी ही मुझमें और साधारण रक्त - सक्त — यही सर्वेश्वर का वाक्य  
रही है । बदन नीच पातकीय रीति पर बापके पिता ने एक मजान बनवा लिया था,  
वहीं बना प्रारम्भिक जीवन बीता । उनके परिवेश में एक और दूर दूर तक फैले हुए  
जैसे और ताताय में झुकी और मजान की कत में स्थित जनाधामन था । दरिद्र  
कच्चाई लीन तथा जनाधामन के बच्चे उनके व्यवसाय के साथी थे । इन बच्चों के साथ  
उठते- बैठते, खेलते- खेलते हुए कठिनाई के विषय ज्ञातायुक्तों की परतें उनके मन में जमी  
रही, उही का तावा उनके साहित्य का जनक है । 'जीवरा सप्तक' में उनकी  
प्रारम्भिक परिस्थितियों का परिचय इस प्रकार दिया गया है —

“ लौ की पैड़ी, पर के पास स्थित जनाधामन के बच्चों के बलावा  
बापके प्रेमण है उत्पन्न कलह की व्यवसाय के साथी रहे । ” अतः कठिनाई और संघर्ष  
जीनों का अनुभव हमें विरासत में मिला । प्रारम्भ से ही ये नवीर और सत्य प्रवृत्ति  
के हैं । वात्सीयों में जो कुछ लैली की कविता झुकी की लैली हुए देना हम  
अधिक प्रिय था । स्थितियों के सुख-विरोधता की सामता हमें वहीं से बाँध ।

अर्थ - लौट तथा पिता के वात्सीय जीपी स्वभाव के कारण उनके परिवार  
का वातावरण कठिनाई का । ऐसे वातावरण में हमें अपने माइयों तथा पिता का  
स्नेह विलुप्त नहीं मिला । परिवार में स्नेह का सम्मान जित उनकी माँ की ।

प्रकार उनका सेंटन पिता के जति अनुशासन तथा माता के जति - स्नेह ----- उन की जतियों के बीच विकसित हुआ । इस विकास में एक और पिता की ताड़नाएँ बाधक थीं तो दूसरी और आर्थिक संकट ।

सर्वेस्वर जिन्ही का-कालान्तर, बाद उसका पारा से जानें प्रभावित नहीं है जितना अपने जीवन की परिस्थितियों से । उनका जन्म एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ । आजीवनिकीपार्षन के प्रति पिता की तापरवाही ने परिवार की आर्थिक संकट से कमी भी उबरने नहीं दिया । जीवन के प्रारम्भ से ही उन्होंने एक और आर्थिक-वैयम्य की देखा तो दूसरी और उन परिस्थितियों से निरन्तर झूकती हुई अपनी माँ की देखा । माँ की प्रेरणा से ही उस वैयम्य से निरन्तर टकराने की प्रवृत्ति इनमें आयी । इन परिस्थितियों ने सर्वेस्वर की निम्न मध्यम काँ से तपाकार कर दिया । इस तपाकारिता ने सर्वेस्वर की साहित्य सृजन के लिए विषय-वस्तु प्रदान की ।

उनका विषाधी-जीवन-काल विविध आन्दोलनों का काल था । पूरे देश में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एक आग मड़क रही थी । जिसके ताप ने विषाधी काँ की ही सर्वाधिक आक्रान्त किया । चन्द्रशेखर आजाध, मगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों का प्रभाव उन पर विशेषतः पड़ा । क्रान्तिकारियों के 'सीक्रेट बुक्स' पढ़ना उनका शौक था । जयपन के इस शौक की प्रतिक्रिया आपातकाल के दौरान 'जीजी कम्बरा रे , सु तो लोक्तन्त्र की राणी ' तथा 'आन ला धी , आन ला धी , रावाजी के प्याऊ की ' --- जैसी व्यंग्यपरक और उत्तेजक कविताएँ लिखने के माध्यम से हुई।

जीवन के प्रारम्भ में जिस व्याभाव की उन्होंने देखा था , वह सबैव उनके साथ रहा । कठोर साहित्य साधना के पाणों में भी बीच-बीच में - आर्थिक-संकट सबैव उनका साथी बना रहा । आर्थिक स्तर की बरकरार रखने के लिए उन्होंने दूसरों की तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे । अजीवनिकीपार्षन के प्रति ये भी अपने पिता की तरह तापरवाही का रास अपनाते रहे । जहाँ भी उन्होंने अपनी नियति की एक डीरे में बस्ता मजबूत किया वहाँ ये भाविष्य की चिन्ता किये बिना कीर्ड न कीर्ड संजीव निणय ले बैठे , क्योंकि जिन्ही एक नौकरी में बंध कर ये नहीं रह सके । उनके साहित्य से अनुमान रखने वाले एक एकाउन्टेन्ट क्लरक ने ( जी काई० एच० टी०

के लक्ष्यता भी थे) उन्हें हस्ताशब्दाद बुला लिया और २० बी० लाफिंस में बसों की नौकरी पर नियुक्त किया। वहाँ उन्हें इस प्रकार का काम दिया कि किसी उन्हें साहित्य सुकन के पर्याप्त समय मिलता रहे। कुछ वर्ष उपरान्त उनकी स्वच्छन्दता की यह नौकरी काफी प्रतीत हुई परिणामतः अन्य कोई वार्षिक श्रुति न होती हुए भी इन्होंने नौकरी छोड़ दी और कुछ ही वार्षिक संघर्षों की पुनः गति लगा लिया।

२० बी० लाफिंस की नौकरी से त्यागपत्र देने के बादजैय जी ने उन्हें दिल्ली बुलाया और लाकाशबाणी के हिन्दी समाचार विभाग में सुपरवाइजर पद पर उनकी नियुक्ति करायी। सन् १९६० तक ये समाचारों के अनुवादक के रूप में कार्य करते रहे। सन् १९६० से ६३ तक लाकाशबाणी तत्तनऊ में साहित्यिक कार्यक्रमों के सहायक - प्रोड्यूसर पद पर कार्य किया। लाकाशबाणी दिल्ली, तत्तनऊ के कार्य काल में उन्हें निरन्तर विरोधों, संघर्षों से टकराना पड़ा लेकिन ये उन सबसे अवगत मोर्चा लेते रहे। सन् १९६३ में ये लाकाशबाणी तत्तनऊ की नौकरी छोड़कर मोपास जा गये - यहाँ ये सिर्फ जाठ महीने रहे। सन् १९६४ में 'दिनमान' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। जैय जी के वागृह पर पुनः दिल्ली जा गये और दिनमान के प्रमुख उपसम्पादक बना लिये गये। तब से ये इसी पद पर कार्यरत हैं।

सर्वेस्वर के जीवन पर उनकी विदेश-यात्राओं का बहुत प्रभाव पड़ा। १९६६ में 'भारतीय संस्कृति मण्डल' के लक्ष्यता होकर ये नेपाल गये। सन् १९७२ में 'सोवियत लेखक संघ' के निमन्त्रण पर इन्होंने इस और कजाकिस्तान की यात्रा की। 'बुद्ध रंग बुद्ध गंध' में इन्होंने अपने यात्रा-संस्मरणों की संजीवा है। विदेशी जीवन पर विचरते हुए भी सर्वेस्वर देश - प्रेमी कात्मा अपने ही देश से जुड़ा रहा -

“विदेश यात्रा के लिए कोई भी लक्ष्य मेरी मन में नहीं रहा  
बल्कि अपना देश ही न देश पाने की इत्तानि ही मन में लक्ष्य बना रहा।.....  
..... इस यात्रा में हर समय मेरा देश मेरे साथ चिपका रहा और जगवाहे भी  
वहाँ का हर प्रसंग देश के किसी न किसी प्रसंग से जुड़ा जाता था और मन बिना  
कुछ देखकर सुनी से भरता या उतना ही उबास ही जाता था।”

सर्वेवर किसी धार्मिक अथवा राजनीतिक आचार्य के अनुयायी नहीं ।  
 उनके पिता कार्यन्वाही विचारधारा के थे लेकिन उन्हें ऐसी किसी विचारधारा की  
 कतिब्याप्ति नहीं मिलती । यों पीछा बहुत प्रभाव प्रत्येक धारा का सीना था सकता  
 है । सर्वेवर के व्यक्तित्व को नहने में किसी धार्मिक, राजनीतिक धारा का नहीं  
 बल्कि उनके जीवन का और परिस्थितियों का ही विशेष हाथ रहा । समय-समय पर  
 उनकी परिस्थितियों में मोड़ और बदलाव आते रहे लेकिन जिस एक स्थिति में उन्हें  
 सर्वाधिक अस्त और प्रभावित किया , वह है जीवन के प्रारम्भ से अनवरत व्याप्त  
 आर्थिक संघर्ष और कष्ट । यही कारण है कि वे अपने साहित्य में पूजापाति और  
 शीघ्रत-वर्ग की बात सर्वाधिक करते हैं और क्यों कि ये दुर्लभ परिस्थितियों के प्रति  
 जागरूक कलाकार हैं अतः : वर्ग - वेद को मिटाने के लिए लड़ाई और लड़ाई के विभिन्न  
 स्तरों पर ही उनके साहित्य में मिलती है । इस लड़ाई में वे अनायास मार्क्सवाद से मुड़  
 गये हैं क्यों कि मार्क्सवादी चेतना ही उन - चेतना और जन-शक्ति के सर्वाधिक  
 करीब है ।

सर्वेवर प्रारम्भ से ही अस्मिता-शील हैं । सुनना अधिक, बोलना कम उन्हें  
 प्रिय है । प्रथम घेरे में ये कुछ अव्यावहारिक लगते हैं लेकिन फिर जल्दी ही सुल जाते  
 हैं । सरलता , निष्कपटता और स्पष्टवादिता — उनके व्यवहार के प्रमुख गुण हैं ।  
 एक महत्वपूर्ण परिवर्तन उनके स्वभाव में आया है — प्रारम्भ में ये भिन्न मण्डली से दूर  
 रहना पसन्द करते थे लेकिन अब भिन्न बनाना , भिन्नों के बीच में बैठना उनका विशेष  
 शौक है । यद्यपि उनका नाम्नीय सर्वेद उन पर हावी रहता है जिसके कारण भिन्न  
 बीच भी बहुत झुत्तर खींचा — बोलना उनके लिये सम्भव नहीं हो पाता । इस नाम्नीय  
 के लिए उनकी परिस्थितियाँ ही विन्नीवार हैं । घर के कठोर अनुशासनमय वातावरण  
 तथा आर्थिक संघर्षों ने उन्हें शान्त, गम्भीर और अन्तर्मुखी बना दिया । सर्वेवर  
 कुछ निजी गुण हैं , जो उन्हें कवियों की पीढ़ से अलग लड़ा कर देते हैं । सर्वप्रथम गुण  
 उनकी आन्तरिक मानवीय संवेदना है । तबु मानव की बात करना आज एक फैशन हो  
 गया है । आज का प्रत्येक साहित्यकार तबु मानव की बात करके स्वयं की कामान-  
 प्रसन्न हो बोलता पाता है । अधिकांश कवि मानव के इस रूप की मान फैशन-वस्तु  
 के लिए अपनाते हैं । मानवीय लक्ष्य और हीनता के साथ उनकी संवेदना आन्तरिक

और खप्पी नहीं होती। सर्वेश्वर को ये सबेचना कबरकस्ती बाँड़ी हुई नहीं है। इस मानसिक्ता को उन्होंने अपने जीवन के प्रारम्भ से मीना है। उनकी दृष्टि में यह सबेचना वर्तमान युग की आवश्यकता है।<sup>१</sup> अपनी इस मानवीय सहानुभूति को उन्होंने बृहतापूर्वक स्वीकारा भी है। ———

" I stand by the side of this man in his suffering. On the level of sensibility I am the common man ..... " <sup>2</sup>

निर्मयता उनकी दूसरी चारित्रिक विशेषता है। इसके कारणही ये जीवन के प्रारम्भ से आज तक बिट्टीही बने रहे हैं। जो सत्य है उसे निडर होकर कह देना वे आवश्यक समझते हैं। उनकी मान्यता है कि "सभी व्यक्ति सत्य विचारों से ही जाते हैं।" <sup>३</sup>

सर्वेश्वर के व्यक्तित्व की सहजता और स्वाभाविकता — उन्हें अपने पाठकों, मित्रों और प्रशंसकों पर कबजा सम्पर्क में जाने वाली अन्य लोगों पर अत्यन्त

---

१- " 25 years after gaining independence the common man finds himself even more run-down in every respect. All have deceived him in their own interest. He is fed-up with those in power and with political -parties. He has lost his faith in every-body. High-prices and poverty have ruined him. For him there is no way of keeping alive and carrying on ."

Sarveshwar Dayal Saxena -- South Asian Digest of

Regional writing. P. 88.

२- Ibid.

३- वही - तीसरा अंक : पृ० २०६ ।

बनकर हा जाने से रोकती है।<sup>1</sup> व्यवहार की यह स्वामाभिव्यक्ता और परीक्षण उनके साहित्य की भी अनिवार्य विशेषता बन गये हैं। उनकी भाषा, शैली और विषयवस्तु जितनी सहज है, प्रतीक उपमान और बिम्ब उतनी ही स्वामाभिव्यक्ति है। कहीं वे वर्णन को कर्पा करते हैं, कहीं बारा महीन उठा लेते हैं, कभी 'प्लेटफार्म' का किङ्ग करते हैं तो कभी अगरवास्तियों, रसीर, फाँसी आदि के प्रतीकों द्वारा अपने काव्य की नितान्त परीक्षा बना लेते हैं। उनके साहित्य की पढ़ी हुई ऐसा मसूस होता है कि बिम्बकी की पीढ़ में पीढ़ी-मानते उन्होंने जो कुछ देखा, मसूसवा— उसे कविता का विषय बना दिया। रोज़मर्रा की जिनकी में जीवों की उठा-धरा करते हुए ही किसी भी वस्तु को अपने बिम्ब, प्रतीक आदि के रूप में चुन लिया है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि जब जो अनुभूति उन्हें हो, उसे वे तुरन्त अभिव्यक्त कर लेते हैं। बल्कि पहले वे उसे अपनी बुद्धि से परिपक्व करते हैं फिर भाव और बुद्धि का सामन्त्य करने के उपरान्त उसे व्यक्त करते हैं — इस कायास के बाद भी अपनी सहजता, इनके साहित्य की आवश्यकतक उपलब्ध है।

जीवन के प्रारम्भ से जो पीड़ाएँ उन्होंने कहीं, उन्हें— उनसे उन्हें सृजन के लिए विषय-सामग्री मिली। ये उन पीड़ाओं को चुपचाप बरदास्त करने वालों में से नहीं है अपितु उनसे मुक्ति के लिए छटपटाते हैं और उनके निवारण के लिए कड़ा संघर्ष करते हैं। इसीलिए इनका साहित्य भीरुता या कायरता का समर्थन नहीं। वह तो अपने पाठकों को संघर्ष और विद्रोह करने को लिए बदाय उर्जा प्रदान करता है। उनका साहित्य शीघ्रितः— मानव की सच्ची-अनुभूतियों का मैनाफेस्टो है। इनकी कृतियों में शीघ्रिता की आकाशवाणी, अमिताभार है साथ ही तानाशाहों की आहुरी प्रवृत्तियों की कुपत देने के तरीके हैं, कर्मता पर सच्चाई और स्मानकारी की, राक्षसत्व पर रामत्व की विषय की ध्वनियाँ हैं — जो मनुष्य की बहुत गहराई तक प्रभावित करती हैं। ये ध्वनियाँ शीघ्रिता के जीवन की संवाक्य हैं, सम्बन्ध हैं। . . : प्रत्येक युग का व्यक्तिगत इन ध्वनियों को सर्वत्र संगीत कर रहेगा। इस सार्वकालिकता कारण सर्वेवर का साहित्य जीवित है, नतिहीन है — अतः अमर है।

1- " I am ordinary and want to remain ordinary, I do not want to settle-down as a terror."

Sarveshwar Dayal Saxena- in Asi Digest of Regional Writing.



उनका जीवन स्थितियों से स्पष्ट है कि बचपन के पारिवारिक परिवेश ने उन्हें सपन-निरीक्षण की शक्ति दी, गाम्भीर्य दिया — युवावस्था में उन्होंने सामाजिक स्थितियों की कैसा और काय अन्य मध्यमकालियों की भांति उन्हें सामाजिक वैराग्य से गुजरना पड़ रहा है, तानाशाहों के हाकण्डों से टक्कर लेनी पड़ रही है।

स्वतन्त्रता से पूर्व अन्य भारतीयों की तरह ये भी आजादी की सांस लेने के लिए छटपटाये थे। उन्होंने भी आजादी के बाद के रंगीन सपनों को संजोया था — किन्तु आजादी के बाद उन्होंने देखा — एक अंतः<sup>प्रति</sup> व्यवस्था है, असमानता है, असन्तुष्टि है। जहाँ सुखार मेड़िए है, काँसे तेंदुए हैं — जो अपनी कीमियाबीरी के उस्ताद हैं। इस अंत की दस्त लेने के बाद उनके सपने टूट टूटकर बिखर गये। टूटे सपनों की फिर से सजाने-संजोने के लिये ये कैलाशा की ढोई-भागे बहुत हाथ-पैर मारे लेकिन असफल रहे। अन्त में छाह, निराह, पीड़ित सर्वेश्वर ने सामाजिक-व्यवस्था की व्यवस्थित करने के लिए दूसरा मार्ग पकड़ लिया। 'ग्रान्ति' का मार्ग। उनकी 'ग्रान्ति' मात्र व्यक्तिगत उन्नति के लिए नहीं है। अपितु पूरे समाज से सम्बन्धित है। उसका लक्ष्य है सामाजिक उत्थान। जीवन के, संसार के जिस जीवन में भी उन्होंने खूँटवायिता या संकीर्णता देखा वहीं उनकी निमीके आत्मा संघर्ष करने के लिए व्याकुल हो उठी यही कारण है कि उनकी प्रत्येक कविता का मूल स्वर विद्रोही है — चाहे वह कविता प्रेम की हो, राजनीतिक, आर्थिक संश्लेषण की, या सामाजिक विस्मृतियों की, उसके मूल में विद्रोही स्वर ही विशेषतः पनप रहे होते हैं। इस विद्रोह का उद्देश्य है — मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा। यह पीढ़ा और विद्रोह कवि की अपनी पीढ़ी है —

On the level of sensibility

1

I am the common man. "

कवि ने स्वीकार किया है कि उनकी संवेदना 'कामन मैन' की संवेदना है। उनकी काव्य का प्रमुख उद्देश्य — मानववाद की प्रतिष्ठा करना है, मानव की स्वयं में

---

1. Sarveshwar Dayal Saxena - South Asian Digest of Regional Writing. P. 88 .

निश्चित ऊर्जा से परिचित कराना है क्योंकि कि इस ऊर्जा के ताप से ही उपेक्षा-  
 कर्त के कार्यवाही का नीलापन शुरू होगा । सर्वेस्वर इस कर्त के प्रति स्वीकार अधिक  
 सुविधानशील है क्योंकि कि उनका निजी व्यक्तित्व इस कर्त के बीच नष्ट गया है । इस  
 कर्त के साथ जुड़कर ही उनके व्यक्तित्व की मक्तिव्यता और सार्वजन्यता सिद्ध हो  
 सकती है । १

### साहित्यिक यायावरी

एक प्रसिद्ध कहावत है कि "Coming events cast their shadows before." यथातः भविष्य के पाण और  
 घटनाएँ अपना कामास पहले ही दे देती हैं । सर्वेस्वर का साहित्यिक व्यक्तित्व भी  
 इनके विद्यार्थीकाल में ही कलकत्ता लगा । जब ये मात्र १२ वर्ष के थे तब १९३६ के  
 'कार्यभित्र' में उनकी पहली कविता छपी । इस कविता पर बन्धन जी की काव्य  
 शैली का प्रभाव है । कार्यभार और तत्कालीन राष्ट्रीय मान्यताओं के प्रभाव स्वतः  
 ये देश प्रेम की कविताएँ लिखने लगे । इन कविताओं की ये प्रायः अपनी कथा में  
 पढ़कर सुनाते थे । नवी कथा में ये देश प्रेम की कविताओं के सुवन के कारण ब्रिटिश  
 प्रशासन द्वारा विघातय से निष्कासित कर दिये गये । तत्पश्चात् ये बनारस आगये ।  
 बनारस आकर इन्होंने कविताएँ लिखना बन्द कर दिया क्योंकि कि कविताओं में उनकी  
 राष्ट्रीय भावनाएँ सख्त रूप से प्रस्तुति होती थीं । ब्रिटिश शासन के दौरान  
 इन भावनाओं के प्रकाशन का निश्चित परिणाम था — उनकी माँ की नौकरी हट  
 जाना, जिसका सीधा अर्थ था — पुनः वार्षिक संकट का आ जाना । किन्तु  
 कविताएँ लिखना छोड़कर इनके भीतर का सच्चा आत्मनिष्पत्ति के लिए छुटपटा रहा था  
 किन्तु : इन्होंने कहा कि दिया की अपनी अभिव्यक्ति का वाक्य बना लिया । उनकी  
 कहानियाँ प्रवाद की की कहानियों का अनुकरण प्रतीत होती हैं । प्रवाद की

"If through my poetry I can communicate the suffering of the  
 common-man of my country, of my world, I shall be satisfied,  
 for this will mean to me no less than that in this century  
 I have proved my existence."

Serve war Dayal Sa a- u Asi Dig st of Regional Writing

कहानियों जैसी रोमानी भावबुल्लता और संस्कृत-निष्ठ भाषा उनकी कहानियों में मिलती है। कालिदास में उनकी कहानियाँ विशेष रूप से पद्यों की जाती थीं। कहानियों पर उन्हें विभिन्न पुरस्कार भी मिले। अपने एक वनिष्ठ मित्र श्री महेश्वर प्रताप सिंह के कारण सर्वेश्वर साहित्यकारों के सम्पर्क में आये। 'साहित्य भिन्न' पत्रिका में उनकी प्रथम कहानी 'दिलिज के उस पार' प्रकाशित हुई। अपनी पहली कहानी से ही उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की और उत्कृष्ट कथाकार के रूप में चर्चित हुए। उनकी अधिकांश कहानियाँ में मानव सम्बन्धों विशेषतः प्रेम-सम्बन्धों की विषयवस्तु का आधार बनाया गया है। इस प्रकार साहित्य सृजन का जो बीज बस्ती में पड़ा था, बनारस आकर उसकी जड़ों में स्थायित्व और गहराई का गया। बनारस में ही सर्वेश्वर के प्रथम किशोर - प्रेम में लगे रहने का, परन्तु जाति-वैभिन्य के कारण वह उन्हें प्रेम में असफल होना पड़ा। इनके प्रथम काव्य संग्रह 'काठ की घंटियाँ' में जिस प्रणय-वैराग्य और अवैतन्य का भाव है उसका मूल कारण सम्बन्धित : उपर्युक्त असफलता ही है। वद, निराशा, धुटन और सामाजिक परम्पराओं के विद्रोह की भावना इनमें यहाँ से आयी -

“ व्यर्थ उनकी बाधना है

हूना जो चाहते हैं तुम धीरे में ,

कहाँ तक उनकी संमालीने मला

मानते जो लड़ियों के तंग धरे में ? ”

प्रेम की असफलता ने सर्वेश्वर के व्यक्तित्व में कुछ अन्य परिवर्तन भी किये -- वे अधिक चिन्तनशील तथा अन्तर्मुखी हो गये। मना का एकान्त किनारा और एकता का मोहना और वह उन्हें आकर्षित करने लगे। जन-सम्पर्क से दूर एकान्त में वे घंटों विचारमग्न होकर बैठे रहते थे। इस मनःस्थिति का प्रभाव उनकी कहानियों पर पड़ा। उनकी प्रायः प्रत्येक कहानी की विषयवस्तु सच्ची है, कोई कल्पना पर आधारित कहानियाँ उन्होंने नहीं लिखीं। विन्वनी की जिन अनुभूतियों से वे उस दौरान गुजरे, उन्हीं की अपनी कलम का आधार बना लिया। अधिकांश कहानियों में जीवन का अनुभूत - सत्य अनुभूत है।

स्ताहाबाद प्रवास के दौरान इन्हें 'परिमल' का सत्य बना लिया गया। 'परिमल' उस समय हिन्दी का सबसे बड़ा साहित्यिक संस्था थी। इसमें सर्वेस्वर की कहानियाँ पढ़ी जाती थीं तथा बर्ना बॉर प्रहंसा का विनय बनती थीं। इस संस्था से उनकी साहित्य-यात्रा को विशेष गति मिली। इस गति ने साथ ही उनका साहित्यिक व्यक्तित्व निरन्तर प्रसर होता गया। स्ताहाबाद में अध्ययन के दौरान ये 'संजम' पत्रिका में लेख लिखते रहे।

सन् १९४६ में इण्डियन-नेशनल-थियेटर शाखा की स्थापना हुई जिसके नाटक-विभाग के ये सचिव रहे। इन्होंने कुछ नाटक लिखे जिनका सफल मंचन भी हुआ। उन नाटकों की उस समय काफी चर्चा रही। इनका प्रकाशित नाटक एकमात्र 'बकरी' है। यह एक सशक्त राजनीतिक व्यंग्य है जिसमें राजनीतिज्ञों और पुलिस कर्मियों की प्रभुता पर उंगली रखी गयी है।

ए० जी० आफिस की नौकरी के कार्यकाल में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। काव्य सर्जना के जिस सूत्र को ये ब्रिटिश सरकार की पाबन्दियों के कारण छोड़ लाये थे उसे पुनः अपने हाथ में ले लिया। इस बार कवि जीवन का पुनरात्म बहुत तेजी के साथ हुआ। सन् १९४६ से १९५५ तक इन्होंने 'काठ की धंटियाँ' संग्रह की सभी कविताएँ लिख ली थीं। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रेम, निराशा, दर्द, घुटन आदि की अभिव्यक्ति मिलती है। यहाँ कवि ने हस्ता की है :—

“जि मेरे इस मकान के कहीं किसीकोने में  
एक झोटा सा कमरा ऐसा भी रखने दो,  
+ + + +  
जहाँ मैं कभी हँसूँ — हँसूँ थक जाने के बाद जाकर  
किसी छतारने कपड़े से  
अपनी नीली आँखों की पीछ सँभूँ।”

सर्वेस्वर साहित्य-सृजन की अपना उद्देश्य मानती हैं। रचनाओं की व्यवधानों के प्रति उनकी व्यक्तता कभी नहीं रही।<sup>१</sup> साहित्य सृजन के प्रारम्भिक चरणों में ये केवल सृजन में रत रहे उसे प्रकाशित करवा कर यत्न छूटने की भावना इनमें नहीं थी।

सन् १९५० में इनकी मुलाकात सुबित्यात लेखक ज्ञेय जी से हुई। इस कला-पारसी ने सर्वेस्वर की प्रतिभा को परख लिया। एक दिन स्वयं ज्ञेय इनके घर जाकर इनकी कविताएँ ले गये और 'प्रतीक' जैसी सुप्रतिष्ठित पत्रिका में उनकी प्रशंसनीय स्थान दिया। इन कविताओं की जानकारी ने प्रत्येक सुधी पाठक को आकर्षित किया। शनैः-शनैः ये साहित्य जगत के सुपरिचित कलाकार और नयी कविता के लयिष्ठाता कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।<sup>२</sup>

१- "मैंने जब लिखना शुरू किया तब मुझमें आस नहीं थी। सालों रचनाएं पड़ी रहती थीं। रचनाएं बिना मागे में किसी पत्रिका में भेजता भी नहीं था। जब सम्पादक भांगते थे तभी भेजा था..... राजनीतिक विचारों के तहत जो लघु पत्रिकाएँ निकलती हैं उनमें समर्थक कवि की रूप भी जाती हैं बाकी कवि बड़ी पत्रिकाओं से टकराते और चोट खाते रहते हैं। मेरा ख्याल है कि यह अपमानजनक स्थिति नये कवि को स्वीकार नहीं करना चाहिए। अपने परसक वक्रा लिखते जाना चाहिए। कभी न कभी रास्ता निकलेगा ही।"

सर्वेस्वर क्यात सन्सेना - प्रकाशन समाचार : दिसम्बर १९७८ ।

२- (अ) नयी कविता की पहचान जहाँ से शुरू होती है, वहाँ सर्वेस्वर की कविताएँ हैं।"

डा० रामस्वरूप कटुबेदी - नयी कविता नये सादय : पृ० १७ ।

(ब) सर्वेस्वर उस बिन्दु के कवि हैं जहाँ प्रयोगवाद का वृत्त नयी कविता के वृत्त का स्पर्श करते हुए उसमें समाहित होता हुआ दिखार देता है। वे मुक्तिवादी से शुरू होने वाली सप्तकीय परम्परा के अन्तिम कवि हैं। किन्तु नयी कविता में उनका स्थान प्रारम्भिक ही है।" डा० जगदीश गुप्ता - कवितान्तर : पृ० १४४ ।

(स) कस्तुर : सर्वेस्वर की कविता प्रयोगशील काव्य के इस नये मोड़ का प्रतीक है। उसने प्रयोगशीलता को वहाँ से प्रवृत्त किया है वहाँ से वह काव्य की नयी भावधामियों में प्रवेश करती है।" डा० रघुवंश - विवेक के रंग : पृ० ११ ।

जैसे, लम्बीकान्त का, विजयदेव नारायण साही, रामस्वरूप चतुर्वेदी तथा रघुवंश सहित विद्वान् वासीचनाओं ने इनकी कविताओं की बहुत कुछ प्रशंसा की। इन प्रशंसाओं के समानान्तर ही एक लम्बा-चौड़ा कर्म इनके वासीचनाओं का था। लेकिन सर्वेभर उन वासीचनाओं से अप्रभावित रहकर साहित्य सुख में लगे रहे। वासीचनाओं के प्रति कवि का मानसिक दायिम कहीं कहीं फूट पड़ा है :—

“ फूट रख की समझ थी ते जी मेरी कमजोरी

जैसा कीहं थी लगी तक न यहाँ पर जाया । ”<sup>१</sup>

अपनी वासीचनाओं की शान्त रहकर केत जाने की विशेषता उनके व्यक्तित्व की समाज में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देती है। वे सिर्फ लम्बी वासी-चनाओं के प्रति सहृदय ही नहीं रहते बल्कि अपनी कमजोरियों की स्वयं ही गिनवाते चलना भी नहीं मुक्त। तीसरा सप्तक<sup>२</sup> में उनके द्वारा दिया गया अपना परिचय इसका उदाहरण है।<sup>३</sup> उनके इस चरित्रिक गुण से प्रसिद्ध इसी कवि लल्लुपट्टर सेन्यादिव की बहुत अधिक प्रभावित हुए :—

“ Sarveshwar Dayal Saxena, is not afraid of showing himself to be absurd, not very pleasant and even ridiculous. He is natural in his sincere eagerness to be himself always and in all circumstances. ”<sup>3</sup>

१- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कविता - २ : पृ० २१ ।

२- “ स्वभाव न अच्छा, न बुरा ; बाहर से गम्भीर सीम्य पर भीतर वैसा नहीं ; विपत्ति, संघर्ष, निराशाओं से अनिष्ट परिचय के कारण बहुरत पढ़ने पर तरि बात कहने में सकते जाने ।..... काहिती, सुस्ती, सोचना अधिक करना कम, अपनी सीक पर चलना और किसी की परवाह न करना; ये कुछ मुख्य चीज हैं — दूसरों की दृष्टि में । ”

तीसरा सप्तक : पृ० २०६ ।

३- सीधिका तिरीवर -(सन् १९७२) : पृ० १६७ ।

आकाशवाणी दिल्ली और सतलुज के कार्यक्रमों में अनेक विरोध और संघर्ष इनके सामने आये, लेकिन अपरिचित सक्ति और धैर्य के स्वामी सर्वेस्वर बिना टूटे, बिना मुड़े इन संघर्षों से झुकते रहे। इनका बहुधा नामता बान व्यक्तित्व मीनण संकटों, संघर्षों के बावजूद मो टूटा नहीं, सत्य का सम्मत लेकर तना रहा। 'बांस का पुत' की कवितारं वही टूटने-सलने की स्थिति में लिखी गयी। बांस का पुत धैर्य, साहस और नामता से युक्त व्यक्ति अपना स्वयं कवि के व्यक्तित्व का प्रतीक है।

१६६३ से ६६ के बीच उन्होंने 'एक सूनी नाव' की कवितारं लिखी। सूनी नाव एक और कवि के एकान्त जीवन की और संकेत करती है, दूसरी ओर उस एकान्त में भी नूतन - पथ की खोज निकालने वाली कवि की सामर्थ्य का परिचय देती है।

अजय जी के आग्रह पर ये दिल्ली आगये। दिल्ली जाने पर उन्हें पत्नी की मृत्यु के कारण जीवन का सबसे भारिक वाघात लगा। पत्नी की मृत्यु पर लिखा इनका शोकगीत अपनी अनुभूति की तीव्रता और भाविकता के कारण हिन्दी के शोकगीतों में अति श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

“उन्नीस वर्ष”

उन्नीस सन्ध्यों का इतीक तो नहीं

जो कण्ठस्थ ही जाये

जिसे अपना मैं उबर जाऊँ.....।

+ + + +

मविष्य सिक्कीला जा रहा है मेरी पीठ

और मुकाता जा रहा है मेरे कन्धे

जाती पहाड़ बनाते- बनाते

मैं आकस्मिक से नाव बनाता जा रहा हूँ।”<sup>६</sup>

पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उनका चौथा काव्य संग्रह 'गर्म हवाएं' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ उनकी राजनीतिक कविताएं सामने आती हैं :—

“जब मैं कवि नहीं रहा  
एक काता कण्ठा हूँ  
तिरपन करौं मोहों के बीच  
मातम में तड़ा है मेरी कविता।”<sup>१</sup>

कुछ कविताएं उन्होंने भारत - पाक युद्ध से प्रभावित होकर भी लिखीं। 'कुछ रंग कुछ गंध' उनकी इस यात्रा के संस्मरणों का संग्रह है। इसके विषय में प्रकाशक ने पक्षेप पर लिखा है — “प्रथम खण्ड - कुछ रंग - में यात्रा क्या और दूसरे खण्ड-कुछ गंध में काव्य यात्रा है..... दोनों को मिलाकर जो तस्वीर उभरती है वह वाये दिन हिन्दी में लिखे जाने वाले यात्रा संस्मरणों से पूर्णतया भिन्न है।”<sup>२</sup>

‘जीत का दर्द’ उनका नव प्रकाशित छठा काव्य संग्रह है। गर्म हवाएं में राजनीतिक विपरीत की जो भावना कलमुलायी थी वही यहाँ स्पष्ट और तीव्र स्वरों में सुन्नर हो उठी है। इस संग्रह के दो खण्ड हैं जो क्रमशः कवि की बाह्य यात्रा और अन्तर्यात्रा का प्रतिफल है।

सर्वेकार जी की साहित्य यात्रा की विशिष्ट उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं :—

१- काव्य संग्रह :- ‘काठ की पंक्तियाँ’, ‘बांस का पुत’,  
‘एक सूनी नाव’, ‘गर्म हवाएं’,  
‘कुछानों नदी’, ‘जीत का दर्द’।

२- उपन्यास :- उड़े हुए रंग ।

१- सर्वेकार क्यात समझना - गर्म हवाएं - संग्रह के प्रारम्भ में।

२- सर्वेकार क्यात समझना - कुछ रंग कुछ गंध के पक्षेप पर।



३- लघु उपन्यास :- 'सौया हुआ जल'  
'पानल कुत्तों का महीरा'

४- कहानी संग्रह :- 'तड़ाई'  
'बधिर पर बधिरा'

५- नाटक :- 'बकरी'

६- बात नाटक :- 'पों पों, लों लों'

७- बात कवितारं :- 'कूता का कूता'  
'मलंगू की टाई'

८- यात्रा-संस्मरण :- 'कुड़ रंग कुड़ गंध'

९- सम्पादन :- 'समक्षर'

'काठ की पांटियाँ' और 'बांस का पुत' इन दो संग्रहों की रचनाएं 'कवितारं-१' के रूप में तथा 'एक सूनी नाव' और 'गर्म हवाएं' की रचनाएं 'कवितारं-२' के रूप में पुनः प्रकाशित की गयी हैं।

इस प्रकार सर्वेश्वर के व्यक्तित्व की चारित्रिक विशेषताएं ही उनके साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में उभर कर आयी हैं। एक विशेषता जो बहुत कमपन से उनकी भिन्नता है वह है उनका राष्ट्र प्रेम। कार्यभारानी संस्कारों और नान्दीवादी प्रभावों ने इन्हें पूरी निष्ठा के साथ अपने राष्ट्र से जोड़ दिया। कहीं-कहीं राष्ट्र प्रेम का भाव उनकी प्रत्येक कृति में अनिवार्यता : भिन्नता है। उनका कवि सर्वत्र राष्ट्र के प्रति समर्पित है। उसके राष्ट्र की समस्यायें उसकी अपनी समस्यायें हैं वह उन समस्याओं को करीब से देखता- समझता है और उनके लिए चुकता भी है।

इसीलिए उसकी कविता अन्य सभी साहित्यिक -मुद्राओं से परे होकर तिरपन करोड़ों माँहों के बीच मातम के अन्धकार में खड़ी है ।

काबीरिका के प्रति पिता की लापरवाही के कारण अर्थात्माव उन्हें विरासत में मिला । प्रारम्भ में अनाथात्म के बच्चे उन्हें भिन्न रूप में मिले , किन्ती निरीक्षा और परीक्षा ने कवि की कल्पना की रंगिनियों से दूर हटाकर समाज की पीड़ाओं से जोड़ दिया था । इसके अतिरिक्त स्वयं कवि की भी जीवन के हर मुकाम पर आर्थिक संघर्षों की केली पड़ा था इसीलिए समाज का शीणित वर्ग , आर्थिक - शीणित और उससे भुक्ति के प्रयास - उनके काव्य का आत्मन्वन बने । हर जगह वे शीणित और उसकी द्रान्ति से सम्पुत हैं ।

सर्वेकार के स्वभाव का एक अंश है - उनकी भिन्नाभिनिता , जो उनके साहित्य में शब्दों की भिन्नव्ययता के रूप में प्रकट हुआ । भिन्नव्ययता ने उनकी शैली की रीतिकासीन कवि विहारी के करीब पहुँचा दिया । विहारी की शैली की तरह ही सामासिकता और साकेतिकता इनकी शैली का मूल गुण है । अल्प शब्दों में विषय मावों की स्फूर्ति की भर देना उनकी भिन्नाभिनिता का ही परिणाम है :-

“ भिन्नी ठंड है  
 शब्द कंठ में ही  
 बर्क हो गये । ”

यहां कुछ कवचशब्दों में ही कवि ने अनेक भाव भर दिये हैं । व्यवस्था की कम प्रवृत्ति, निरीह कला के बोलने पर संसर, उसकी कुछ न कह सकने की पीड़ा और सब कुछ उगत देने की अचूकाहट एक साथ इन शब्दों में भरी पड़ी है । इतने सारे भावों के लिए उसे शब्दों की भरमार की जरूरत नहीं है , इनके ठंड और बर्क ये दो ही शब्द क्या कम हैं ? कहीं कहीं उसने भावनाओं के वैविध्य की प्रस्तुत करने के लिए कुछ शब्दों के हर फेर से ही काम लिया है , यहां उसे और भी कम शब्दों की जरूरत

पड़ी है :—

“ चट्टानों पर सी रहा है काता तेंकुवा

चट्टानों का रंग काता है ।

चट्टानों पर अंगड़ाई से रहा है

काता तेंकुवा

चट्टानों का रंग बदल रहा है ।

+ + +

चट्टानों पर किंकीड़ रहा है अपना शिकार

काता तेंकुवा । चट्टानें चट्टानें नहीं रही

तेंकुवों में बदल गया है ।” १

यहाँ तीन स्थितियाँ हैं - शीणित रूपी काता तेंकुवा - शीणित रूपी चट्टानों के बल पर चैन की नींद सी रहा है - दोनों शान्त हैं । दूसरी स्थिति में तेंकुवों में जरा सी हरकत होती है, चट्टानें भी शान्त नहीं रही वे भी कुछ सक्रिय हो जाती हैं । तीसरी स्थिति में तेंकुवा तिस्रक हो उठा है । कवि कहता है कि जब चट्टानें अपना शीणित रूप भी शान्त नहीं है । वह भी उतना ही तिस्रक और निर्मम हो उठा है । सामाजिक संघर्ष की इन तीन स्थितियों की कवि ने ‘सी रहा है’, ‘अंगड़ाई से रहा है’ और ‘किंकीड़ रहा है’ अपना शिकार --- इन तीन छोटे वाक्यांशों द्वारा प्रस्तुत कर दिया है ।

इस प्रकार सर्वेश्वर के स्वभाव और वाक्य परिस्थितियों ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को मौल्य किया तथा व्यक्तित्व ने अपने अनुरूप साहित्य की रूपरेखा तैयार की ।

— 0 —

१- सर्वेश्वर क्यात खरेना - कात का रस : पृ० ६२ - ६३ ।

— 0 —

दूसरा प्रकरण

मानववाद :

उदम

वीर

प्रकृति

### मानववाद : संघर्ष और प्रकृति

मानववाद वह विचारधारा है जिसका केन्द्र बिन्दु मानव है । यह विचारधारा पारलौकिक धरातल पर नहीं बल्कि इसी लोक में अपने पांव जमाती और विवरण करती है । पारलौकिक जैसी किसी सत्ता में उसकी आस्था नहीं है अपितु वह तो पारलौकिक के रूप में स्थापित सभी विशेषताओं को इसी लोक में प्रत्यक्ष करने के लिये प्रयासरत है ।

पूर्व और पश्चिम — दोनों और ऐसे विन्तक सदैव रहे हैं जिन्होंने मानवहित और समृद्धि को जीवन का चरम लक्ष्य बताया । मानवहित विषयक धारणा दार्शनिक विन्तन की परम्परा के प्रारम्भ से ही उपलब्ध होती है लेकिन एक वाद के रूप में इसकी स्थापना नव जागरण काल की है ।

‘मानववाद’ शब्द अपने स्वरूप वैविध्य के कारण पर्याप्त जटिल बन गया है । ‘एक प्रमुख विद्वान ने बड़ी सोज के साथ लिखा है कि ‘मानववाद’ कीजो माणा के उन कुछ तथ्यों में एक है जिसकी ठीक-ठीक परिमाणा देना एक कठिन कार्य है ।’ डा० जगदीश गुप्त ने भी स्वीकार किया है कि वर्तमान समय में मानवीयता के स्वरूप की व्यापकता के कारण उसे

किसी पारिमाणिक शब्दावली में नहीं बांधा जा सकता ।<sup>१</sup> विद्वानों की इस सीमा-रक्षक-कारण यह है कि यह शब्द प्रारंभ से ही विभिन्न अर्थों का पीतक और विधावाहक रहा है । प्रत्येक विद्वान ने अपनी समझ और सूझ के अनुसार इसका अर्थ निर्धारण किया है । परिणाम यह हुआ कि यह शब्द विद्वानों के इस मत-वैभिन्न्य के कारण लगातार अति प्रसिद्धि करता रहा । अर्थ निर्धारण की प्रक्रिया में इस शब्द के --- धार्मिकता का अभाव और मध्य युगिन मनोवृत्ति का विरोध , मानव जीवन और अनुभूति के महत्त्व में वास्था , इस्लामीवाद , बुद्धवाद और व्यक्तिवाद आदि अर्थ विशेष रूप से प्रचलित रहे ।

मानववाद अंग्रेजी के 'ह्यूमैनिज्म' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है । ह्यूमैनिज्म शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'होमी' ( Homo ) शब्द से हुआ है । 'होमी' का अर्थ है मानव । इस प्रकार मानववाद से तात्पर्य उस विचारधारा से है जो मानव के विषय में विचार विनिमय करती है ।

" It may be a philosophy of which man is the centre and sanction . It is in this last sense, elusive as it is, that humanism has had perhaps its greatest significance since the sixteenth century."

१- "मानवीयता का यह रूप आज इतना व्यापक और स्वामाधिक है कि इसे किसी बंधी बंधाई देशी-विदेशी परिमाणों में घेर कर सीमित करना ...  
..... दृष्टि संकोच और भावात्मक जटिलता का परिचायक ही कहा जायेगा ।"

डा० कबीर नुप्त - नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं : पृ० ३६ ।

२- Edwin R.A. Seligman- Encyclopedia of Social Sciences P.541.

‘हिन्दी साहित्य कोश’ में इस बात की पश्चिम के मध्यकालीन धार्मिक घटाटोप का प्रतिकारक माना गया है -- ‘‘पश्चिमी जगत में मध्यकाल की समाप्ति करने में जिन विचारधाराओं ने विशेष योग दिया है उनमें से मानववाद एक प्रमुख विचारधारा है। मध्यकाल में धार्मिक घटाटोप के कारण समस्त मूल्यों और प्रतिमानों का स्रोत किसी न किसी दिव्य सत्ता को माना जाता था। मानववादियों ने इस मान्यता का तिरस्कार किया। उन्होंने घोषित किया कि सम्पूर्णतम मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। जिस सम्पूर्णतम मनुष्य की चर्चा यहाँ की गयी है कैथोलिक मानववादी विचारक जाक मारिता के मत से मानववाद उसी प्रकार के सम्पूर्ण मानव का निर्माण करने वाली विचारधारा है। वे मानववाद को, मनुष्य को सही अर्थों में मानवीय बनाने वाला दृष्टिकोण मानते हैं जो उसकी मौलिक महानता को प्रकट करता है। यह मनुष्य से अपेक्षा करता है कि वह अपनी सम्भावनाओं, सर्जनात्मक क्षमताओं और मेधाका उपयोग करके मौलिक जगत की शक्तियों को अपनी स्वाधीनता का उपकरण बनाये।<sup>२</sup>

१- नवत किशोर - मानववाद और साहित्य : पृ० १६५ के आधार पर।

२- "Humanism.....essentially tends to render man more truly human and to make his original greatness manifest by causing him to participate in all that can enrich him in nature and in history..... . It at once demands that man make use of all the potentialities he holds within him, his creative powers and the life of the reason, and labour to make the powers of the physical world the instruments of his freedom."

Jaques Maritain - True Humanism : P. XII.

श्री नन्द दुतारे वाजपेयी मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों और कमजोरियों को सामने रखते वाते लेखकों की मानववादी मानते हैं । इस आधार पर उन्होंने शेक्सपियर , मानटेन और हक्सन को मानववादी लेखकों की श्रेणी में रखा<sup>१</sup> । उनके अनुसार “ मानववाद के अन्तर्गत मनुष्य की सम्पूर्ण वृत्तियों का उसकी सम्पूर्ण शक्ति और दुर्बलता का निस्संग चित्रण किया जाता है । मानवता-वादी लेखक आधेक माकस और आवर्श प्रेमी होता है ..... वह अपनी अपार सहानुभूति से पदचलित मानव की अवस्था , निहित शक्तियों और सम्भावनाओं का आलेखन करता है । ”<sup>२</sup> वाटर लिममान ने मानव की श्रेष्ठ जीवन-यापन की इच्छा की महत्व दिया । उनके मतानुसार मानववाद से वांछ्य मनुष्य की इस परती पर मानव की बुद्धि , उसकी विवेक एवं भ्रम द्वारा उत्तम जीवन की इच्छा एवं बृह संकल्प रहे हैं । उन्होंने मानववाद को मनुष्य की इच्छा या संकल्प कहा जिसके कारण वह उत्तम जीवन की सलाश में प्रवृत्त होता है । यह सलाश किसी दूसरे लोक में नहीं होती अपितु जिस संसार में वह रहता है उसी में श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति के लिये होती है अर्थात् वही पृथ्वी पर श्रेष्ठ जीवन के लिये मनुष्य के सद्प्रयास मानववाद के

१- “ पाश्चात्य साहित्य में मानवतावाद और मानववाद के अर्थ की धारण करने वाले दो शब्द प्रचलित हैं । ..... मानववाद के अन्तर्गत शेक्सपियर , मानटेन और हक्सन आदि परिगणित होते हैं जिन्होंने मनुष्य की सम्पूर्ण वृत्तियों का , उसकी सम्पूर्ण शक्ति और दुर्बलता का निस्संग चित्रण किया है । ”

नन्द दुतारे वाजपेयी- आलोचना अक्टूबर, १९५६ : पृ० ५ ।

२- डा० हरिवरण शर्मा - नयी ब्रिटेन का मूल्यीकरण : परम्परा और प्रगति की दृष्टि पर : पृ० १७४ के आधारपर।



अन्तर्गत आते हैं। डा० लक्ष्मीकान्त वर्मा ने मनुष्य के मानवीय रूप की व्याख्या इन शब्दों में की है — “ जहाँ तक मनुष्य के मानवीय रूप और उसकी सम्भावनाओं का सम्बन्ध है उससे तात्पर्य यह है कि मनुष्य की सज्ज सतत विकासोन्मुख व्यक्ति मानते हुए उसकी प्रकृति की आवर्तवादी दृष्टि से न देखकर यथार्थवादी दृष्टि से देखा जाय। ”<sup>१</sup> लेमाण्ट की दृष्टि में मानववाद “ इसी पार्थिव संसार में सम्पूर्ण मानवता के भवत्तर हित के लिए सेवा-दर्शन है जो विवेक सम्पन्न और जनतान्त्रिक पद्धतियों के सर्वथा अनुकूल है। मानववाद केवल शास्त्र व्यवसायी वास्तविकों की सम्पत्ति नहीं है अपितु सुखपूर्ण और सौन्दर्य जीवनयापन के लिये जन सामान्य के चिन्तन एवं कर्म का मार्ग है। ”<sup>२</sup> लेमाण्ट इस वाद की सैद्धान्तिक कृम और व्यावहारिक अधिक मानते हैं। उनके अनुसार वह जन सामान्य के चिन्तन और कर्म का मार्ग है, किसी अतीन्द्रिय लोक अथवा अति मानव के साथ इसका सम्बन्ध नहीं है। डा० सरजू प्रसाद मिश्र मानव के चिन्तन — आत्म विवेक और स्व-निर्णय की भावना को प्रमुखा देते हैं।<sup>३</sup> श्री नवल किशोर के अनुसार,

.....

१- डा० लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान : पृ० १५६-१५७ ।

२- “ आत्मविवेक और स्व निर्णय की भावना मानवधारिमा की प्राथमिक आवश्यकता है। जिस काल में एवं जिस स्थान पर इस भावना की अनुप्राप्ति प्रवत रही वहाँ मानववाद का विकास हुआ। जहाँ युग अथवा काल में यह भावना निष्प्राण हो गयी वहाँ मानववाद भी निष्प्राण एवं तुप्त हो गया। मानववाद का अस्तित्व, उसका स्वरूप एवं उसकी शक्ति मानव की वैयक्तिक गरिमा की जीवन्त भावना पर अवितरित रहती है। ”

डा० सरजू प्रसाद मिश्र — आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन: पृ० ३३

३- Carliss Lement: Humanism as a Philosophy : P. 12.

“मानववाद एक सम्प्रदाय नहीं, वह दृष्टि और कर्म की प्रेरित करने वाली एक व्यापक विचारधारा है।”<sup>१</sup> उन्होंने मानववाद की वर्तमान परिस्थिति में जिन्दा रहने का एक मीट्रियम बताया।<sup>२</sup>

विविध मतों के परिप्रेक्ष्य में जो तथ्य सहायक सबल रूप में सामने आता है वह यह कि मानववाद का आधार केवल मानव है। प्रमाकर माचवे मानव की समग्र रूप से जानने में ही सत्य के प्रयोग की सार्थकता सिद्ध करते हैं।<sup>३</sup> मानववादी विचारधारा अलौकिक मानव की धारणा को व्यस्त करके लौकिकता की महत्वपूर्ण स्थान देती है। लौकिक मानव को इसी जमीन पर स्थिर रखकर अलौकिक गुणों से युक्त करने के प्रयास मानववाद की पारंपरिक में आते हैं। मानव गरिमा के प्रति इस वाद की लटिंग आस्था है। यह मनुष्य के लौकिकसुखों के प्रति विशेष चिन्तित रहता है, किसी लौकिकान्तर आनन्द में इसका विश्वास नहीं है। यह नियातेवाद की पारलौकिक और कुछ मान्यताओं को सौष्ठव करके मानव विवेक और कर्मकी भी उसकी नियाते

१- नवल किशोर - मानववाद और साहित्य : पृ० १७ ।

२- “मानववाद शब्द, जो सभी मानवमूलक चिन्तनों की कल्पना में स्थापित करता है, आज के किसी जीने योग्य दार्शनिक व नैतिक दृष्टिकोण की उपयुक्त संज्ञा है।”

नवल किशोर - मानववाद और साहित्य : पृ० १६ ।

३- प्रबल “सत्य के प्रयोग का यही सही रास्ता है कि वार्दों से परे हम मानव की समग्रता से जानें, उसे उसकी कमजोरियों के साथ प्यार करना सीखें।”

प्रमाकर माचवे - आलोचना, गुलाब १६६३ : पृ० ६७ ।

का परिवर्तन घोषित करता है। श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने भी विवेक को प्रमुख मानव मूल्य कहा है।<sup>१</sup> कतः यह वाच्य नियतिवाद के प्रमजाल में उत्कर्षाकर मनुष्य को निष्क्रिय होकर बैठना नहीं सिखाता बल्कि उसे कर्षणीय बनाता है। यह मानव से अपेक्षा करता है कि वह विभिन्न कठिनाइयों को काट-काट कर अपने पथ निर्माते स्वयं करे। उसके अनुसार मनुष्य से ऊपर कोई सत्ता नहीं है कतः मानव निरंतर और निरंतर होकर अपने मूल्यों का नियामक और निर्णायक बने। वर्तमान जीवन और साहित्य में यह विचारधारा कतने व्यापक रूप से हावी है कि डा० जगदीश गुप्त इसे आधुनिकता का मुख्य आधारशिला के रूप में स्थापित करते हैं।<sup>२</sup>

१- “मानवीय-मूल्यों की चिन्ता लेखक की सबसे बड़ी चिन्ता है। वे मानवीय मूल्य क्या हैं? मानवीय मूल्य तो वही हो सकते हैं जो मनुष्य को पशु से अलग करते हैं। जो मनुष्य को पशु से अलग करता है वह उसका धर्म है। मैं धर्म कहूँगा ‘विवेक’ या विकसित बौद्धिक-चैतना को।”

विश्वनाथतिवारी - रचनात्मक आवेश और परिवेश(लेख) मधुमती 'मई',

७८ : पृ० २३ ।

२- “मानववादी विचारधारा मेरे निकट आधुनिकता का सर्वप्रमुख आधार है इसके अतिरिक्त आधुनिक होने के लिये जो गुण अपेक्षित माने जाते हैं वे या तो उसी के प्रतिफल हैं नहीं तो उन्हें सतही और फेसन के हलकेपन से युक्त मानना हीला। धर्मों, सम्प्रदायों और ईश्वर एवं देवी-देवताओं की परिधि में बंधकर व्यस्त होने वाले मानववैतना को यथाशक्ति बन्धन मुक्त करके विज्ञान की वस्तुपरक उपलब्धियों से सम्बद्ध करके सामाजिक स्तर पर प्रस्तुत करना आज का प्रमुख ध्येय है।”

डा० जगदीश गुप्त - प्रयोगवादी कविता और मानववाद(लेख) वातोचना,

मुद्रांक १९६३ : पृ० ८८ ।

**( ६ ) मानववाद : प्रमुख मान्यताएँ :-**

- ( १ ) सम्पूर्ण विश्व में मानव-गरिमा और महत्व को स्थापित करना ।
- ( २ ) अधानवीय शासन-व्यवस्था का अन्त और उसके स्थान पर मानववादी शासन-व्यवस्था की स्थापना ।
- ( ३ ) विश्व की पीड़ाओं का उन्मूलन । मानव को मौलिक सुविधाएँ प्रदान करना ।
- ( ४ ) संसार को तन-भन से स्वस्थ मानवों से युक्त करना तथा मृत, रोग, बेकारी और युद्धों से पीड़ित निरीह मानवों का उत्थान ।
- ( ५ ) विश्व मानव को सामाजिक , राजनैतिक , आर्थिक , बौद्धिक और भावात्मक स्वतन्त्रता प्रदान करना ।
- ( ६ ) मनुष्य को उसके आरम्भिक संघर्षों ( मौजन , शान्ति , स्वतन्त्रता आदि ) से मुक्ति दिलाकर उसके गरिमायय-व्यक्तित्व की स्थापना करके नवीन मानव-संस्कृति का निर्माण ।

डा० जगदीश गुप्त ने तैमाण्ट की मान्यताओं के आधार पर मानववाद के प्रमुख तत्वाण — मानवशक्ति, साहस , मानव-मूल्यों की स्वच्छता , मनुष्य के चिन्तन - स्वातन्त्र्य, वैज्ञानिक - दृष्टि , और जड़भूत आस्था के प्रति विरोध को माना ।

**( आ ) मानववाद : विभिन्न रूप :-**

मानववादी विचारधारा विकसित है। इस विविधता के मुख्यतः दो कारण हैं। यह मूल रूप से मानवकेन्द्रित है और मानव स्वयं में विभिन्न स्थितियों का संगठन है। एक ही मानव सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों में विभिन्न प्रतिक्रियाएं करता है, अतः ऐसे मानव से सम्बद्ध विचारधारा का स्वरूप वैविध्यपूर्ण है। मानववाद की परिभाषित करते हुए विद्वानों ने इस अनेकरूपता की संगठित रूप में नहीं देता बल्कि किसी एक विद्वान ने यदि राजनीतिक पहलु पर जोर दिया तो दूसरे ने मानव के सामाजिक, धार्मिक अथवा अन्य किसी पक्ष की ऊपर उठाया। एक अन्य कारण यह है कि मानव निरन्तर विकासशील प्राणी है। जैसे-जैसे मनुष्य के परिवेश और स्थितियों में परिवर्तन हुआ जैसे ही जैसे मानववाद का अर्थ भी बदलता गया। निरन्तर विकासशील रहने के कारण समय-समय पर इसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहा और प्रत्येक परिवर्तन के साथ मानववाद का एक नया रूप स्थापित होता गया। इन रूपों में पारस्परिक विरोध भी प्रायः मिलता है। प्रो० एडवर्ड बेने जैसे दर्शन की मैग्जिन में रहते हैं तो दूसरी ओर टी० एस० वॉल्टर इसके वास्तविक स्वरूप के पक्षधर नहीं हैं। वे मानते हैं कि मानववाद का कार्य किसी मूल या दर्शन का प्रतिपादन करना नहीं है। यह वाद एक सामान्य संस्कृति है अतः वास्तविक स्थापनाओं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। तर्क की अपेक्षा यह सामान्य ज्ञान से अधिक सम्बद्ध है। जोकि मारिटा की इसकी सम्यक्ता और संस्कृति के विशेष संदर्भों में स्वीकार करते हैं।<sup>1</sup> श्री नवल गिरी ने इसे एक प्रेरक शक्ति माना है जो मानव की

१-

"Humanism is inseparable from civilisation and culture, these two words being taken as themselves synonymous."

Jalpa Martin- True Humanism : P. XII.

उक्ति दृष्टि देकर उक्ति कर्म में प्रवृत्त करती है। इस मतवैविध्य के फलस्वरूप मानववाद के अनेक रूप सामने आते हैं। कुछ प्रमुख रूप रिनेसा' मानववाद, शितर का मानववाद, धार्मिक मानववाद, मार्क्सवादी मानववाद, अस्तित्ववादी मानववाद, लेमाण्ट का मानववाद तथा एकेडेमिक ह्यूमेनिज्म हैं।

### ( क ) रिनेसा' मानववाद :-

इस विचारधारा का प्रारंभ यूरोप में हुआ। चौतहवीं सदी से पूर्व मनुष्य के ऊपर धर्म हावी था। उसका प्रत्येक कार्य पाप, विचार आदि ईश्वर या चर्च द्वारा नियन्त्रित या संचालित होता था। मध्य युग की समाप्ति के साथ साथ मनुष्य इस धार्मिक प्रभुत्व से मुक्त हुआ और एक नवीन दृष्टिकोण का उदय हुआ जिसके अनुसार मनुष्य को अपनी नियाति तथा प्रत्येक क्रिया कलाप के लिये उत्तरदायी माना गया। वह स्वयं अपने संसार का सर्जक और नियामक है, ऐसा कहकर सभी अलौकिक सत्ताओं को निरर्थक घोषित किया गया। इस दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप मनुष्य के ऊपर से धार्मिक आंक समाप्त हो गया। चर्च तथा पादरियों के शासन के नीचे दबता हुआ मानव न केवल उन्मुक्त हुआ अपितु अपने कर्म के प्रति आस्थावान भी हो गया। रिनेसा' मानववादियों ने मनुष्य को 'मृत्यु के उपरान्त नया होना' इस चिन्ता से मुक्त करके इस लोक के आनन्दों को ही श्रेष्ठ जीवन का लक्ष्य बताया। इस मानववाद ने मनुष्य को सर्वोपरि माना, उसकी मूलभूत नैतिक तथा बौद्धिक विशेषताओं में दृढ़ विश्वास प्रगट किया तथा मनुष्य के इसी जीवन के आनन्द पूर्ण उपभोग को मान्यता दी। रिनेसा' मानववादियों ने उस धार्मिक मान्यता का उत्खनन किया जिसने मानव जीवन को अमरत्व प्राप्ति का साधन बताकर इस लोक के आनन्दों और उपभोगों से दूर कर दिया था। रिनेसा' मानववाद की प्रमुख मान्यताएं इस प्रकार हैं :-

- ( १ ) धार्मिक- अनुशासन से ज्ञान की भुक्ति ।
- ( २ ) मायात्मकता की अवेका बोद्धि का महत्व ।
- ( ३ ) मनुष्य के बहुमुखी अस्तित्व में वास्था ।
- ( ४ ) भौतिक जीवन के सुखों का अधिकतम उपयोग ।

### ( स ) प्रो० शितर का मानववाद :-

जिसकी सारी के प्रारंभ में प्रतिपादित प्रो० शितर के मानववाद के चिन्तन का केन्द्रबिन्दु प्रोटेगोरस की यह उक्ति है कि --- " वस्तुओं का मानवगुण मनुष्य है " इस उक्ति के अनुसार मानवीय वस्तुबोध के लिये मानव-जाति ही प्रतिमान हो सकती है । शितर की मान्यता है कि मनुष्य का व्यावहारिक जीवन प्रमुख है तथा चिन्तन गौण है । उसका सम्पूर्ण चिन्तन व्यावहारिक प्रयोजनों की पूर्ति हेतु होता है । वह मानता है कि समस्त सच्चा ज्ञान उपयोगी होता है और निरुपयोगी ज्ञान मिथ्या होता है । उसने ज्ञान के दोन में कृति-शक्ति को विशेष महत्व दिया है । वह बुद्धि को मनुष्य द्वारा स्वयं की परि-केश के अनुकूल बनाने तथा जीवन में सफलता प्राप्त करने का साधन मानता है । इस प्रकार बुद्धिमान मनुष्य ही संसार में सुख और सफलता प्राप्त कर सकता है । मानववाद के विषय में शितर प्रमुख स्थापनाओं की डा० देवराज ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

- ( १ ) मनुष्य का व्यावहारिक जीवन या व्यवहार मुख्य है , और चिन्तन गौण ।
- ( २ ) विद्वद् बोद्धि का अथवा विद्वद् चिन्तन का विशेष महत्व नहीं है, वस्तुतः विद्वद् बुद्धि अथवा चिन्तन की स्थिति ही नहीं है । तात्पर्य यह कि समस्त चिन्तन व्यावहारिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिये होता है ।

( ३ ) शितर के मानववाद ने इस बात पर जोर दिया कि ज्ञान के दोन  
 में कृति-शक्ति (creativity) का विशेष स्थान होता है। जिसे  
 हम तात्त्विक पदार्थ या यथार्थ कहते हैं वह, वह चीज है जो हमारी  
 जिज्ञासा को सन्तुष्ट करती है। तथाकथित बुद्धि 'वह हथियार है  
 जिसके द्वारा हम अपने को परिवेश के अनुकूल बनाते और जीवन -  
 संग्राम में विजयी होते हैं'। इस मान्यता का एक निष्कर्ष यह है  
 कि समस्त सच्चा ज्ञान उपयोगी होता है, और निरुपयोगी ज्ञान  
 भ्रमिया होता है।

( ४ ) कांट ने व्यावहारिक बुद्धि की प्रमुखता ( Primacy of practi-  
 -cal reason ) का मन्तव्य प्रतिपादित किया था। उसे  
 उसे स्वीकार करते हुए शितर मानते हैं कि भैय ( Good ) की  
 धारणा प्रधान है, और सत्य तथा यथार्थ की धारणाएं गौण  
 या अप्रधान हैं।<sup>१</sup>

( ५ ) धार्मिक मानववाद :-

धार्मिक मानववाद के जनक जॉन एच० हिस्टोरिय हैं जो युनि-  
 टेरियन चर्च में 'मिनिस्टर' थे। यह एक आधुनिक आन्दोलन है। विज्ञान  
 की शक्तियों से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण यह मानववाद श्रेष्ठ मानव-  
 जीवन की उपताप्य हेतु मनुष्य बाह्य किसी भी शक्ति में आस्था नहीं रखता।  
 इसके अनुसार मनुष्य मौलिक विश्व शक्ति को नियंत्रित करने की साम्ता से युक्त

१- एफ०सी० एस० शितर - ह्यूमैनिज्म : पृ० २६ ।

२- डा० देवराज - संस्कृति का दार्शनिक विवेचन : पृ० १६-१७ ।



है और अपनी इस दामता द्वारा वह सुखों की प्राप्ति कर सकता है। यह दृष्टिकोण पूरी तरह इष्टतम है। इसका बड़ा विश्वास है कि विज्ञान के द्वारा मनुष्य को सम्पूर्ण सुख-समृद्धि प्राप्त हो सकती है।

सन् १९३३ में धार्मिक मानववादियों ने एक घोषणा पत्र प्रसारित करके अपने मत को प्रचारित किया — ‘‘मानववाद इस बात की घोषणा करता है कि आधुनिक विज्ञान द्वारा विश्व के रहस्यों का उद्घाटन कर दिये जाने से उपरान्त मानव मूल्यों का किसी भी आधि-दैविक अथवा आधि-भौतिक सत्ता की स्वीकृति की मुहर लगाये जाने की आवश्यकता निर्मूल सिद्ध हो गयी है। धर्म की वैज्ञानिक मान्यता एवं पश्चात्त के अनुरूप अपनी योजना - जो एवं आकांक्षाओं को व्यापक करना चाहिए।..... धर्म का अस्तित्व उन कार्यों, लक्ष्यों एवं अनुभवों में निहित है जो मानवीय अर्थवत्ता से युक्त हों। जो भी मानवीयता से युक्त है वह धर्म बाह्य नहीं है। इसमें श्रम, कला, विज्ञान, दर्शन, मैत्री, मनोरंजन एवं उन सभी बातों का समावेश हो जाता है जो मानव-जीवन को सुखी बनाने की दामता से युक्त हैं। पापिन एवं धर्म निरपेक्षा के बीच का तन्तर बनाये रक्ता अब असंभव हो गया है।’’<sup>१</sup>

यह मानववाद धर्म को नकार कर आधुनिक विज्ञान का समर्थन करता है तथा धर्म के लिये विज्ञान के अनुसार संशोधित होने की आवश्यकता समझता है। यह मानता है कि धर्म को स्वीकृति नहीं वाला मानवीय अर्थवत्ता से युक्त होना चाहिए। इसका लक्ष्य मानव के इस जीवन को सुखी-समृद्ध बनाना

१- एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन, लिटिलफील्ड, एडम्स एण्ड कम्पनी, पेंटरसन न्यूजरी : पृ० ३४६ ।

तथा एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जो मानवीय शक्तों और समानता समता पर आधारित हो ।<sup>१</sup>

### (घ) मार्क्सवादी मानववाद :-

मार्क्सवाद के प्रकृतक कर्तृ मानव है । यह वाद नास्तिक तथा मौलिकवादी है । मनुष्य के आर्थिक जीवन में निहित वर्ग संघर्ष को इसका विशेष सम्बन्ध है । मार्क्स की विचारधारा को 'नव मानववाद' और 'मनुष्यता का मानववाद' कहकर हावर्ड फास्ट ने विशुद्ध रूप से मानववादी विचारधारा घोषित कर दिया है । इसकी वास्तविकता साम्यवाद में है । यह समाज के दो वर्गों --- पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग में से सर्वहारा का सहयोगी और उद्धारक है । 'मार्क्सवाद ने यह बात दिया है कि जब मानव - समाज के विकास की पूरी निम्नतम वर्ग है । युग की समस्त सम्भावनाओं का निष्पाद्य सर्वहारा है ।'<sup>२</sup> इसका मूल तत्त्व रक्त-क्रान्ति है इसीलिए यह विचारधारा काफी उग्र और उत्तेजक है । मैक्सिम गौकी ने इसे 'क्रान्ति-कारी सर्वहारा का मानववाद' कहा जिसका उद्देश्य सारे विश्व को पीड़ितों

- १- 'मानववाद का लक्ष्य एक स्वतन्त्र एवं सार्वभौमिक समाज का निर्माण करना है जिसमें समान शक्तों के लिये लोग स्वतन्त्रता एवं विवेक से सहयोग प्रदान करें । मानववादी सहकारी विश्व में सहकारी जीवन की मांग करता है ।'

एन्साइक्लोपीडिया आफ रितीजन , लिटिलफील्ड, एडम्स एण्ड कम्पनी , पेंटरसन न्यूजरी : पृ० ३४६ ।

- २- विश्वनाथ त्रिपाठी - साहित्य का वर्तमान संदर्भ ( तैल )' सम्प्रेषण

ज्ञान-सितम्बर १९७५ : पृ० ५ ।

को तानाशाहों के शक्ति से बाजाद कराना है , मनुष्य में स्वयं अपनी शक्तियों के प्रति जाशा और विश्वास जागृत करना , उसे बड़ी से बड़ी ताकतों से कुम्भने के लिये तैयार करना है । मैक्सिम गोरकी के शब्दों में इसका उद्देश्य  
 “..... प्रेम की का व्यात्मक शोणणाये करना नहीं है , वरन् वह प्रत्येक मजदूर से अपने ऐतिहासिक लक्ष्योद्देश्य की चेतना , शक्ति हस्तगत करने के उसके अधिकार की चेतना की भाग करता है । वह प्रत्येक श्रमिक से शोणकों हथारों एवं फासिस्टों के प्रति , श्रमिक वर्ग के प्रति , विश्वासघात करने वालों के प्रति एवं उन सभी व्यक्तियों के प्रति अवश्य घृणा की भाग करता है जो विश्व के करोड़ों , लाखों व्यक्तियों के शोणण पर जाते हैं । ” १

माक्सवाद मानव के मौलिक सुखों के प्रति विशेष चिन्ता का भाव रखता है । यह वाद मनुष्य की गलत स्थितियों के सामने घुटने टेकने से रोक कर साहस और समर्पण के साथ उन स्थितियों पर विजय पाने के लिये तैयार करता है । कार्थिक आधार पर मानव - मानव के बीच खड़ी गड़ दीवारों को अन्यायपूर्ण बताकर यह इन दीवारों को खड़ा करने वालों के प्रति मौखिक करने की दिशा का निर्देश करता है । यह एक ऐसे समाज की स्थापना के लिये उत्सुक रहता है जो समता और समानता पर आधारित हो ।

माक्सवाद मनुष्य की मौलिक समस्याओं से सम्बन्धित है तथा निरीह , तड़पते , क्षमघाते , मृतप्रायः मानव को उसके कर्म और संघर्ष के द्वारा जिलाये रखता है । वर्तमान मानव के साथ इस महत्वपूर्ण जुड़ाव के कारण यह मानववाद का एक प्रबल पक्ष है ।

१- डा० सरजू प्रसाद मिश्र - आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व वर्णन  
 : पृ० ४० के आधार पर ।

मानववाद मनुष्य के आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यावहारिक आदि प्रत्येक पक्ष से सम्बन्ध है जब कि मार्क्सवाद अपेक्षाकृत काफी संकुचित है। यह केवल अर्थ प्रधान है अतः आर्थिक संघर्षों में ही मनुष्य से जुड़ता है। मानववाद का सम्बन्ध समाज के ऊँचे- नीचे, मते- धुरे, पूजापति और सर्वहारा, शोणित और शोणक — प्रत्येक व्यक्ति से है जब कि मार्क्सवाद का लक्ष्य केवल आर्थिक दृष्टि से शोणित मानव है।

#### ( ४. ) अस्तित्ववादी मानववाद :-

अस्तित्ववाद पिछले महायुद्ध के बाद की अत्यन्त सबल विचार-धारा के रूप में सामने आया। इसके अस्तिक और नास्तिक दो रूप हैं। उनमें से नास्तिक अस्तित्ववाद मानव केन्द्रित विचारधारा है।

अस्तित्ववाद को ' निकटतम भूत की चिन्तना और माधना की विशेष अभिव्यक्ति माना जा सकता है ..... अस्तित्ववाद एक ऐसी विचार-धारा है जो सामूहिकीकरण और मशीनीकरण की शक्तियों के विरुद्ध मनुष्य की पहिना तथा स्वतन्त्रता को पुनः संस्थापित कर मानव जीवन को सम्भव बनाने का दावा करती है ।' <sup>६</sup>

अस्तित्ववादियों ने जीवन की विरूपता पर बल दिया। इसका कारण यह था कि जी विस्वयुद्धों की पीड़ाण विमीणिका से गुजरने के पश्चात् यह वाद सामने आया था अतः जीवन की विरूपताओं को बहुत बारीकी के साथ इसने देखा था।

इस वाद के प्रमुख प्रस्तावता ज्यों पॉल सार्त्र हैं। इनकी मान्यता थी कि स्वयं मनुष्य ही अपने नियमों का निर्माता है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों --- केमिकल आविष्कार, मृत्युबोध, विविध संवास आदि ने मनुष्य को जिन्दा लाश की तरह कर दिया है। वह न मर सकता है न जी सकता है। अपने मूलरूप में मानव की मनःस्थितियों --- कूटा, घुटन, संवास आदि से सम्बद्ध होने के कारण अस्तित्ववाद मानववाद का ही एक रूप है। मानववाद का यह रूप अस्तित्ववादी-मानववाद के नाम से जाना जाता है। अस्तित्ववादी - मानववाद यह मानता है कि समस्त असंगत स्थितियों के बावजूद मनुष्य इन सबको तोड़ - मरोड़ कर अपने लिये नये रास्तों की खोज करने और आगे बढ़ने की क्षमता से युक्त है।

#### ( च ) लेमाण्ट का मानववाद :-

कार्लिस लेमाण्ट ने बीसवीं सदी के मानववाद को ----- इसी पार्थिक-संसार में सम्पूर्ण मानवता के महत्तर हित के लिए ऐसा सेवा-दर्शन बताया जो विवेक-सम्पन्न और जनतान्त्रिक पद्धतियों के अनुकूल है। लेमाण्ट मौलिकता को मानववाद का आवश्यक तत्त्व मानते हैं। उनका दृष्टिकोण धर्म विरोधी है। वे मानते हैं कि मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना चाहिए। मौलिक सुखों का अधिक से अधिक उपभोग करना चाहिए। 'ह्यूमैनिज्म एज ए फिलोसफी' में उन्होंने यह स्वीकारा है कि अधिकांश मौलिकवादी विचारकों --- प्रोटेगोरस और हेमोक्राइट्स, एपीक्यूरस और ल्यूसीलियस, ता मैनी और हेलेनियस, होल्बास और डिडेरी, मार्बल और एग्रेस, कास्त और जान स्टुवर्ट मित, रसेल, ह्यूडल आदि ने उनके द्वारा प्रतिपादित मत की पृष्ठभूमि बहुत पहले ही तैयार कर दी थी। लेमाण्ट के मानववाद की मुख्य मान्यताएं इस प्रकार हैं :-

- ( १ ) मानववाद जगत के प्रति एक ऐसी धारणा में विश्वास करता है जिसके अनुसार सभी लोकों के लिए या वैश्विक सत्य पुरा-कल्पनाएं हैं और जिसके अनुसार प्रकृति, किसी मास्तिष्क या चेतना से परे, पदार्थ और शक्ति की सत्ता परिकल्पनाशील प्रणाली है ।
- ( २ ) मानववाद विज्ञान के नियमों और तथ्यों का मान्यता रखता है । उसका विश्वास है कि मनुष्य इस महान प्रकृति के विकास-क्रम की उपज है ( जिसका कि वह एक अंग है ) और उसकी चेतना उसी मास्तिष्क के व्यापार से आविर्भाव रूप से जुड़ी है , इसीलिये मरणोपरान्त उसकी सचेतन-संज्ञा भी अवधिमान ही जाती है ।
- ( ३ ) मनुष्य में ही अन्तिम विश्वास रखने के कारण मानववाद की मान्यता है कि यदि वह विवेक और विज्ञान का साहस एवं दूरदर्शिता के साथ उपयोग करे तो अपनी समस्याओं का हल करने में निश्चय ही समर्थ हो सकता है । संसार क्यों है और कैसा है, उसे जानने का एकमात्र साधन मनुष्य की बुद्धि है ।
- ( ४ ) मानववाद की नियतिवाद या माध्यवाद के सभी सिद्धान्तों के विरुद्ध यह मान्यता है कि जगत से प्रतिबाधित होकर भी मनुष्य रचनात्मक बरण और कर्म की वास्तविक स्वाधीनता रखता है और कुछ सीमाओं के साथ स्वयं अपने माध्य का विधायक है ।
- ( ५ ) मानववाद राष्ट्र, जाति, धर्म और ऐसी ही अन्य सीमाओं का अति-क्रमण करने वाली एक ऐसी नैतिक-व्यवस्था में विश्वास रखता है जो सम्पूर्ण मानव-मूल्यों को अहतांशिक अनुभवों और सम्बन्धों पर आधारित मानती है और जिसका अन्तर्गत पार्थिव सुख, स्वतन्त्रता और प्रगति है — आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रगति ।

- ( ६ ) मानववाद की मान्यता है कि व्यक्ति, समाज के कल्याण में योग देने वाली क्रियाओं के साथ अपने निजी सुखों और आत्मविकास का उचित समन्वय करने पर ही श्रेष्ठ जीवन की उपलब्धि करता है ।
- ( ७ ) मानववाद कला और सौन्दर्यबोध के अधिकतम सम्भव विकास में विश्वास करता है, ताकि सौन्दर्यानुभूति लोक-जीवन में एक व्यापक वास्तविकता बन जाए ।
- ( ८ ) मानववाद एक ऐसे सामाजिक कार्यक्रम में विश्वास करता है जिसके अनुसार जनतन्त्र, शान्ति और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समृद्ध वर्ध-व्यवस्था पर आधारित जीवनयापन के उच्चस्तरीय मान की विश्व में सर्वत्र स्थापना की जा सके ।
- ( ९ ) मानववाद का आग्रह है कि विवेक और विज्ञान का उपयोग सामाजिक जीवन में पूरी निष्ठा के साथ किया जाये और प्रजातान्त्रिक प्रणाली ( जिसमें अधिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और नागरिक अधिकार भी सम्मिलित हैं ) आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में अपनायी जाएं ।
- ( १० ) मानववाद अपनी और अन्य जीवनावस्थाओं की बुनियादी आवश्यकताओं और व्यवहारणाओं के प्रति वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार एक अन्तर्हीन प्रश्न-परम्परा में विश्वास करता है । मानववाद एक नया पन्थ नहीं है बल्कि एक विकासमान दर्शन है जो कि प्रयोगात्मक परीक्षणों में और नवीन प्राप्त तथ्यों के स्वागत को सदा प्रस्तुत रखता है ।<sup>१</sup>

यद्यपि लेमाण्ट की कुछ मान्यताएं धार्मिक मानववादियों और कुछ अन्य विद्वानों के लिये असंगत और अस्वीकार्यनीय ही सकती है लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि ये मान्यताएं ही आज के मानववादी चिन्तन के सामान्य स्वरूप को प्रकट करती हैं ।

**( ६ ) एकेडेमिक ह्यूमेनिज्म या नव मानववाद :-**

एकेडेमिक ह्यूमेनिज्म का प्रकीर्ण इराका बैबिट और पांत ६० मूर ने किया था । बैबिट ने बेकन के ' वैज्ञानिक उपयोगितावाद ' तथा रूसो के ' व्यक्तिगत प्रकृतवाद ' का विरोध करते मानवीय वादश की सनातनता को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की । यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण है जो पशुओं की तुलना में अनुभूति के मानवीय तत्त्वों पर बल देता है । यह मानव और प्रकृति के बीच द्वन्द्वात्मकता को स्वीकार करते हुए नैतिकता की मानवीय अनुभूति का प्रधान गुण मानता है । इनके अनुसार ' वाह्य नियंत्रणों से मुक्ति ही वास्तविक स्वतन्त्रता है तथा मनुष्य के लिये आन्तरिक अनुशासन ही महत्वपूर्ण है ' नवत किसीर आन्तरिक अनुशासन को ' आन्तरिक अवरोध ' की संज्ञा देते हैं उनके अनुसार मद्रता , समकदारी और अनुगुता अच्छे मानववादी के चारित्रिक गुण हैं ।<sup>१</sup> क्तः नवमानववाद मानव व्यवहार और विशेषताओं पर विशेष बल देता है । बैबिट मानते हैं कि मूलतः प्रत्येक मनुष्य मला और विवेकी होता है । यह मानववाद प्राचीन संस्कृति और अतिप्राकृत सत्ता दोनों को नकार देता है । इसका लक्ष्य है , धर्म के अच्छे तत्त्वों का संरक्षण ।

नव मानववादियों ने स्वच्छन्दावाद का विरोध करते हुए मनुष्य के प्रकृतिगत रूप को नियंत्रण में रखने की आवश्यकता को महत्व दिया । इनके अनुसार मायना की अपेक्षा विचार अधिक महत्वपूर्ण है । नव मानववाद

---

१- "..... इसका प्रमुख सिद्धान्त है ' आन्तरिक अवरोध ' और प्रमुख मूल्य है, संयम एवं सामंजस्य । अच्छा मानववादी होने का अर्थ है -- अनु ( मॉडरेट ) समकदार और मड ( डीसेंट ) होना । "

नवत किसीर - मानववाद और साहित्य : पृ० ३८ ।



के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार हैं —

( १ ) प्राकृतिक और मानवीय दृष्टि के रूप में मनुष्य को 'एन्टी-मेटाफिजिकल' और 'एन्टी रीभाटिक' परिमाणों,

( २ ) प्रकृति के नियम को 'एन्टी पोजिटिविस्टिक' और एन्टी नेचुरलिस्टिक' अवधारणा ।<sup>१</sup>

'मानविकी पारिमाणिक कौशल' के अनुसार नव मानववाद के प्रमुख गुण इस प्रकार हैं —

'..... सौन्दर्यशास्त्र में वास्तविकतावादी रुचि, राजनीति के क्षेत्र में लोक तन्त्र, सुक्रात कीसी विनम्रता एवं ईसा में विश्वास ।'<sup>२</sup>

इन भेद-प्रमेयों के बावजूद एक सामान्य तथ्य जो मानववाद के सभी रूपों के मूल में है ; वह है मानव-कैन्द्रिकता । मार्क्सवादी मानववाद ही या अस्तित्ववादी, धार्मिक ही या ऐकैहैमिक— सभी मनुष्य तथा उसके जीवन और समस्याओं से सम्बन्धित हैं । मनुष्य स्वयं अनेक स्थितियों का संगठन है । राजनीति, समाज, धर्म आदि उसके जीवन के विविध पक्ष हैं । मानववाद का कोई भी रूप विविध पक्षों की समग्रता में मनुष्य को नहीं देखता । मार्क्सवादी मानववाद मनुष्य के मौलिक पक्ष को महत्व देता है तो अस्तित्ववादी मानववाद उसके वैयक्तिक पक्ष को तथा शिलर का मानववाद और धार्मिक मानववाद --- मनुष्य को ईश्वर और धर्म से जोड़कर देखते हैं । लेमाण्ट की विचारधारा मार्क्सवाद की निकटवर्ती है । उनका मानववादी दर्शन धर्म या परलोक आदि की धारणाओं का निर्बोध करके मनुष्य के चतुर्विह विकास पर दृष्टि रखते हुए उसके मौलिक पक्ष को 'महत्वपूर्ण' मानता है ।

१- नवल किशोर - मानववाद और साहित्य : पृ० ३८ ।

२- सं० डा० नगेन्द्र --मानविकी पारिमाणिक कौशल : पृ० १३८ ।

वर्तमान समाज का मानव दो काँों में बँटा हुआ है। एक काँो  
 क्षाना समुद्दिष्टाती है कि उसे ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं है। उसकी प्रत्येक  
 कृष्णा, वाकांक्षा उसकी पूँजी के द्वारा पूरी हो जाती है क्तः वह ईश्वर के  
 पास जाने की जरूरत महसूस नहीं करता। दूसरा काँो — क्षाना पीछित है कि  
 अपनी पीड़ाओं और रोजी-रोटी की समस्याओं से उबरकर मावान के द्वार पर  
 मस्तक नहीं झुका पाता। उसका पूरा पेट सिर्फ़ दो वस्तु की रोजी की  
 चिन्ता कर सकता है। जो मावान उसका पेट नहीं भर सकता उसके मन-पाठ  
 की उसकी दृष्टि में कोई सार्थकता नहीं है। वह यह भी स्पष्ट देख रहता है कि  
 वैज्ञानिक-शक्तियों और लोहे की मारी-मरकम मशीनों में जो ताकत है वह  
 उसके ईश्वर में नहीं है। क्तः मन्दिर में सिर झुकाने से बेखतर है कि वह  
 किसी पूँजीपति के दरवाजे पर नतमस्तक हो। पूँजीपति की कृपा-दृष्टि उसके  
 लिये ईश्वर की कृपा-दृष्टि से ज्यादा सार्थक होगी क्योंकि वहाँ उसकी ता-  
 ल्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। अपनी इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति  
 से उसे प्रयोजन भी है — मविष्य और परलोक की वह वाकांक्षा ही नहीं करता  
 क्तः ईश्वर से विमुख हो जाने पर उसे कोई खतरा नहीं है। इस धर्म-विमुक्ता  
 की वजह से वर्तमान मानव के संदर्भ में धार्मिक मानववाद की कोई सार्थकता नहीं  
 है। आज तो मनुष्य की धर्म, ईश्वर आदि की परिधियों से मुक्त करके विज्ञान  
 की कस्तुरी उपलब्धियों से सम्बद्ध करके देखना वांछित है। इन कस्तुरी उप-  
 लब्धियों के लिये मानव जाति की मानसवाद की तरफ मुकना पड़ता है।  
 मानसवादी मानववाद का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की भौतिक-सुखों से सम्पन्न  
 बनाना है। "..... जहाँ तक मानव-मृत्यों और जीवन-मृत्यों का प्रश्न है  
 मानसवाद सामूहिक-मानवता के मविष्य में आस्था रखता है।" <sup>१</sup> आज मनुष्य

के सामने दो समस्याएं प्रमुख रूप से हैं। एक तो व्यापार और आर्थिक-शोणण की तथा दूसरी मशीनों और यन्त्रों की सार्वभौमता और प्रभुत्व के बीच मनुष्य के निजी अस्तित्व के निर्णय हो जाने की पीड़ा और झूठा तथा उसके गुमे हुए अस्तित्व की तलाश। व्यापार और शोणण की समस्याओं से निवृत्ति का एकमात्र समाधान मार्क्सवाद है। इसका उद्देश्य आर्थिक-शोणण और कर्म-वैषम्य को समाप्त करके साम्यवाद की स्थापना करना है। दूसरी समस्या परिवेशगत असंतियों के कारण निर्णय हुए मानव की सार्वभौमता को वापस दिलाना है। कार्ल मैक्सवर्ग के अनुसार "संस्कृति के वर्तमान संकट का समाधान अस्तित्ववाद के पास है।" १

वस्तुतः मानववाद से अभिप्राय मानव के सर्वांगीभूत विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील पारा है। मार्क्सवादी मानववाद मनुष्य के बाह्य-सुखों की प्राप्ति से सम्बद्ध है और अस्तित्ववादी मानववाद अन्तःकाम-शान्ति से। अतः सिर्फ मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी मानववाद, वर्तमान संदर्भों में मनुष्य के अन्तः बाह्य — दोनों पक्षों के उन्नयन में समर्थ हैं। उसकी समग्र सुख-समृद्धि के लिए मानववाद के यही दोनों रूप पूर्ण तथा परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं : , उसके लिए किसी क्षर पक्ष या साधन की आवश्यकता नहीं है।

( ४ ) भारतीय और पारश्चात्य मानववाद : तुलनात्मक विवेचन :-

( १ ) देश, काल और परिस्थिति के अनुसार- मानव चिन्तन में स्वामात्रिक रूप से अन्तर होता ही आया है। इसी कारण एक ही संज्ञा से अभिव्यक्ति होने वाली दो विचारधाराएं विभिन्न कालों और दो

विभिन्न राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न होती हैं। प्राचीन काल में धर्म का जो अर्थ था वह आज नहीं है, विज्ञान के प्रति जो दृष्टिकोण पहले था वह आज बदल गया है। यही नहीं भौतिकता का जो अर्थ आज पूर्व में है वह पश्चिम में नहीं है तथा धर्म का जो अर्थ पश्चिम में है वह पूर्व में नहीं है।

मानववादी विचारधारा प्रारंभ से आज तक निरन्तर विकसित और परिवर्तित होती रही तो दूसरी ओर पूर्व और पश्चिम में दो अलग-अलग धर्मों की धोतक भी बनी रही। पश्चिम का मानववाद ग्रीक काल से प्रारंभ होता है। अपने कुछ दोषों के कारण इसका स्वरूप निरन्तर घुमिल होता गया -- नव जागरण काल के साथ इसकी पुनर्जागृति हुई। इस मानववादी अवधारणा के दो दोष प्रमुख से हैं -- जातीय-पूर्वाग्रह एवं अर्थ-लोलुपता।

ग्रीक काल में दास-प्रथा का जो दोष था वह आधुनिक यूरोपीय राष्ट्रों में श्वेत और अश्वेत के सामाजिक-विभेद के रूप में विद्यमान है। वहाँ अश्वेत जाति के लोग श्वेतों द्वारा शासित और प्रताड़ित होते हैं। पश्चात्य मानववाद का दूसरा दोष अर्थ लोलुपता है। राष्ट्रों में निहित गता काट प्रतियोगिता इसी का परिणाम है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी ही समृद्धि के संकुचित दायरों में बाबद्ध है और इसके लिये वह दूसरे राष्ट्रों की सृष्टि के लिये तत्पर रहता है। दो विश्व युद्ध इसी अर्थ लोलुपता के परिणाम थे। निजी आर्थिक लाभ की भावना ने यूरोपीय मानववाद के सबत पदों को भी अपनी कुत्सित भर्त्सना से ढक दिया है।

“ भारतीय नव जागरण भारत में प्रवृत्तिवाद की दृढ़तापूर्वक स्थापित करने का साहसिक प्रयास था। इस नव जागरण ने संसार की सत्यता में मनुष्य की वास्तविक दृढ़ता, मानव शक्ती में वृद्धि की, अस्पृश्यों की गौरव का स्थापन प्रदान किया एवं नारी जाति की दासता की बंधनों से मुक्ति

दिलायी । नव जागरण मानववाद का आधार लेकर जगत्तर हुआ वतएव उसने दृष्टि की व्यापकता एवं मनुष्य की उदारता का सुन्देश दिया ।<sup>१</sup> वनेक विचारकों और संस्कारों को इस नव जागरण को लाने का त्रेय दिया जा सकता है , कोई एक व्यक्ति इसका मागीदार नहीं है । इस नयी परम्परा का प्रारंभ राजाराम मोक्षराय से माना जा सकता है । उन्होंने भारत को सारे विश्व के साथ जोड़कर देखा और बताया कि सत्य किसी एक व्यक्ति का नहीं होता बल्कि सारी मानवता का होता है तथा भारतवासी सम्पूर्ण विश्व के निवासी हैं । धर्म को उन्होंने विश्व धर्म तथा मानवता का धर्म के रूप में देखा । उन्होंने परम्पराओं और रीतियों के लिये अनुकरण को मानव प्रगति और उत्थान का विरोधी बताया ।

स्वामी विवेकानन्द ईश्वर की वैवाय शक्तियों तथा परलोक की कल्पनाओं के प्रति आस्थावान नहीं थे । आज के मानव की तरह उन्हें ऐसा ईश्वर स्वीकार नहीं था जो स्वर्ग में तो जगत् सुख प्रदान करेगा लेकिन इस जीवन में वो वक्त की रीटी भी मरकर नहीं करा सकता । वे किसी विराट , दामतावान ईश्वर के प्रति आस्थावान नहीं थे । उनकी दृष्टि में मानव ही ईश्वर है । मानव कर्मों और संघर्षों को उन्होंने बहुत महत्व दिया ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर मानव-गरिमा और महत्ता के प्रति बहुत अधिक आस्थावान थे । वे मानते थे कि ईश्वर की छितार में बहुत से तार हैं । इनमें से कुछ तोहे के और कुछ तावे आदि के हैं , केवल मनुष्य उस छितार में लगा हुआ सोने का तार है । सत्य और ईश्वर को उन्होंने मानवीय- संघर्षों में देखा और कहा कि वही ईश्वर सत्य है जो मानवीय ही । अपने धर्म को उन्होंने मानव- धर्म की संज्ञा देी हुए ईश्वर शब्द को नये रूप में व्याख्यायित

किया। उनके अनुसार ईश्वर स्वयं मनुष्य के ऊपर निर्भर करता है। वह मानव का सृष्टी है, उसकी शक्तियों का उपयोग मानव-जात में ही संभव है। मानव कर्म को उन्होंने भी बहुत महत्व दिया और कर्मरत मानवता को ईश्वर का पर्याय माना। इनके द्वारा रचित 'गीता-जति' श्रेष्ठ मानववादी कृति है जिसने अपने परकी साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया।

महात्मा गान्धी का सत्य और अहिंसावादी दर्शन युद्ध और विनाश की विभीषिकाओं से मानव जाति को मुक्त रखने वाला एक अतिश्रेष्ठ मार्ग है। उनके प्रकार के भेद-भावों को मिटाने में भी गान्धी-दर्शन बहुत सार्थक सिद्ध हुआ है। महर्षि ऋषिन्द मनुष्य को अपनी पशु प्रकृति को पार करके निकला हुआ अर्थ-ईश्वर मानते हैं। डा० राधाकृष्णन् ने विश्व एकता पर जोर दिया। उन्होंने विज्ञान और धर्म, तर्क और श्रद्धा, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समष्टि-कल्याण तथा आत्म-त्याग और आत्म-उपलब्धि के बीच समन्वय स्थापित किया। जवाहरलाल नेहरू इसी विश्व, इसी जीवन में विशेष रुचि और आसक्ति रखते थे तथा परलोक और मावी जीवन के प्रति अनासक्त थे। वे 'विश्व शान्ति के अग्रदूत' के रूप में सारे विश्व में जाने जाते हैं। विनोबा भावे गान्धीवाद के समर्थक हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय और समानता उनके मूल मन्त्र हैं। उनके द्वारा प्रचारित सर्वोदय का अर्थ है सबकी भलाई लिये त्याग की भावना।

तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय मानववाद पारम्पर्य मानववाद से श्रेष्ठ है। पश्चिम का मानववाद केवल मानव आर्थिक चीखों में ही जड़ रहा जब कि भारतीय मानववाद सभी श्रेष्ठ और नैतिक भावनाओं को अपने में समेटे रहा। इसीलिये भारत का मानववाद नैतिक मानववाद के रूप में जाना जाता है जब कि पश्चिम का मानववाद आर्थिक मानववाद के रूप में। भारतीय मानव-

वाद का आधार आध्यात्मिक अधिक है जब कि पश्चात्य मानववाद विरुद्ध रूप से मौक्तिक है । परिणामस्वरूप पश्चात्य मानवसम्पूर्ण मौक्तिक शक्तियों के समक्ष नाण्य और अस्तित्वहीन हो गया । जीवन के प्रति रुचि और वास्तविकता की भावना को भारतीय चिन्तकों ने भी महत्व दिया लेकिन आध्यात्मिक हानि-रुचि और उन्नति को उन्होंने मौक्तिक रुचि और उन्नति के समानान्तर माना । उनके अनुसार केवल मौक्तिक वायों में ही मानव की पूर्णता नहीं है , मौक्तिकता के साथ - साथ आध्यात्मिकता को अपनाकर ही मानव परिपूर्ण हो सकता है।

श्री सरजू प्रसाद मिश्र पूर्वी और पश्चिमी मानववादों की तुलना दो ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर करते हैं -- सिन्धुघाटी पर कब्जा करने के उपरान्त ग्रीक सम्राट अलेक्जेंडर ने उठा कि पराजित करने के लिये एक भी राजा शेष नहीं बचा था , किन्तु भारतीय सम्राट अशोक कातेरा विजय के उपरान्त वेदना और ग्लानि से मर उठा । युद्ध में होने वाले रक्त-पात को देखकर उसने युद्ध से सदा के लिये मुंह मोड़ लिया तथा अहिंसा , प्रेम और जीव दया का प्रचार करने लगा । ये दोनों उदाहरण भारतीय और पश्चात्य मानववादों के अन्तर को स्पष्ट करने में पर्याप्त सफल हैं । भारतीय मानववाद को श्रेष्ठ घोषित करते हुए डा० सरजू प्रसाद मिश्र का स्पष्ट कथन है कि ' ' वाज विश्व को इसी मानववाद की आवश्यकता है -- जो आर्थिक नहीं वैतिक है तथा मानव-व्यक्तित्व की उदारता को महत्वपूर्ण मानता है । ' '

१- डा० सरजू प्रसाद मिश्र -- आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व लक्षणः

: पृ० ७७ ।

**( ४ ) हिन्दी कविता और मानववाद :-**

मानववाद की परिकल्पना उतनी ही पुरानी है जितना कि मानव । मानव की सृष्टि के साथ ही मानववाद की रेखाएँ बननी प्रारंभ हो गयी थीं । भारतीय चिन्तन में मानववाद की परम्परा वैदिक काल से मिलती है । ऋग्वेद से वेद - मन्त्रों में समष्टि कल्याण , विश्व- बन्धुत्व और मानव-प्रेम की भावनाएँ पूरी पड़ी हैं । 'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः' <sup>१</sup> में एक दूसरे की सहायता और रक्षा करना मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य बताया गया है । एक अन्य मन्त्र में परिचित - अपरिचित प्रत्येक मनुष्य के प्रति सहृदयता और सम्पादना रखने की इच्छा मिलती है ----

“ याश्च पश्यामि याश्च न  
लेणु मा सुमति कृधि । ” <sup>२</sup>

इसी प्रकार 'अत्रिस्त्याहं वदुणा सर्वाणि भूतानि समीक्षो.....' <sup>३</sup> में परस्पर मित्र- भाव बरतने की कामना है ।

इसी प्रकार उपनिषदों में ईश्वर की मानवीय घरातल पर उतार लिया गया है तथा स्वर्ग, देवी- देवताओं आदि के समक्ष मानव गरिमा और मानव-कर्म की महत्वपूर्ण बताया गया । इसके साथ साथ बौद्ध और जैन दर्शन , जावाक - दर्शन , सांख्य , योग और पूर्व मीमांसा-दर्शन तथा वेदान्त-दर्शन में भी मानववाद का प्रारंभिक रूप मिलता है । विविध दर्शनों का यह प्रभाव

१- ऋग्वेद , ६, ७५ , १४ ।

२- अथर्ववेद १७ , १ , ७ ।

३- यजुर्वेद २६ , १८ ।



साहित्य पर लातार पड़ता रहा । अतः मानववाद यद्यपि साहित्य-क्षेत्र में एक स्थापित रूप में नयी कविता के साथ साथ जाया लेकिन किसी न किसी रूप में इसकी स्थिति प्रत्येक युग में मिल जाती है ।

आदिकाल के साहित्य में मानव के चारित्रिक गुणों जैसे मन की पवित्रता, सत्य प्रियता, वीरता, न्यायप्रियता आदि के महत्व को स्थापित किया गया तथा आहम्बरप्रियता, कुआकृत, पारस्परिक-वैमनस्य आदि दोषों का तिरस्कार किया गया । इस युग में मनुष्य के शरीर को बहुत महत्वपूर्ण मानते हुए यह मत स्थापित किया गया कि मानव शरीर में पाँच रहस्यमय तत्व — मन, प्राण, शु, वाक और कण्डलिनी हैं । इनमें से किसी एक को बशीभूत कर लेने पर मनुष्य को सब सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं । उस युग में योगमत और हठसाधना को भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण घोषित किया गया । ये सभी तथ्य मानव-शरीर से सम्बन्धित हैं अतः मानव के महत्व को स्थापित करते हैं । इस साहित्य में धर्मान्धता का विरोध तथा सहज सत्य को अक्षरबद्ध बनाने की प्रवृत्ति मिलती है । यह साहित्य अपने युग की रुढ़ियों को तोड़कर सहज मानव जीवन को महत्व देता है । यद्यपि इस काल के साहित्य में रुढ़िग्रस्त धर्मभावना की संकीर्णता से निकलकर मानव की गरिमा को स्थापित करने का प्रयास है तथापि यह प्रवृत्ति आधुनिक मानववाद के एक-कम विपरित है क्योंकि आधुनिक मानववाद इसी धरातल की मिट्टी-पाकी में साँस लेता है जब कि आदिकाल की यह प्रवृत्ति सम्पूर्णतः परलोक पर आधारित है । चारण कवियों द्वारा रचित साहित्य में जिन राजाओं का चित्रण है वे वीरता, कर्तव्यपरायणता के गुणों से युक्त हैं — आदिकालीन नारी अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी है । इसमें लौकिक जीवन अपनी सम्पूर्ण रंगिनियों के साथ विद्यमान है । अतः अतिशय धार्मिक प्रभाव वाले उस काल में लौकिक-जीवन के महत्व की स्थापना मानववाद के अन्तर्गत समीप जा पहुँचती है ।

मक्तियुग के संत साहित्य की प्रायः सभी विशेषताएं मानववादी हैं। कबीर जैसे निर्भीक क्रांतिकारी और समाज सुधारक की वाधुनिक मानववादियों की भी मल्लि आवश्यकता है। इस साहित्य में जाति भेद, हिंसा, धर्मान्धता आदि सामाजिक बुराईयों<sup>१</sup> विरोध करके बहिष्ता, सभ्यता, समानता, दया, करुणा आदि मानवीय गुणों का समर्थन किया गया है। डा० सावित्री शुक्ल मानती हैं कि संत साहित्य में प्रारंभ से अन्त तक मानववादी विचारधारा व्याप्त है।<sup>२</sup> इस साहित्य में मानव की अनन्त शक्तियों का स्रोत माना गया है तथा उन सभी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक आदि मान्यताओं को नकारा गया है जो मानव विकास में बाधक हैं। यह साहित्य आध्यात्मिकता को स्वीकारता तो है किन्तु मानव की उपेक्षा नहीं करता।

सगुण मक्ति साहित्य मानव के बहुत करीब आ जाता है। इसमें ईश्वर को मानव के घरातल पर उतार लिया गया है। इस साहित्य में "मगवान के ऐसे रूप की कल्पना है जिसके साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।"<sup>३</sup> इस साहित्य में राम से प्रत्यक्ष अनुभव विनय की जा सकती है और कृष्ण की तो बाँह पकड़कर उनके साथ सैला जा सकता है, गाय चरायी जा सकती है और उनके प्रत्येक कार्य में सहभागी हुआ जा सकता है। इन कवियों ने राम और कृष्ण द्वारा जो सीतायें करवायीं हैं वे वाक्य मानव समाज का प्रतिबिम्ब हैं। राम राज्य के माध्यम से जिस प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित

१- "कबीर से लेकर संत साहित्य के अन्तिम कवि चरन दास तक सभी ने जीवन की धारा को मानवतावादी दृष्टि से समलक्ष्य करने की चेष्टा की।"

डा० सावित्री शुक्ल - संत साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-

भूमि : पृ० २५२ ।

२- डा० लखारि प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास : पृ० ६० ।

की गयी है वह वाज तक भी अपनी श्रेष्ठता का एकमात्र उदाहरण है। इस युग की कृतियों में मानव-मन के मूलभूत भावों प्रेम, करुणा, वात्सल्य, श्रद्धा, हास आदि का चित्रण है। रामचरितमानस मानव के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक आदि पदों की उन्नति का महत्वपूर्ण सूत्र है। प्रेमाश्रया शाखा के साहित्य की विषय वस्तु लोक जीवन से चुनी गयी है। इन कवियों ने ईश्वर को अपने प्रिय के रूप में देखा और ईश्वर के माध्यम से लौकिक प्रेम, विरह, संयोग आदि की व्यंजना की। ये कवि मानव प्रेम और समानता के भी समर्थक हैं।

रौतिकाव्य शृंगार प्रधान है। 'राधा कन्हैया' के आवरणों में ढका हुआ इनका शृंगार और लौकिक है तथा मीनवाद के बहुत निकट है। इनकी शृंगारिक भावनाएँ अधिकतर बहुत छुटे रूप में प्रस्तुत हुयी हैं। प्रायः उनमें भारतीय मानव की भावनाओं जैसा संयम और सन्तुलन नहीं है। नारी के रूप को इस साहित्य में अत्यन्त कुत्सित कर दिया गया। वह केवल मीन-विलास का साधन बनकर रह गयी। इस युग में मानववादी भावनाओं का हास ही अधिकारशक्त मित्ता है -- विलासी और रुग्ण मानव के वर्णन ही यहाँ होते हैं।

मध्यकाल प्रमुख रूप से धार्मिक भावनाओं से जाग्रान्त था। फिर भी इस काल में मानव महत्व का पूरी तरह मुलाया नहीं गया। रौतिका-काल में मानववादी प्रवृत्ति धीरे-धीरे नष्ट हो गयी, मानव का महत्व और उसका उज्ज्वल पक्ष एकदम समाप्त हो गया। ऐसे ही पक्षन के दाणों में मानववादी विचारधारा ने अपनी स्थिति से उबरने के लिये पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का सहारा ले लिया। पश्चिम में उस समय मानव-गरिमा और समानता की स्थापना के स्वर फूट चुके थे जिससे सम्पर्क से भारत में भी मानववादी चेतना पुनः जीवित हो उठी। परिणामतः नव जागरण का उदय हुआ -- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल वही नव जागरण का आधार बनाकर जाने बढ़ा।

भारतेन्दु युग की कविता नव जागरण की कविता कहलाती है। इस काल के कवि देश और समाज की वर्तित स्थिति के प्रति चिन्तित और उसके विकास के लिये प्रयत्नशील दिखायी देते हैं। मानव की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक भुक्ति की आवश्यकता को उन्होंने महत्व दिया, ईश्वर के गुण-गान की अपेक्षा मनुष्य के मनुष्यत्व का गुणगान किया। कर्म के नाम पर ये संसार से दूर नहीं माने अपितु मानव कर्म में वास्तव प्रकट करते रहे। नारी-स्वातन्त्र्यता के सङ्ग्राम में इस काव्य में मिलते हैं।

आध्यात्मिक काव्य मानव की समग्रता से अभिमुख है। मानव-जीवन का कोई भी पक्ष यहाँ उपेक्षित नहीं है। यह मानव की असीमित शक्तियों के प्रति आश्चर्य है। इस कविता का लक्ष्य 'महा मानव' की उपलब्धि है।

आध्यात्मिक काव्य के दो रूप हैं -- समाजवादी और व्यक्तिवादी। समाजवादी रूप पर मार्क्स का प्रभाव है। इसमें मानव-व्यक्तित्व के भौतिक पक्ष को महत्वपूर्ण माना गया है तथा उसके आत्म तत्त्व की उपेक्षा की गयी। यहाँ मनुष्य भौतिक आवश्यकताओं के घेरों में बंध गया है। मानव को एक 'आर्थिक पशु' के रूप में देखा गया है। यहाँ मानव-व्यक्तित्व के अतीतिक, उदात्त और आध्यात्मिक गुणों का निगोच करके 'व्यक्ति मानव' के स्थान पर 'समष्टि मानव' की प्रतिष्ठित किया गया है। यह विचारधारा मानव के मुख्य पक्ष के विषय में कुछ नहीं कहती बल्कि इसमें मानव अपनी सम्पूर्णता के साथ स्थापित नहीं हो सका। व्यक्तिवादी विचारधारा मानव-व्यक्तित्व की अनावश्यक महत्व और विस्तार देती है। वह यह भूल जाती है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अतन्त्र वैयक्तिकता के साथ साथ उसके सामाजिक उत्तरदायित्व भी है। सामाजिक दायित्वों से पूरी तरह विरत होकर रहना उसके व्यक्तित्व के लिये उचित नहीं है। इस काव्य में मानव की लक्ष्मणा को उसका गौरव मानकर उसके प्रति अतिशय वास्तव दिखायी गयी है। वास्तव में

इस साहित्य में मानव सण्डित रूप में प्रस्तुत हुआ है। उसकी आन्तरिक शक्तियाँ को जहाँ भी उपेक्षित किया गया लेकिन यह विचारधारा मानव के महत्त्व को नष्ट अथवा कम करने वाली राजनीतिक पार्टियों, व्यवस्थाओं और विचार-धाराओं के प्रति सूचित है। इसकी मान्यता है कि वर्तमान परिस्थितियों में मानव अपने विवेक के बल पर ही आगे बढ़ सकता है।

“नयी कविता में जो मानवतावादी दृष्टि है वह भी प्राचीन मानवतावादी दृष्टि से आगे की स्थिति है। आयावादी मानवतावाद - प्रेरित है जब कि नयी कविता की मानवतावादी दृष्टि यथार्थ-प्रेरित है। नयी कविता में जो नया नव मानव की कल्पना परम्परागत दृष्टि का युगीन संवर्धन है विकास ही है। ..... नयी कविता का नव मानव स्वतन्त्रता का प्रेमी होने के साथ साथ सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक है।”<sup>१</sup> इस नव मानव की तथु मानव की संज्ञा दी गयी है। देवेन्द्र बंगाली ने तथु मानव का चित्र इन शब्दों में खींचा है ----

“नदी पीछर हुआ कोटर साह्या  
नापने को रह गयी गहराह्या  
हो गया छोटा सिमटकर आकसी  
धूप पीकर बढ़ गयी परहाह्या।”<sup>२</sup>

तथु मानव को किसी ने छोटा आकसी कहा, किसी ने कर्मवासी, डेविल्स एडवोकेट, कमरवादी अथवा कुंठावादी। तदभीकान्त कर्मा के अनुसार तथु-मानव एक संज्ञा है जिसे समस्त व्यापक मानवात्मा का तथुतम आत्मबोध कहा

१- डा० हरिवरण शर्मा - नयी कविता नये धरातल : पृ० ४३-४४।

२- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता : पृ० १०५।

जा सकता है। उन्होंने इसे लक्ष्मण का लक्ष्मण पोटेन्शियल कहा। इस लक्ष्मण का सम्बन्ध हीनता से नहीं है। यह लक्ष्मण संज्ञा परम्परा से चले बहते हुए तम-मनवीर धन से समृद्ध विराट मानव अथवा सुपर-मैन के विपरीतार्थक रूप में आया अन्यथा नयी कविता का मानव जितना सामर्थ्यवान, दाम्भतावान तथा एग्रेसिव हो उठा है इतना उससे पहले किसी युग में <sup>नहीं</sup> मिलता। यह लक्ष्मण मानव अपने युग के प्रत्येक यथार्थ की, दाण के प्रत्येक वंश को पूरी जागरूकता के साथ मींगता है।

“प्रत्येक युग में मानव को एक स्पाकार दिया गया है। आयावाद में ‘मानव को अखिल क्षुब्ध में चिर निरूपम’ कहकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की गयी तो प्रगतिवाद में सामाजिक-व्यक्तित्व प्रदान करके उसकी स्थिति को प्रतिष्ठित किया गया है। आयावाद में आवर्ण मानव की कल्पना है तो नयी कविता में यथार्थ मानव की। यथार्थ का मूल गुण वर्तमान के संघर्ष में मानव को देखना है। युग का इतिहास आज जिस मोड़ पर खड़ा है वहाँ अति मानव, पूर्ण मानव और आवर्ण मानव की कल्पना व्यर्थ जान पड़ती है। नियति का क्षेत्र और युद्धों की मयंकरता में से एक भी मानव को बचाकर प्रतिष्ठित करने में सफल नहीं हुए हैं। अतः आज जो मानव प्रतिष्ठित है वह लक्ष्मण मानव है।”<sup>१</sup> यह मानव वर्तमान युग की वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के दबावों से उत्पन्न तिरस्कार और विगमता को गले से नीचे उतार रहा है साथ ही वह विभिन्न वेगधियों के बीच फिसलते हुए अपने व्यक्तित्व को भी दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना चाहता है। व्यापक सामाजिक चेतना के बावजूद अपने निजी अस्तित्व की चिन्ता उसे घेर रक्खी है। डा० जगदीश गुप्त ने इस मानव की विशेषताओं का लम्बा-बौढ़ा बिड़ठा प्रस्तुत करके उसे नयी कविता के मूल उद्देश्य के रूप में स्थापित किया। वे मानते हैं कि “..... नयी कविता में उस आत्म-शक्ति के पर्याप्त लक्षण मिलते हैं जिसके द्वारा बड़े से बड़े प्रभावों को आत्मसात करके ही आदमी अपने

मैल-बण्ड को सीधा रखते हुए उन्नत मस्तक चले की सामर्थ्य पाता है ।<sup>१</sup>

इस प्रकार नाम से लुप्त होते हुए भी यह मानव होना और सामर्थ्य का धोतक नहीं है अपितु अक्षुण्ण दाम्भता और शक्ति की परिचीमता का पर्याय है। दयनीय और असहाय स्थिति के बावजूद यह अपने युग के इतिहास को नये नये मोड़ दे सकता है ।<sup>२</sup> नयी कविता में शायद पहली बार मानव को उसके विशिष्ट व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया गया है । यहाँ पर व्यक्ति समर्पित न होकर अपनी स्थिति के प्रति उत्कर्ष है ।<sup>३</sup>

यह मानव बाह्य विस्मयितियों में वन-पिंसर लुप्त हो गया है लेकिन अपने अन्तर की विशाक्ता और वृद्धता के कारण वह परम्परागत विशिष्ट मानव या सुपर मैन से भी ऊपर स्थित है । स्वीकारिये उसे ' भारत का सबसे बड़ा सत्य ' माना गया है ।<sup>४</sup> बाज लावश्यकता इस बात की है कि यह मानव अपनी शक्तियों के सदुपयोग के द्वारा ' लुप्त ' संज्ञा को हटाकर महा-मानव की उँचाइयों को छू ले । वर्तमान कविता मानव को उसी उँचाई पर पहुँचाने का एक प्रयास है ।<sup>५</sup> नयी कविता मूलतः मानववादी है क्योंकि कि मानव जीवन की सार्थकता प्रदान करने वाले तत्त्वों पर उसकी दृष्टि तत्त्व के साथ पड़ती है और निरर्थकता लाने वाले तत्त्वों पर व्यंग्य प्रहार करना वह अपना मुख्य कर्तव्य समझती है ।<sup>६</sup>

१- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं : पृ० २१० ।

२- डा० हरिचरण शर्मा - नयी कविता : परम्परा और प्रगति की भूमिका पर : पृ० १६५ ।

३- ' नयी कविता अब इस मोड़ पर आ गयी है जहाँ से वह उधर की मुड़-सम्पत्ति सञ्चालित है जियर उसे मुड़ जाना चाहिए अर्थात् काम आदमी की और ; उस काम आदमी की और जिसे भारत का सबसे बड़ा सत्य स्वीकार किया जा सकता है । '

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - नयी कविता की संघर्षशील चेतना ( लेख ) ' कल्पना ' मई ७० । पृ० ३४ ।

४- डा० जगदीश गुप्त - प्रयोगवादी कविता और मानववाद ( लेख ) आलोचना , जुलाई १९६३ : पृ० ८६ ।

तीसरा प्रकरण

‘ जंगल का दर्द ’ में

मानसवादी

मानववाद



.....  
 : ' जंगल का रस ' में मार्क्सवादी मानववाद :  
 .....  
 .....

( अ ) मार्क्सवाद : वैचारिक पृष्ठभूमि :-

मार्क्सवाद से शात्पर्य उस वाद से हैं जो मानव की उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित कराकर, उत्थान की लीर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। यह समाज के विकास का वैज्ञानिक आधार है। यह एक विशुद्ध मार्क्सवादी दर्शन है, जो परम्परागत मार्क्सवादी दर्शन की अपूर्त लीर व्याख्यात्मक स्थापनाओं के विरोध में, प्राकृतिक विज्ञानों की नवीन निष्पत्तियों की आधार बनाकर चला। इस वाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगेल्स हैं।

यह स्वयं में पूर्ण तथा पूरी तरह तैयार दर्शन नहीं है। अन्य विज्ञानों की भांति यह वाद इतिहास तथा सामाजिक तत्वों की गतिशीलता के कारण निरन्तर विकासशील रहा है। नये-नये अनुभवों ने उसे सर्वेव समृद्ध लीर जीका बनाया। यद्यपि इस सिद्धान्त की मार्क्स लीर एंगेल्स के अतिरिक्त लेनिन, प्लेखानोव, मैक्सिम गोरकी, क्रिस्टोफर- काहवेल, रैल्फ- फाक्स, स्टातिन, जू एवेव, माको-त्से - तुंग, हावर्डफास्ट आदि विद्वानों ने भी प्रमाकित किया लेकिन इसका मूलधार मार्क्स लीर एंगेल्स की ही विचारधारा है।

मार्क्स का सिद्धान्त प्रमुक्त : निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है:-

( अ ) दम्दात्मक मार्क्सवाद ।

( ब ) इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या ।

( ग ) कार्य - संघर्ष ।

( क ) द्वन्द्वात्मक मौक्तिकवाद :-

यहाँ द्वन्द्वात्मक का सम्बन्ध प्रणाली से है और मौक्तिकवाद का तत्त्व से । द्वन्द्वात्मकता की प्रक्रिया में एक व्यक्ति बात कहता है, दूसरा उसका विरोध करता है और दोनों के विवाद से एक बात निश्चित हो जाती है । इस प्रक्रिया के तीन सीपान हैं -- वाद , प्रतिवाद और सम्वाद ( या संश्लेषण ) ।

जर्मन दार्शनिक हीगेल की मान्यताओं का आधारभूत सिद्धान्त द्वन्द्वात्मकता है । उनके अनुसार द्वन्द्वात्मकता विचार का, चिन्तन का, वात्सा का गुण है -- प्रकृति का नहीं । उन्होंने चिन्तन के विकास की स्वयं चिन्तन में ही निहित अन्तर्विरोधों के संघर्ष और समागम के भाव्यम से होते हुए पाया और इसी को द्वन्द्वात्मकता कहा । वे द्वन्द्वात्मकता को विचारों के विकास का एक प्रत्यक्ष सिद्धान्त मानते थे । उनके अनुसार -- " जब हम किसी धारणा पर तार्किक प्रणाली से विचार करते हैं तो उसके निषेध से ही एक ऐसी विचार-धारा का जन्म होता है, जो कस्तु तत्त्व की दृष्टि से पूर्वापेक्षा अधिक सम्पन्न होती है । " वे मानते हैं कि जो कुछ यथार्थ है वही युक्तिसंगत है और जो कुछ युक्तिसंगत है वही यथार्थ है । वे गति और परिवर्तन के विरोधी हैं और यहाँ उनकी विचारधारा मार्क्स की विचारधारा से दूर जा पड़ती है ।

मार्क्स के अनुसार द्वन्द्वात्मक मौक्तिकवाद समूचे संसार के विकास के सामान्य नियमों का दिग्दर्शन कराने वाला मौक्तिकवादी सिद्धान्त है । वे परिवर्तन जयवा गति को अनिवार्य मानते हैं । स्वयं मार्क्स ने अपने सिद्धान्त को

हीगल की विचारधारा से एकदम विपरीत माना है । हीगल विचार को सत्य तथा मौलिक ज्ञान को विचार की वाक्य अभिव्यक्ति मानते हैं लेकिन मार्क्स ने 'वस्तु' की सत्य तथा विचार की उसका अनुचित रूप माना । ' ' मार्क्सिय वर्तन का यह सिद्धान्त है कि वस्तु-सत्ता से ही चेतन्य की उत्पत्ति होती है और चेतन-ज्ञान की उत्पत्ति है आपाततः अन्तिम अध्याय में मनुष्य का आविर्भाव हुआ है । इसी सिद्धान्त का अनुसरण कर मार्क्स कहते हैं कि मानव इतिहास का अन्तिम नियामक और निर्णायक मनुष्य की चेतना ( मन ) नहीं है, उसकी वास्तव मौलिक सत्ता, उसकी अर्थनीतिक परिस्थिति ही असल निर्णायक है । ' ' २

मार्क्स ने विचारों के समस्त हीगल की विचारधारा जोड़ी पड़ जाती है । यदि जी कुछ यथार्थ है , वही युक्तियुक्त भी है तो समाज या संसार में परिवर्तन कबवा गति की कोई जरूरत नहीं रहती । जब कि सत्य यह है कि जीवन का प्रत्येक पक्ष , प्रत्येक पहलू क्रमशः परिवर्तनीय है । इतिहास साक्ष्य है कि आज जो यथार्थ और युक्तियुक्त है वह कल वही अयथार्थ और अनुसर्गो ही उठता है । प्रत्येक वस्तु-सत्ता के अन्दर एक द्वन्द ( Contradiction ) विद्यमान है , स्वीति

1- " My Dialectic method is not only different from the Hegelian, but is its direct opposite. To Hegel, the life-process of the human brain, i.e., the process of thinking, which, under the name of "The Idea", he even transforms into an independent subject, is the demiurges of the real world, and the real world is only the external, phenomenal form of " The Idea " , with me, on the contrary, the idea is nothing else than the material world reflected by the human mind, and translated into forms of thought. "

Karl Marx and F. Engels- Selected works : P. 412.

२- महेश्वर चन्द्र राय- मार्क्सवाद और साहित्य : पृ १८ ।

प्रत्येक वस्तु को एक ही साथ यथार्थ और वयथार्थ मानना पड़ता है। वस्तु में निहित वन्तद्वन्द्व ही गति का वास्तविक कारण है। एंगेल्स ने गति को द्वन्द्वात्मक -प्रवृत्ति से युक्त माना है।<sup>१</sup> उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष— विकास और विनाश होते हैं। वस्तु का प्रस्तुत अवस्थान ( *Thesis* ) अपने विरोधी तत्वों के स्वामाविक वान्तरिक संघर्ष के कारण प्रत्यवस्थान ( *Anti-Thesis* ) में परिवर्तित हो जाता है। फिर भी उसका संघर्ष समाप्त नहीं होता। यह संघर्ष धीरे - धीरे ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ दोनों परस्पर विरोधी तत्व सन्तुलित हो जाते हैं। लेकिन यह सन्तुलन अवधि समय तक नहीं रहता, उसमें पुनः संघर्ष आरम्भ हो जाता है और एक नये अवस्थान - क्रम का जन्म हो जाता है — यही द्वन्द्वात्मक मौलिकवाद है। एंगेल्स के अनुसार —“ जीवन भी एक भावामाव विरोध है जो वस्तु और प्रक्रियाओं में विद्यमान है और लातार किसी उत्पत्ति और समाधान होता है और ज्यों ही विरोध का वन्त हो जाता है, जीवन की भी समाप्ति हो जाती है तथा मृत्यु का प्रवेश होता है।”<sup>२</sup> मारस और एंगेल्स वस्तु के दो परस्पर विरोधी तत्वों के संघर्ष को विकास का क्रम मानते हैं। उनके अनुसार पदार्थ और गतिशीलता परस्पर सापेक्ष हैं। पदार्थ के बिना गति का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

१- “ गति स्वयं एक भावामाव विरोध ( *contradiction* ) है। किसी वस्तु का एक ही मूल में दो स्थानों में रहने, एक ही स्थान में रहने और न रहने के द्वारा ही साधारण यांत्रिक स्थान - परिवर्तन सम्भव है। गति का अर्थ भावामाव विरोध की निरन्तर उत्पत्ति और एक ही समय में उसकी निवृत्ति है।” ( *F. Engels-Anti Dühring, P. 179* )

२- *F. Engels-Anti Dühring, P. 180.*

३- “ Matter without motion is just as unthinkable as motion without matter.”

*Ibid, P. 86.*

**द्वन्द्वात्मक - मौलिकवाद** पदार्थ और गति की पारस्परिक सापेक्षता के अतिरिक्त पदार्थ की गतिशीलता , परिवर्तन , विकास , विघटन आदि के अध्ययन की भी आवश्यक मानता है । इसके अनुसार --- प्रकृति और समाज की विकास प्रक्रिया सामान्य नहीं होती । यह प्रक्रिया अपनी क्रमिक गति के साथ एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाती है , जहाँ वह गुणात्मक - परिवर्तन के साथ एक सर्वथा नवीन स्थिति की जन्म देती है । इस स्थिति में परिमाण गुणात्मक - परिणति का रूप ग्रहण कर लेता है । परिमाण और वस्तु के गुणों में परस्पर अन्तर होते हुए भी प्रकृति और समाज में यह गुणात्मक-परिवर्तन (Qualitative change) सत्ता भूत हो जाता है । एंगेल्स ने इस प्रक्रिया को 'लीप' कहा जिसका मार्क्स ने इन शब्दों में समर्थन किया ----

" The leap is a break in the gradualness of the quantitative change of a thing. It is the transition to a new quality and signalises a sharp turn, a radical change in development. "<sup>1</sup>

इस प्रकार द्वन्द्वात्मक मौलिकवाद की मूल मान्यता है कि " इस जगत और जीवन में , वस्तु जगत और मानस- जगत में , कीड़े की भाव एवं भावना चरम और शरकत होने का दावा नहीं कर सकती । किंव-वस्तु है ( जिसमें मानस-सत्ता की भी शामिल किया जा रहा है ) अन्तर एक नित्य विरोध विद्यमान है और यही विरोध किंव - वस्तु की समाधान की लीज में प्रतिनियत गतिशील कर उसे अनन्त विरोध के समाधान के रास्ते से जाने की लीज ले जा रहा है । "<sup>2</sup> इस प्रकार जीवन और जगत का मूल परिवर्तन लयवा गति में है । अतः द्वन्द्वात्मकता जीवन के सभी स्तरों में सत्य है । संसार की

<sup>1</sup>- Fundamentals of Marxism and Leninism : P. 88.

<sup>2</sup>- महेंद्र चन्द्र राय - मार्क्सवाद और साहित्य : पृष्ठ ८ - ९ ।

बढ़ी से बढ़ी तथा शीटी से शीटी वस्तु के जीवित रहने के लिए उसमें द्रव्य की स्थिति अनिवार्य है।'' अणुतम से महत्तम तक, वायु के कण से सूर्य तक, प्रोटिस्टा (Protista) से मनुष्य पर्यन्त समस्त प्रकृति निरन्तर उत्पत्ति और विलय की दशा में, निरन्तर परिवर्तन की दशा में विद्यमान है।''<sup>१</sup>

(ख) ऐतिहासिक मीतिकवादी व्याख्या :-

ऐतिहासिक मीतिकवाद मार्क्स की मान्यताओं के आधार पर सामाजिक जीवन के विकास की भूत-प्राक्तियों का विश्लेषण करता है।  
''आन्तरिक मीतिकवाद की जब मनुष्य के सामाजिक जीवन पर लागू किया जाता है तो उसे ऐतिहासिक-मीतिकवाद कहा जाता है।'' ऐतिहासिक मीतिकवादी दृष्टि से परिमाणित करते समय एक प्रश्न सर्वत्र उठता था कि सामाजिक-सम्बन्धों के विकास के वास्तविक कारण क्या-क्या हैं? इस प्रश्न का मार्क्स और एंगेल्स ने सर्वाधिक युक्तिसंगत उत्तर देते हुए सामाजिक विकास और व्यक्तियों के स्वरूप की निर्धारित करने वाली आधारभूत - शक्तियों का विश्लेषण किया। उनका यह विश्लेषण समग्रतः ऐतिहासिक-मीतिकवाद के रूप में जाना जाता है। मॉरिस कान्फोर्थ ने ऐतिहासिक मीतिकवाद के तीन भूत सिद्धान्त बताये---

(१) सामाजिक परिवर्तन और विकास प्राकृतिक परिवर्तन और विकास की तरह, कुछ निश्चित वस्तुगत (Objective) नियमों से परिचालित होते हैं।

(२) यद्यपि सामाजिक परिवर्तन मानव-व्यक्तियों की हल्ले-सकलन - वैष्टाओं के परिणाम हैं तो भी सकलन-वैष्टायें अन्तिम विश्लेषण में उनके सामाजिक अस्तित्व और मीतिक जीवन के द्वारा ही निर्धारित होती हैं।

१- महेंद्र चन्द्र राय - मार्क्सवाद और साहित्य : पृ० १०-११ ।

२- Maurice cornforth- Dialectical materialism : P. 20.

विभिन्न दृष्टिकोण और संस्थाएँ, राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक विकास - इसी मूलधार मानव के मौलिक जीवन पर लड़े टाँचे हो हैं।

( ३ ) मौलिक मूलधार पर लड़ा यह सामाजिक ढाँचा उस मूलधार के विकास में एक सक्रिय भूमिका भी बदा करता है।

मौलिक अस्तित्व का प्रमुख लक्ष्य मनुष्यों की वह मेहनत है जिसे वे जीवन की आवश्यकताओं और सुविधाओं के उत्पादन में लाते हैं। मनुष्यों की इस मेहनत पर ही समाज का अस्तित्व आधारित है। मनुष्य के ऊपर उसकी परिस्थितियों का भी बहुत प्रभाव पड़ता है कि वह पूरी तरह अपनी रुचियों के अनुरूप इतिहास का निर्माण नहीं कर पाता। मानस के अनुसार इन परिस्थितियों का मूल --- जो मनुष्यों के संस्कारों और आकांक्षाओं का निर्माण करके उन्हें सामाजिक प्रवृत्तियों की ओर प्रेरित करता है --- वह समाज के मौलिक जीवन के विकास तथा उत्पादन और विनिमय की व्यवस्थाओं में निहित है। इसीलिए ऐतिहासिक - मौलिकवाद सामाजिक घटनाओं तथा व्यवस्थाओं की प्रमाप्ति करते हुए भी व्यक्ति-विशेष की इतिहास के विकास में कारणभूत नहीं मानता।

‘ सलेस्टेड वर्ल्ड लाफ ’ कार्ल मार्क्स ‘ में ऐतिहासिक मौलिकवाद की जो व्याख्या की गई है उसके अनुसार सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान कुछ ऐसे सम्बन्ध अनिवार्य हैं जो जिनका अस्तित्व उनकी इच्छा पर निर्भर नहीं होता। इन उत्पादन-सम्बन्धों के स्वीकरण से समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है। इसी स्थिति में सामाजिक कानून के विविध आयाम निश्चित रूप धारण कर लेते हैं। मौलिक जीवन की इस प्रणाली के द्वारा समाज के सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन का निर्माण होता है। किन्तु : मानव-कैतना उसके अस्तित्व को नियंत्रित नहीं करता बल्कि मानव-कैतना का नियंत्रण उसके सामाजिक अस्तित्व के द्वारा होता है। समाज का अस्तित्व तब तक कि उत्पादन सम्बन्धों पर निर्भर करता है कि उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन के अनुरूप सामाजिक जीवन के बाह्य और आन्तरिक परिवेश में बदलाव आ जाता है। इस प्रकार समाज की सम्पूर्ण सत्ता और व्यवस्था मौलिक तत्वों

पर आधारित है। ये तत्व निरन्तर गतिशील रहते हैं और : उन परनिर्भर समाज में परिवर्तन अथवा प्रगति की स्थिति सदा बनी रहती है।

एनेल्स ने मीतिकवादी दृष्टि से इतिहास का निष्णायक तत्व उत्पादन एवं प्रत्युत्पादन की भाना। केवल मानव आर्थिक तत्व की इतिहास का निष्णायक तत्व मानना अनुचित है क्योंकि कि आर्थिक तत्वों के अतिरिक्त बाह्य परिवेश के विभिन्न तत्वों का भी ऐतिहासिक संघर्षों के स्वरूप-निर्धारण में प्रबल योगदान होता है।

( ग ) वर्ग - संघर्ष :-

प्रारम्भिक साम्यवादी - अवस्था के दृष्ट होने के साथ ही समाज का जो विभाजन हुआ, वह आज तक उसी प्रकार है। ".....  
... सीतलकीं स्ताब्दी से ही एक नया वर्ग जन्म लेने लगा था -- जीपीएन पूंजीपति वर्ग और उसके साथ-साथ उसकी 'श्रम' भी थी -- अर्धयोगिक मजदूर वर्ग। इस प्रकार पूंजीवादी स्थान का जन्म हो गया और उसके साथ ही साथ मजूरी पर काम करने वाला श्रम- मजदूर भी उत्पन्न हो गया था।" <sup>१</sup> आज से बहुत पहिले ही समाज के टुकड़े हो चुके थे। समाज के कुछ लोगों के हाथ में उत्पादन के साधन और सत्ता होती है और कुछ लोग अपने-अपने से समाज की सम्पत्ति का उपार्जन करते हैं, लेकिन प्रायः सत्ताधारी - वर्ग के द्वारा इस मजदूर वर्ग का शोषण होता-रहता है। शोषण का यह क्रम प्रत्येक समाज में निरन्तर चलता रहता है पर उसके रूप में अक्षय थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है --  
"आधुनिक पूंजीवादी समाज में, जो सामन्ती समाज के जन्म से पैदा हुआ है, वर्ग विरोधी की सत्ता नहीं किया उसने केवल पुराने के स्थान पर नये वर्ग, उत्पीड़न की पुरानी अवस्थाओं के स्थान पर नयी अवस्थाएं और संघर्ष के पुराने रूपों की जगह नये रूप खड़े कर दिये हैं।" <sup>२</sup>

१- एमिल बन्द - मार्क्सवाद क्या है : पृ० ७ ।

२- मार्क्स एनेल्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र : पृ० ३६ ।



मार्क्स ने इन कार्यों की पूजापति और सर्वहारा व्यवस्था शीघ्र और सौजन्य कहा । कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र में पूजापति का के चारित्रिक गुणों को इन शब्दों में सामने रखा गया है --- " ऐतिहासिक दृष्टि से पूजापति-का ने बहुत ही शान्तकारी भूमिका खेती की है । स्वाभाविक रूप से ही उन्म कलाने वाले लोगों से मनुष्य जिन नाना सामन्ती बन्धनों से बंधा हुआ था उन सबको उसने निष्पूरता से तोड़ दिया । नग्न स्वार्थ के, नकद पैसे- कीड़ी के हृदय- शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा सम्बन्ध उसने बाकी नहीं रहने दिया । ऊँचा से ऊँचा धार्मिक-भावनाओं, विरोधित उत्साह और मौली से मौली के माकुत्ताओं, सब पर उसने जाना - पाई का मुलम्मा चढ़ा दिया है । मनुष्य के गुणों को उसने बाजार की बिगड़ चीज बना दिया है । पहले की सदों-के द्वारा प्राप्त होने वाली तरह- तरह की स्वतन्त्रताओं की जगह अब उसने केवल एक ही तरह की, कात्मा-रहित स्वतन्त्रता की -- स्वतन्त्र व्यापार की ---- स्थापना कर दी है । एक शब्द में, धार्मिक और राजनीतिक पदों के पीछे छिपे शीघ्र के स्थान में उसने नी, नित्य, प्रत्यक्ष और पार्श्विक शीघ्र की स्थापना कर दी है । " १

सर्वहारा का को परिमाणित करते हुए केन्हा के० कीट्स लिखते हैं --- " समाज के उस का को सर्वहारा कहते हैं जो अपने अम को केव कर अपनी जीविका चलाता है । किसी भी प्रकार की पूजा से उसे कोई मुनाफा नहीं होता । उसका अस्तित्व, जीवन-मरण, यों कहें उसका सम्पूर्ण अस्तित्व अम की मांग पर निर्भर करता है । " २

पूजावादी व्यक्तियों में ये दोनों परस्पर विरोधी-का एक साथ रहते हैं । दो विरोधी - तत्त्वों का यह एकत्रीकरण का संघर्ष का जन्मदाता है।

१- मार्क्स एलेक्स - कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र : पृ० ३७ ।

२- ऐतिहासिक एलेक्स - जीवन और कृति ( अनु० गिरिश मिश्र ) : पृ० ६४ ।

ये दोनों वर्ग विरोधी होते हुए भी अन्योन्याश्रित होते हैं, जतः इनमें संघर्ष अनिवार्य रूप से होता है। इन दोनों की एकता और संघर्ष के कारण ही समाज का विकास होता है। इस वर्ग संघर्ष का कारण यह है कि —

“---- प्रभुताशाली वर्ग अपने स्वार्थों की वसतुएँ रक्ता चाखता है। वर्ग -  
- स्वार्थ का सबसे पुराना और सबसे भयंकर रूप है उपज का ज्यादा से ज्यादा भाग काबू में रक्ता। पूँजीवादी समाज में उत्पादन का ढंग शोषण का भी ढंग है। मित का भयंकर काम करके ऋण पैदा करता है और साथ ही मित -  
- मात्स्य उसके अन्तर्गत ही घण्टों की उपज को चुराकर अपने लाभ के रूप में रक्ता है।”<sup>१</sup> मार्क्स ने इस संघर्ष का कारण सामाजिक परिवर्तन की माना। उनके अनुसार मनुष्य सदा अपने ज्ञान को बढ़ाता रहा है और इस नये ज्ञान के द्वारा उत्पादन में वृद्धि और उन्नति हुई। परिणामतः गम्भीर सामाजिक परिवर्तन हुए और इन परिवर्तनों के कारण वर्ग-संघर्ष हुए। समाज में निहित वर्ग और वर्ग-संघर्षों की भावना और एगोत्स ने स्वयं पूँजीपति की देन कहा। “पूँजीपति वर्ग ने ऐसे हथियारों की ही नहीं गढ़ा है जो उसका अन्त कर देंगे बल्कि उसने ऐसे आदमियों को भी पैदा किया है जो इन हथियारों का इस्तेमाल करेंगे।”<sup>२</sup> कालान्तर में ये हथियार पूँजीपति के विरुद्ध ही उठा लिए जाते हैं। सामन्तवाद के अन्त के लिए जो हथियार पूँजीपतियों ने उठाये थे वही अब पूँजीपतियों की घात लगाये बैठे हैं। “पूँजीपति वर्ग जो सबसे बड़ा चीज पैदा करता है वह है उन लोगों का वर्ग जो तुम उसकी ऋण दालें।”<sup>३</sup>

प्रमुख रूप से मार्क्सवाद सर्वद्वारा की श्रान्ति का उद्घोषक है। इस सिद्धान्त का मुख्य पहलू यह है कि समता, समानता, सुख और समृद्धि पर

१- राष्ट्रिय सोवियत - मानव समाज : पृ० २७८ ।

२- मार्क्स एगोत्स - कम्युनिस्ट पार्टी का शोषणापन : पृ० ४४ ।

३- वही : पृ० ५९ ।

आधारित समाज का निर्माण अधिक वर्ग ही कर सकता है।<sup>१</sup> मार्क्सवाद समाज में सर्वहारा-वर्ग का पूर्ण और निर्बाध शासन स्थापित करने का उद्देश्य लेकर नहीं चलता। वह ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित करने का पक्षधर है जिसमें मजदूर और भित्त-भालिक का भेद समाप्त हो जाय। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद एक संगठनिकात्मीन व्यवस्था है ज्यों कि उसका अन्तिम उद्देश्य तो एक ऐसे स्वशासित समाज की स्थापना करना है जिसमें ना कोई शोणित हीगा ना कोई शोणक। विभिन्न वर्ग समाप्त हो जायें और राज्य की आवश्यकता न रहेगी।

( छा ) मार्क्सवादी - मानववाद :-

\*\*\*\*\*

मार्क्सवाद की उत्पत्ति अमानवीय स्थितियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में हुई। मनुष्य की उसकी लौंई हुई मानवता फिर से प्राप्त कराना- इस धाव का प्रमुख लक्ष्य है। इसका सम्बन्ध कटु मानवीय-यथार्थ से है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि किसी भी स्तर पर वह मानव-  
 "मार्क्सवाद उस संसार का, जिसमें हम रहते हैं, और मानव समाज का, जो

६- "अधिक वर्ग ही नये साम्यवादी समाज के शिल्पी की हैसियत से युग के निर्माता की जिम्मेदारी पूरी कर सकता है, ज्यों कि वही एक ऐसा वर्ग है जो अपनी प्रकृति के अनुरूप उत्पादन की साम्यवादी प्रणाली को जन्म देता है। वही एक ऐसा वर्ग है जो उत्पादन के अत्यन्त विकसित स्वरूपों से सम्बन्धित होने के कारण उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान ऐसी शक्ति और संगठन बना पाता है जो उसे सामाजिक जीवन के पुनः निर्माण का नेता बना देता है।"

डा० एन० रवीन्द्रनाथ - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास : पृ० ३४।

उस संसार का एक भाग है, एक सामान्य सिद्धान्त है।<sup>१</sup> इसका केन्द्र-बिन्दु मानव है तथा प्रमुख ध्येय मानव की मौलिक उन्नति करना है। मार्क्स-एनी एम की सौजीबन का उद्देश्य यह पता लगाना था कि "मानव समाज का काम जो रूप पाया जाता है, वह ऐसा क्यों है; उसमें परिवर्तन क्यों होते हैं; तथा आगे चलकर मनुष्य जाति का किन किन परिवर्तनों से साक्षात्कार होगा। अपने अध्ययन से वे इस परिणाम पर पहुँचे कि ये परिवर्तन - बाह्य प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों की ही भाँति अस्मात् नहीं हो जाते बल्कि कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार होते हैं। इस सत्य की सोज के बाद यह सम्भव हो जाता है कि मानव-समाज के बारे में एक ऐसे वैज्ञानिक सिद्धान्त का निरूपण किया जाये जो मनुष्य जाति के वास्तविक अनुभवों पर आधारित हो और जो धार्मिक-विश्वासों, कस्ती-तहंगार और और-पूजा, व्यक्ति-गत भावनाओं या काल्पनिक स्वप्नों के आधार पर बनी हुई समाज के बारे में पहले ही अस्पष्ट धारणाओं (जो काम की है) से भिन्न हो।<sup>२</sup> मार्क्स बाद इसी प्रकार की वैज्ञानिक धारणा है। यह मानव जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक चीज में पृथक् - पृथक् नामों के साथ विद्यमान है।<sup>३</sup> इस वाद की प्रमुख चिन्ता मनुष्य की मौलिक प्रगति के विषय में है। मनुष्य के मौलिक और सामाजिक कल्याण के लिए यह धर्म, ईश्वर या किसी दूसरी अलौकिक-सत्ता

१- समित बन्स - मार्क्सवाद क्या है? : पृ० ६।

२- वही : पृ० ६।

३- "मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानव वाद है, जिसे राजनीति और कार्यशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद, दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक कस्तुवाद और सभाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक कस्तुवाद कहा जाता है।"

डा० रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील चिन्ता : पृ० ३९।

पर आस्था नहीं रखता तथा स्वयं मनुष्य को अपने मान्य का निर्माता और संवातक घोषित करके लोभ-निन्द्य-सत्ताओं के अस्तित्व को पूरी तरह नकार देता है। इस वाद की सर्वाधिक आस्था विज्ञान में है जहाँ कि विज्ञान की शक्ति ही आधुनिक युग में मानव प्रगति का स्रेष्ठ साधन है। नवतन्त्रिशीर मार्क्सवाद के विविध पक्षों में से उसके मानवीय - पक्ष की सर्वोपरि मानते हैं। लल्लूह जी० मेयर के मत से इसका मूल स्रोत पाश्चात्य मानववादी-परम्परा में है।<sup>१</sup> मार्क्सवाद ने मानववाद के जिस तथ्य को आधार बनाया वह है सम्प्रदाय के प्रभाव से लुप्त, स्वाभाविक आदर्श-मानव की धारणा। ऐसा मानव जो सामाजिक, सहयोगी, व्याधान तथा लोकहितकारी है। "पश्चिम की उदार मानववादी परम्परा से मार्क्स ने अपने लिए -- अपने दर्शन से लिए -- मानव के जिस प्रत्यय को ग्रहण किया है वह 'प्रोमीथियन' कहा जा सकता है --- जिस प्रकार धरती पर मानव जीवन की अधिक सुखद बनाने के लिये ग्रीक-यूराणों का प्रोमैथ्यूस (प्रमथ्यूस) स्वर्ग से अग्नि उठा लाया, उसी प्रकार मानव ने इस धरती को एक ऐसा स्थान बना दिया है जहाँ जीवन आरामदायक, सुखद एवं अधिक सुरक्षित है।"<sup>२</sup>

१- "समाजवाद आज एक बड़े पन्थ की है, फैशनेबल नारा की है, सत्ता-धारियों के स्वार्थ में प्रयुक्त विचारवाद की है। पर इन सबके अतिरिक्त वह एक जीवन्त और गतिशील विरुद्धवादी मानववादी विचारधारा है।"

नवतन्त्रिशीर - मानववाद और साहित्य : पृ० ४४ ।

२- "मार्क्सवाद की जड़ें पश्चिम की मानववादी परम्परा में हैं और इस परम्परा के पूर्वजों एवं मूल्यों की मार्क्सवादी समाज-धारणा, उसकी उत्पत्ति एवं सुरक्षा में मिश्रित कर दिया गया है।"

डा० सरजू प्रसाद मिश्र - आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन : पृ० ११२ के आधार पर ।

३- वही : पृ० ११३ ।

**मार्क्स-** मानव स्वतन्त्र्य का सच्चा समर्थक है। उसके अनुसार यह स्वतन्त्रता ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में हो सम्भव है जो व्यक्ति और समाज, दोनों के पूर्ण विकास को एक दूसरे के विकास के लिए आवश्यक समझे। ताना-शाही का अन्त करके समाजवाद की स्थापना द्वारा यह स्वतन्त्रता सम्भव हो सकती है। इसके लिये वह सारी दुनिया को बदलने की आवश्यकता पर जोर देता है। सर्वहारा द्वारा अपने शोणण के विरुद्ध संघर्षरत होने में मार्क्स ने सम्पूर्ण मानवजाति की मुक्ति की संभावनाओं को देखा। शोणण-रहित मनुष्य पूरी तरह विकसित हो सकता है तथा विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में भाग लेकर अपनी प्राकृतिक और अर्जित शक्तियों का सदुपयोग कर सकता है।

मार्क्स जिस समाज की स्थापना का उद्देश्य लेकर चला उसका मानव एक पूर्ण विकसित व्यक्ति है जिसमें मन :-शारीरिक योग्यताओं का उचित एकीकरण है। शोणण, मनुष्य को मन और शरीर दोनों स्तरों पर कमजोर बनाता है क्योंकि मार्क्स ने समाज से शोणण को समाप्त करके साम्यवादी व्यवस्था की कल्पना की। "मार्क्स का आदर्श ऐसा जनतन्त्र है जो न केवल वर्गहीन होगा, राज्यहीन भी होगा और उसका मूलनीय कार्य क्रमानु-स्थितियों की अमानवीयता की आलोचना तथा उन ठोस स्थितियों का उद्घाटन था, जिनके अन्तर्गत समानता और स्वतन्त्रता की मानवीय मांग एक वास्तविकता बन सकती है।" १

मानववाद समस्त मानवजाति के कल्याण से सम्बद्ध है लेकिन मार्क्सवाद केवल मानव समाज के शोणित-वर्ग से। मार्क्सवाद की तरह मानववाद भी मानव-हितों के संदर्भ में पूँजीवाद और पूँजीपति को सबसे बड़ी बाधा मानता है। जिस प्रकार मार्क्सवाद और पूँजीवाद एक दूसरे के विरोधी हैं उसी

प्रकार मानववाद और पूँजीवाद में परस्पर विरोधी हैं । मानववाद को अपना लक्षितत्व बनाये रखने के लिए, पूँजीवाद को पूरी तरह समाप्त करना आवश्यक है । जब-जब पूँजीवाद ने सिर उठाया तब-तब मानववाद का अस्तित्व रहित गया । इस पूँजीवाद को नष्ट करने के लिए फिर मार्क्सवादी मानववाद को आगे लाना पड़ा । इस प्रकार मार्क्सवाद और मानववाद --- दोनों के संघर्षों का भूलाधार समाज का पूँजीवादि-धर्म और उसके द्वारा किया गया शोषण है तथा इन दोनों का ही उद्देश्य है मानव जाति का कल्याण । लेकिन एक अन्तर है, मार्क्स मनुष्य के वाह्य शक्तियों की प्रभुता देता है जब कि मानववाद उसके सर्वांगीण-कल्याण को । मार्क्सवाद की अपेक्षा मानववाद के लक्ष्य अधिक व्यापक हैं । मार्क्सवाद-मानववाद का ही एक पक्ष है । अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये मानववाद जिन हथियारों का प्रयोग करता है उनमें से एक हथियार मार्क्सवादी रात-शान्ति है और वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यही हथियार सर्वाधिक कारगर भी है क्योंकि अपने लक्ष्यों के संदर्भ में मार्क्सवाद ही मानववाद के अधिक करीब है । मार्क्सवाद के मानववादी लक्ष्यों की ओर **Herbert Marcuse** ने भी सक्ति जिया है - " -----

-- वन्दनगुस्त लोगों की तो अभी अपनी भूमि मिलनी चाहिए । उनकी क़ैतना को विकसित करना , जो कुछ हो रहा है उससे उन्हें अवगत कराना , माँ की विकल्पों के लिये अवधिपर ही भी भूमिका तैयार करना --- यह 'हमारा' कार्य है । हमारे का लक्ष्य मार्क्सवादियों से ही नहीं, बुद्धिजीवियों से भी है । " ?

१- " पूँजीवाद और मानववाद में नित्य और मौलिक विरोध है । पूँजीवाद मनुष्य-मनुष्य के बीच एक दीवार खड़ी कर देता है, मानव व्यक्तित्व का अमानवीकरण करता है, स्वतन्त्रता और ऐतिहासिक-अभिवाक्यता के बीच तथा व्यक्ति और समाज के बीच शक्तापूर्ण सम्बन्ध पैदा करता है । "

नवत ज़िस्तर - मानववाद और साहित्य : पृ० ८१ ।

२- वही : पृ० ८७ - ८८ के आधार पर ।

लपनी विषय मानववादी-सम्पृक्तता के कारण मार्क्सवाद की मानववाद का समर्थन पर्याप्त समझा जाता है क्योंकि कि मार्क्सवाद और मानववाद दोनों मानव और उससे हितों से जुड़े हुए हैं। "----- मार्क्स के समस्त कार्य का आधार और शक्ति ही मानववाद है।" ६

( ७ ) जंगल का दर्द : मार्क्सवादी मानववाद :-

मानववाद के अनुसार मानववाद के अनुसार

वर्तमान परिस्थितियों में जिनका रहने के लिये मनुष्य को मार्क्सवाद की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि प्राणवायु वास्तविक की। आज का मनुष्य चारों ओर से विभिन्न असंगतियों से घिरा हुआ है, जिनमें प्रमुख है ---- राजनीतिक सभ्यकथा, शासनतन्त्र की लाजाशाही और वर्ग-वैषम्य। " लाजादी के बाव देश में बड़े पैमाने पर जलाकृत, गरिबी और भ्रष्टाचार का जो प्रसार हुआ है ; वह स्वेदनीय कवि को रह-रहकर छाता है। पूरा राष्ट्र ही उससे सायने नंगा सड़ा है। राष्ट्रीय जीवन में यह गिरावट किसी भी स्वामि-मानवी व्यक्ति के लिये दर्द का कारण है। " ३ जंगल का दर्द राष्ट्र की नग्नता के अवतीर्ण के बाद कवि के स्वेदनों और स्वाभिमान को लाने वाली चोटों से उत्पन्न दर्द है। इसमें सामाजिक और राजनीतिक जीवन में होने वाले शोषण पर पार उगी उठायी गयी है। सर्वेकार ने इस शोषण को केवल देखकर ही नहीं शीढ़ दिया है बल्कि उससे मुक्ति के लिये कटपटाहट और संघर्ष इनमें मिलती है।

१- नवत फिशोर - मानववाद और साहित्य : पृ० ८० ।

२- " हमेशा बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी में तीन चीजों की बड़ी जरूरत है : जावसीजन, मार्क्सवाद और लपनी वह शरत जो हम बनता में देखते हैं। । "

रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक : पृ० १५०

३- डा० रामबल्लभ राय - नई कविता : उद्भव और विकास : पृ० २४९ ।



वे यह मानते हैं कि किसी भी चीज की व्यक्तता को पहचानना कवि का धर्म है।<sup>१</sup> 'जंगल का दर्द' में उन्होंने इस धर्म को पूरी तरह निभाया है। तत्पूर्व साहित्यिकता के साथ वे प्रत्येक स्थिति के सामने दृढ़ रहे हैं। 'जंगल का दर्द' में नयी जन चेतना से भरा श्रान्ति-उन्मुख कविता संग्रह है। इसकी अधिकांश कविताओं में बहुसंख्यक - वर्ग के मन में सुलग रही आग और नयी स्वाई के साक्षात्कार की जोत पकड़ने की कोशिश है।<sup>२</sup> इस कोशिश में कवि पूरी तरह मार्क्सवाद से जुड़ा हुआ है। आज उसके सामने प्रमुख समस्याएं तानाशाही, वर्ग-वैषम्य, धार्मिक-शोषण आदि की हैं। मार्क्सवाद इन्हीं समस्याओं के विरोध में खड़ा हुआ था --- तब : जो रास्ता मार्क्सवादियों ने दिखाया था, वही मार्ग 'जंगल का दर्द' की समस्याओं से जूझने वाले कवि के लिए उपयुक्त है। सर्वेस्वर ने विभिन्न समस्याओं से मानव को मुक्त करने के लिए श्रान्ति का वही मार्ग चुना है जो मार्क्स एंगेल्स और उनके अनुयायियों ने निर्देशित किया था। तब : मार्क्सवाद के साथ उनका वैचारिक जुड़ाव युग की मूल आवश्यकता के रूप में जुड़ा है। 'जंगल का दर्द' में मार्क्सवादी-मानववाद के स्वर -- व्यक्त्या विरोध, वर्ग-वैषम्य, श्रान्ति, सर्वकार की पक्षधरता तथा सर्वस्व के अस्वीकार के रूप में सुने जा सकते हैं।

१- 'व्यक्त्या, व्यक्त्या फैलाती है साहित्यकार नहीं। वह यदि व्यक्त्या को पहचानने से इन्कार करता है तो जरूर उसमें मानवीयता बसती है। साहित्य का काम उस व्यक्त्या को पहचानना, उसके मूल - स्रोत को समझना और उसे दूर करने के लिए आकांक्षा, गुस्सा और संकल्प पैदा करना है।'

सर्वेस्वर दयाल सक्सेना - प्रकाशन समाचार, दिसम्बर १९७८ ।

२- श्री सोमदत्त - 'व्यक्त्याविरोधी के बावजूद' ( लेख ), पूर्वग्रह - जुलाई

अगस्त ७७, :पृ० १५ ।

( क ) व्यक्त्वा विरोध :-

वर्तमान व्यक्त्वा पूजावाद पर आधारित है । ' पूजापति ' शब्द केवल मात्र समाज के उन घनी व्यक्तियों का ही यातक नहीं है जो समाज के गरीब वर्ग के शोषण द्वारा अर्जित धन के बत पर समाज में महत्त्व-पूर्ण है अपितु पण्डे , पुरोहित , भौतवी आदि धार्मिक शोणक तथा प्रष्ट राजनीतिक - नेता , इसी शब्द के अन्तर्गत आते हैं । यह शब्द अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों को जन्म देने वाले, सामान्य जनता को गुमराह करके अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने वाले तथा धन-लोलुप शोणक-वर्ग के लिए रुढ़ हो गया है । मार्क्सवादी मानववाद ऐसी स्वार्थी और प्रष्ट सत्ता का प्रतिकार करता है ।

' जंगल का वर्द ' के कवि ने पूजापतियों की कुछ नये विशेषण दिये हैं -- मोढ़िया , तेंदुवा , साँप आदि । मोढ़िये की कीमियागीरी , तेंदुवा का धुलधुलापन और साँप की विषधरता --- एक साथ पूजापति-वर्ग में भिल्ली है । इस वर्ग की धट्टा यह है कि ---

“ वह आपाभार सैनिक की तरह

खुद अंधेरे में रहता है

और हमें उजाते में लड़ा देता रहता है,

भौके की तताश में

और हम अंधेरे में टार्च की रोशनी की

फेंकते रहते हैं ।<sup>१</sup>

समाज में रहते हुए भी ये ' काता तेंदुवा ' एकदम सफेदपोश बना रहता है।

वह लगातार शोषण करता रहता है पर उसकी सफेदपोशी के कारण

शोणित बेचारा उसे पहचान भी नहीं पाता । '.....He is fed-up with those in power and with political parties.'<sup>1</sup>

जहर सर्वेद्वार ने सत्ता की समानवीर्यता को स्वीकारा है । 'जगत का दर्द' में शोणण के कई रूप सामने आते हैं । उसमें प्रमुक्ता उस राजनीतिक-शोणण की है जो टुकड़े फेंक कर समाज के कमजोर काँ को 'पट्टाघारी कुत्ता' बनाये हुए है । राजनीतिक नेता ज़िगर चाली उबर ही थे शोणित-कुत्ते मुड़ जायें । सर्वेद्वार इस स्थिति का विरोध करते हैं लेकिन कुत्ते का कुंभ काटकर इस स्थिति से छुटकारा नहीं मिल सकता । कुंभ काट देने पर भी 'कुंभ हिलाने का मान, नहीं जायेगा ।'<sup>2</sup> शोध ने इस शोण को जड़ धाँसि मिटाने का उपाय लोज लिया है —

“ तुम्हें टुकड़जोरी के रास्ते  
बन्द करने होंगे । ”<sup>3</sup>

वर्तमान व्यवस्था लोकतान्त्रिक नाम मान के लिए है । लोकतन्त्र के नाम पर यह शासक और शासित, पूँजीपति और सर्वहारा, मिल भातिक और मजदूर — इन श्रेणियों में विभक्त है । समाज की यह कक्षा बहुत लम्बे जर्से से चली जा रही है — “ टाई हजार वर्णों से समाज जिस श्रेणी-विभाग के रास्ते से बढ़ जाता है, पूँजीवादी समाज उस पथ का अन्तिम पर्याय है । पूँजीवादी उत्पादन पद्धति समाज को आज एक चरम संकट की ओर, एक म्यानक विषय की ओर ले जा रही है । पूँजीवादी राष्ट्र शक्ति पूँजीवाद की रक्षा के अमानुषिक प्रयास में सर्वहारा के जीवन को असहनीय दुःख-दुर्दशा के निम्नतम स्तर में ढकेली चली जा रही है — ”<sup>4</sup> कम्युनिस्ट पार्टी के शोणणापन

1- Sarveshwar Dayal Saxena- South Asian Digest of Regional

2- जगत का दर्द : पृ० ४६ ।

Writing : P. 22.

3- वही : पृ० ४६ ।

4- महेश्वर चन्द्र राय - मार्क्सवाद और साहित्य : पृ० २४ ।

में मार्क्स और एंगेल्स ने तानाशाहों को सत्ता धारण करने में व्योम्य सिद्ध किया ।<sup>१</sup> सत्ताधारियों की लक्ष्यता के प्रति लाट्रोस की भावना 'काल का दर्द' में भी मिलती है । 'बहुत ही चुका अब ऐसे नहीं चलेगा' <sup>२</sup> की भावना से ही वर्तमान में सत्ताखंड शासक के प्रतिहार की शुरुआत हो जाती है। यहाँ व्यवस्था-परिवर्तन के लिए जो हथियार उठाये गये हैं वे बहुत सीन समझकर उठाये गये हैं, जिससे निशाना चूकने की कोई गूनाइस न रहे । शीघ्र जिस रूप में है उसके समुप हथियार भी लक्ष्यित हैं । कंधों में रंगता हुआ साँप यदि लाठियाँ मारने पर भी सुरक्षित है तो उसके लिए सुरन्त हथियार बदल देने की जरूरत है ।<sup>३</sup> लेकिन यदि साँप हवा में उड़ने वाला है तो उसके लिए

१- "पूँजीपति का सब समाज का शासन बने रहने के लिये समाज पर अपने अस्तित्व की व्यवस्थाओं को, अनिवार्य नियम के रूप में लादने के व्योम्य है । --- समाज अब पूँजीपति का के भातहत नहीं रह सकता-  
--- दूसरे शब्दों में, पूँजीपति का का अस्तित्व अब समाज से मेल नहीं खाता ।"

मार्क्स-एंगेल्स — कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र : पृ० २०-२१ ।

२- काल का दर्द : पृ० २६ ।

३- "ज्या प्रतिष्ठा है"

जब तक वह

सम्मत धूमि पर न ला जाये,

या अपना अस्त्र

बदल दूँ ?

वही : पृ० ३४ ।

मशाल के साथ-साथ आसैं लौतकर , स्तर्क होकर चलना बहुत जरूरी है ---

“ जब हों हवा में उड़ रहे  
हर सिन्ध साप-साप-साप  
तक एक मशाल के तले  
चलते निगाहें लौत कर । ”<sup>१</sup>

जाग से डरना मेड़िये का चारित्रिक गुण है । समाज में रहने वाला मेड़िया  
अर्थात् शोणक- क्रान्ति की जाग से डर कर भागेगा -- कवि की पूरा विश्वास  
है --- “ अब तुम मशाल उठा

मेड़िये के करीब जाओ  
मेड़िया भागेगा । ”<sup>२</sup>

‘ जगत का दर्द ’ का कवि वर्तमान व्यवस्था और व्यवस्थापकों से अत्यन्तुष्ट है,  
जो : सर्वत्र उनका प्रतिकार करता है । अतएव कहीं वह पैराव करने , जाग  
लगाने की बात कहता है तो कहीं शोणक-मेड़ियों को समाज से बाहर खदेड़ देने  
की । उनका उद्देश्य है समाज के मूल ढाँचे को बदल देना ---

“ In the present society there is no longer  
any scope for reform, the only choice left is that of  
fundamental change. ”<sup>3</sup>

१- जगत का दर्द : पृ० १२२ ।

२- वही : पृ० २८ ।

३- Sarveshwar Dayal Saxena- South Asian Digest of  
Regional Writing: P. 87.

( स ) कां - वेणम्य और ज्ञानि :-

मानसवादियों की दृष्टि केवल मान जीवन के मध्य- पक्ष पर ही नहीं ठहरी है , सब यह है कि समाज की , जीवन की कुरूपताओं को उन्होंने विशेष रूप से देखा है । इनका उद्देश्य समाज की वास्तविकताओं को लीत - लीत कर सामने रखना है । ' ' जो शायर यानी कवि या कलाकार होगा वह सबसे पहले इन्सान की -- ' अच्छी ' हीं या ' बुरी ' -- निजी अनुभूतियों के नाश-निगार पेश करेगा ; इसलिए नहीं कि उसे मानववाद का प्रभाव जाटना है , बल्कि इसलिए कि वह उनमें लीया हुआ है , और जो कुछ उसकी आँख देख रही है , दिल महसूस कर रहा है , उसे वह पेश करने पर मजबूर है । ' ' यथार्थ चित्रण के इस दुराग्रह से साहित्य के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि आज का साहित्य केवल मान सत्ताधारियों की धरोहर नहीं रहा बल्कि उस सत्ता के नीचे दबने - पिसने वाले शोणितों की गन्दी , बदबू भरी और मुत्ता-नी की वस्तुओं में पहुँच गया --- वह जनता का साहित्य हो गया । सर्वेश्वर के साहित्य में यह जन-केतना पूरे आवेष्ट और ईमानदारी के साथ मौजूद है । ' ' इनके काव्य चिन्तन पर समाजवादी विचार-धारा का प्रभाव है । ये जन-केतना के कवि हैं । आज का जन - जीवन अपनी समस्त सुखियों और शोणितों के साथ इनकी कविताओं में उमरा है । ' ' २

' जनत का दर्द ' की मूल पीड़ा समाज में व्याप्त कां-वेणम्य है । मानसवाद के प्रभाव स्वरूप सर्वेश्वर की सहानुभूति भी शोणित कां के साथ है । इस संग्रह का मुख्य पात्र यही शोणित - मानव है । व्यक्त्या की दुर्बलीयता से जाग्रान्त

१- समशेर बहादुर - कातोचना, जुलाई १९६३ ,: पृ० १४ ।

२- डा० रामचन्द्रन राय -- नई कविता : उद्भव और विकास : पृ० १४६ ।

इस मानव का एक विनम्र रूप प्रकाश है ---

“ वहाँ तमाम बेहरे थे :

बुझी बेहरे, उदास बेहरे, गुस्से लीर

दाँम से मरे बेहरे, फाँके, निस्तेज,

धूल लीये बेहरे । ” १

सर्वहारा की पीड़ाओं को अधिक स्पष्टता और संवेदनीयता देने के लिए सर्वेश्वर ने समाज के दूसरे वर्ग को भी प्रस्तुत किया है। कवि ने इस वर्ग की समस्त तकियों को मोड़िये के प्रतीक द्वारा साधने रखा। इसका पहला चारित्रिक-दोष यह है कि ‘मोड़िये की जाँचें सुई हैं’<sup>२</sup> अर्थात् उसकी जाँचों में हिंसा के भाव हैं। दूसरा दोष है कि ‘मोड़िया गुराँता है’<sup>३</sup>। ‘जाता तेंदुला’ में शोणितों की क्रूरता और बहिष्पन अधिक सक्रिय है<sup>४</sup>। समाज में व्याप्त अंधानता और सत्ताधारियों के अत्याचार सर्वहारा के पतन का कारण हैं। तीन पाँक्तियों में सर्वेश्वर ने पूरे समाज और उसकी व्यापकों

१- जात का दर्द : पृ० १२ ।

२- वही : पृ० २६ ।

३- वही : पृ० २८ ।

४- “ चट्टानों पर फिँफोड़ रहा है अपना शिकार

जाता तेंदुला

चट्टानें, चट्टानें नहीं रही

तेंदुलों में बदल गया है । ”

वही : पृ० ४२-४३ ।

को समेटकर रक्त दिया है --

“ ताकतवर ने सब सा लिया  
कमजोर ने उच्छिष्ट से  
सन्तान कर , दर्द से मुह दिया लिया । ”<sup>१</sup>

गलत स्थितियों से सन्तुष्ट होकर मुह दिया लेता , सामाजिक-असमानता को बढ़ावा देना है । ‘ पाव ही पात लगा निबटो ’ का समर्थक यह कवि इन स्थितियों को चुप रहकर फेंक नहीं पाता और सर्वहारा की धस्तियों में घुम-घूम कर श्रान्ति का खतब जगाता है । इन स्थितियों से घुफने, निबटने का एक ही मार्ग उसके सामने है --- रक्त श्रान्ति का मार्ग ।

सर्वेस्वर में राजनीतिक विद्रोह की भावना ‘ गर्म हवाएं ’ संग्रह की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ सामने आती है ---

“ अब मैं कवि नहीं रहा  
एक काता फण्डा हूँ ।  
तिरपन करौड़ मोहों के बीच मातम में  
लड़ा है मेरा कविता । ”<sup>२</sup>

‘ काता फण्डा ’ विद्रोह का सूचक है और तिरपन करौड़ मोहों भारतीय जनता का प्रतीक है , जिनके बीच कवि लड़ा है । ‘ कुबानो नदी ’ में सर्वेस्वर सामाजिक , राजनीतिक आदि स्थितियों का सुस्पष्ट अवलोकन करते हैं, अव्यवस्था से परेशान होकर श्रान्ति करने , ना करने के अन्तर्द्वन्द्व से गुजरते हैं --- लेकिन श्रान्ति कर नहीं पाते । अन्त में वे यही निष्कर्ष निकालते हैं कि ‘ पथराव से

१- जगत का दर्द : पृ० ४४ ।

२- सर्वेस्वर क्यात खसैना - गर्म हवाएं ।



कूट नहीं होगा ।<sup>१</sup> 'जंगल का वर्द' -- 'कुआनी नदी' से जंगल की स्थिति है । 'कुआनी नदी' में जो स्थितियाँ पक रही थीं वे यहाँ फट पड़ी हैं, वहाँ जो कवि पथराव की व्यर्थ समझता था वही यहाँ 'पैराव करने' और 'जाग लगा देने' की बात कहता है । 'कुआनी नदी' में जो यह मानता था कि 'स शब्द बुलैट नहीं हो सकते'<sup>२</sup> उसी के शब्द यहाँ जाकर युद्ध-भूमि में बदल गये हैं ---

“ शब्द जिन्हें मैं बर्फ की सिलियों पर भी  
अकेली चींटी-सा चला ले जाता था ”

+ + +  
वे युद्धभूमि में बदल गये हैं ।<sup>३</sup>

'जंगल का वर्द' में क्रांति के कारणों की पहचान कराने में उसके भूखण्ड का चित्र भी पर्याप्त सक्षम है । इसमें चारों ओर गहरी कालिमा और हानन्त के बीच सूती शाख पर बैठा हुआ उल्लू चित्रित है । उल्लू आज के शासकों का प्रतीक है । उल्लू - जो भूखता का पर्याय है लेकिन तदपी जिसके सिर पर सवार रहती है । कवि का सैन्य सत्ताधारियों की भूखता और धनलोलुपता के प्रतीक है । जहाँ का शासक उल्लू होगा वहाँ का समाज और राष्ट्र स्वयं ही जंगल की तरह अव्यवस्थित हो जायेगा । 'हर शाख पे उल्लू बैठा है, जन्मामे गुलिस्तां क्या होगा' --- की तरह वर्तमान समाज का वर्द भी अयोग्य शासक तथा अव्यवस्थित राजनीति के कारण है । इस अव्यवस्था से कवि चिन्तित है,

१- सर्वेश्वर दयाल - कुआनी नदी : पृ० ६० ।

२- वही : पृ० ६४ ।

३- जंगल का वर्द : पृ० १६-१७ ।

वयसि ऐसे शान्तमनः के भाविष्य से भी वह अपरिचित नहीं है। 'चौद्वे दिन  
 और' ---, वादल हटेंगे, ऋतु के सिरमौर, पेरों पटेंगे।<sup>१</sup> जैसा  
 पंक्तियाँ कवि ने भाविष्य - दर्शन की साम्यता का प्रतिफल है। लेकिन ताना-  
 शाही की जड़ें भी समाज में बहुत गहरी और भज्जत हैं। उन्हें उखाड़ने के लिए  
 संगठित-ग्रान्थि सम्मान लायन है, असीमित वे सर्वत्र संगठित होकर ग्रान्थि  
 करने का वाद्धान करते हैं। साथ ही साथ वे उन विद्यार्थियों को भी रखते  
 चले हैं जो ग्रान्थि के लिए उत्तरदायी हैं। एक ओर बर्त्थाचार करने बढ़ गये  
 हैं कि जल्दा कुछ बोल नहीं सकती, उच्चैः शब्दों में ही कैद हो गये हैं।<sup>२</sup>  
 दूसरी ओर तानाशाहों के सङ्घर्ष निरन्तर चलते जा रहे हैं। 'रसीद' जगता  
 में ये सङ्घर्ष सामने आये हैं ---

'' मैं नहीं जानता  
 मगाने में क्या पक रहा है ?  
 + + +  
 केवल ज्ञान जानता हूँ  
 मगाना गर्भ है ....।''<sup>३</sup>

यहाँ 'मगाने में कुछ पक रहा है' के द्वारा कवि ने शीघ्रता का में चुपचाप  
 पकने वाले सङ्घर्षों की ओर संकेत किया है। एक तरफ़ ये सङ्घर्ष हैं तो दूसरी  
 तरफ़ 'पोलिटिकल - फास्टर्स' भी हैं जो कंठ में कर्क हो गये शब्दों को  
 ग्रान्थि की मशाल से पिघला रहे हैं। 'रसीद' जगता में सारी ठंड

१- जगत का दर्प : पृ० ६८ ।

२- '' किसकी ठंड है  
 शब्द कंठ में ही  
 कर्क हो गये । ''  
 वही : पृ० ६ ।

३- वही : पृ० २० ।

और कर्क को घेद कर उनके स्वर फूट पड़ते हैं —

“ बाहर लोगों के जोर-जोर से

वोली की आवाज आती है :

बहुत ही चुका अब ऐसे नहीं चलेगा । ” १

सर्वेश्वर की ज्ञान्ति की यह वृद्धता है कि वे कहीं भी परिस्थितियों से घबरा कर मुँह भीड़ ली की बात नहीं करते । उनके लिए कहीं भी स्थिति केवल स्थिति है , नियति नहीं , और —

“ स्थिति

आसानी से बदली जा सकती है ।

केवल थोड़ी-सी हरकत जरूरी है । ” २

स्थितियों के सामने कत-मस्तक होकर जीना अपने आप को तितल-तितल करके धारना है अतः उनसे जफने, संघर्ष करने में ही मानव जीवन की सार्थकता है।  
“ सर्वेश्वर में न केवल सम्प्रामाणिकता के माव बोध के गहनतम स्तर उद्घाटित हुए हैं वरन् उसमें उस युग की समस्याओं के प्रति साहसिक बागकला है । ” ४

१- जंगल का दण्ड : पृ० २१ ।

२- वही : पृ० ५१ ।

३- “ बंद रास्ते पर

बौढ़ने का यातना जानते हुए भी

बोहो । ”

वही : पृ० २४ ।

४- डा० रघुवंश - विवेक के रंग : पृ० १२३ ।

सर्वेस्वर जानते हैं कि गान्धी या जे० पी० की तान-बायलेन्स को अपना कर इस तानाशाही से मोचा नहीं लिया जा सकता । इसके लिए मार्क्स का हथ-बारा ही सार्थक हो सकता है । आज कहीं मोहिये की आँखें खुल गई हैं तो कहीं तेंदुआ चट्टानों पर शिकार फिंफोड़ रहा है । जब शीणक वर्ग पूरी तरह हिंसा पर उतर आया है तो जाँहसक बने रहकर उससे संघर्ष नहीं किया जा सकता है । इसीलिए जब तक तेंदुआ ( शीणक वर्ग ) शान्त है तो चट्टानें ( शीणित वर्ग ) भी शान्त और स्थिर हैं लेकिन जब तेंदुआ अपने शिकार को फिंफोड़ रहा है तो —

“ चट्टानें, चट्टानें नहीं रहें

तेंदुओं में बदल गयी हैं । ” १ २

“ यह सुनी बात है कि अभी तो जहाँ भी समाजवादी क्रान्ति हुई है कम्युनिस्टों के नेतृत्व में हुई है । इसीलिए क्रान्ति का सम्बन्ध लाल रंग से है । ” ३ जंगल का वृक्ष में क्रान्ति की सुखी कड़ काँकाजों में देसी जा सकती है । ४ लाल साक्षित

६- “ पूँजीपति का विनाश वर्ग-क्रान्ति द्वारा ही संभव है । वर्ग-क्रान्ति के लिए भजदूरों में वर्ग-कैतना उत्पन्न करना लाजिबाब है । भजदूर जब तक अपने आप की मेढ़ और पूँजीपति को मोड़िया नहीं मानता तब तक वह क्रान्ति के लिए अभी तत्पर न होगा । मार्क्स और गान्धी दोनों ही काहीन समाज की स्थापना में विश्वास करते हैं । किन्तु जहाँ गान्धी जो अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सत्य, अहिंसा और प्रेम के द्वारा हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं, वहाँ मार्क्स केवल रक्त क्रान्ति में । ”

श्री सम्मुनाथ पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की प्रसिद्धि: पृ० २१ ।

२- जंगल का वृक्ष : पृ० ६३ ।

३- विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी - साहित्य का वर्तमान संदर्भ ( लेख ) संप्रेषण दूध,  
सितम्बर १९७५: पृ० ३१ ।

४- जंगल का वृक्ष : पृ० ४६ ।

का लाल रंग रक्त-क्रान्ति का प्रतीक है। लाल साक्षित किसी भी क्रान्ति-कारि कथवा मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतीक है। जिसका आधार कैंटीला है। क्रान्ति का मार्ग निष्कण्टक नहीं है, ऐसा कभी कवि का सक्ति है। 'साक्षित' शब्द गाँते का प्रतीक है लेकिन इस साक्षित का अभी तक कोई सुयोग्य चालक नहीं मिला है क्योंकि वह शान्त पड़ा है। 'मेड़िया-२' में मेड़िये का सबसे सुख है तो कवि की इच्छा है कि ---

“उसे तब तक धुरी  
जब तक तुम्हारी लारें  
सुख न हो जायें ।”<sup>१</sup>

‘सुख हथेलियाँ’<sup>२</sup> कविता दूसरे खण्ड (प्रेम खण्ड) के अन्तर्गत है जहाँ : जहाँ जो सुख है उसे प्रेम की माधना से जोड़ा जा सकता था, लेकिन यह सुख यदि लार्जों या लीठों में लीला तो प्रणय की प्रतीक ही समझी थी ---- हथेलियों से जुड़ जाने के बाद यह कर्म की प्रतीक हो गया। मार्क्स मनुष्य की सारी शक्ति को उसके हाथों में, उसके कर्म में कैद मानता है। मनुष्य के जो हाथ भिट्टी, गारा और पसीने से सन सकते हैं वही हून में भी सन सकते हैं। यहाँ जो हथेलियाँ हैं वे इसी प्रकार की हैं। इस कविता में शुरू से अन्तिम तक रूपान्तरण की एक प्रक्रिया चली है --- सबसे पहले कवि ने मीरों की कमल में रूपान्तरित होते देखा है। मीरा- अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो पूजा की प्राप्ति के लिए व्याकुल था, कमल उस पराग और सुगन्ध का पूज है जिसके लिये मीरा मटक रहा था। इसके बाद मीरा स्वयं कमल हो गया अर्थात् वह व्यक्ति जो पूजा-प्राप्ति के लिये मटक रहा था वह स्वयं पूजापाति हो गया। यह कमल

१- जगत का दर्ब : पृ० २६ ।

२- वही : पृ० ६३ ।

नीचे जल में बदल गया — जल कमल का भूत है और कमल से भी अधिक  
 किस्तार का यौतक है अर्थात् पूँजीपतियों की पूँजी लगातार बढ़ती गयी—  
 नीचे जल की तरह अपार हो गयी, यदि नीला जल हो तो अनभिज्ञ कमल  
 पेदा हो सकते हैं। यह जल अखंड रूप से पादियों में बदल गया है। ईश्वर-  
 पदा — मानव-मन की अखंड चक्षुषों, कामनाओं के प्रतीक हैं। अपरिमित  
 पूँजी प्राप्त होने के बाद विविध चक्षुषों की जागृति स्वभाविक है। ईश्वर-  
 पदा पूँजीपतियों की सफेदपोशी के भी यौतक है। इस प्रकार पूँजी का किस्तार  
 और सफेदपोशी-‘वर्ण’ के आधार पर होने वाले शोषण की और संकेत  
 करता है। कवि जानता है कि सफेदपोशी हैं तो उनके लिए आकाश भी अपेक्षित  
 है। यहाँ सर्वेश्वर ने जिस आकाश का वर्णन किया है वह सुख है। सुख आकाश  
 शान्ति के किस्तार, उसकी अपरिमितता का यौतक है। पूँजीपति अपनी अखंड  
 चक्षुषों के साथ जब उड़ान में मरेगा अर्थात् शोषण करेगा तो उसे लक्ष्य ही  
 शान्ति के सुख आकाश से टकराना पड़ेगा। यह सुखी रक्त शान्ति के कारण  
 है जो कवि की कम्युनिज्म से जोड़ी है। यह सुख आकाश शोषितों की झुठो  
 में सिमटा हुआ है क्योंकि कवि ने आकाश को हथेलियों में बदलते हुए देखा है।  
 शोषित वर्ग चाहे जब झुठो खोल सकता है और शान्ति करके अपनी स्थिति को  
 बदल सकता है। इस शान्ति के बाद ही शोषित वर्ग के आसु स्वप्न में बदल  
 गये हैं — स्वप्न जो सुख होते हैं। यहाँ कवि पूरी तरह कम्युनिस्ट हो गया  
 है। शोषितों के आसु पीकने के लिए उसके सामने केवल मात्र रक्त शान्ति का  
 ही रास्ता है। लेकिन चीन के गुरिल्लावादियों की तरह वह एकदम खूब उठा  
 लेने की बात नहीं करता बल्कि मार्क्सवादियों की तरह पहले धैर्य करने,  
 वाग लाने की बात करता है उसके बाद खूब उठाता है।

मार्क्स का विश्वास था कि शान्ति के माध्यम से तानाशाही का  
 अन्त आवश्यक होगा और शासकत्व शोषित वर्ग के हाथ में आ जायेगा। सत्ता  
 प्राप्त कर लेने पर यही शोषित तानाशाह ही उठेगा और फिर शान्ति के  
 द्वारा उसका भी अन्त होगा। सर्वेश्वर भी शान्ति की एक ऐतिहासिक-प्रक्रिया

मानते हैं<sup>१</sup>। अपने समसामयिक यथार्थ से जुड़ा और उच्चतर कल्पनबद्ध सुतासा कवि की लोक-सम्पृक्ति, युगिन वास्तविकता के प्रति उसकी जागरूकता तथा उसके काव्य की जीवन्तता और पूर्णता का प्रमाण है — “कविता जन्मि ही, अर्थात् वह जीवन के वास्तविक वातावरण और परिस्थितियों की जमीन पर जन्म ले, वही में उसकी पूर्णता है।”<sup>२</sup>

#### ( १ ) सर्वहारा की फहायरा :-

मानसर्वादेयों का सात्कातिक उद्देश्य सर्वहारा की एक का के रूप में संगठित करना, प्रजावादी प्रभुत्व का सत्ता पतटना और राजनीतिक सत्ता पर सर्वहारा का को स्थापित करना है। एतः उनकी विशेष सक्षानुप्राति समाज के अस्त- पस्त सर्वहारा का के साथ है। जंगल का दर्व का कावे वही का के बीच में खड़ा हुआ है। सर्वहारा का के साथ वह क्षणा घुलामिल गया है

१- “ इतिहास के जंगल में

हर बार मेड़िया भाँद से निकाला जायेगा ।

कादमी साक्ष से , एक हीकर,

मशाल लिए खड़ा हीगा ।

इतिहास जिम्मा रहेगा

और तुम की ”

जंगल का दर्व : पृ० ३१ ।

२- कौय - कूचरा सप्तक : पृ० ३५ ।

कि उसकी कोई पृथक् व्यक्तता नहीं रही है —

“ बेहरों की उस मोड़ में  
मेरा बेहरा ली गया है । ”<sup>६</sup>

इस समात्मता के बाद उसे अपनी निजता से नफरत होने लगती है । तदाका-  
रिता की यह स्थिति इस हद तक पहुँच गयी है कि कवि का अपना अस्तित्व  
गुम गया है । बहुत तलाशने पर भी उसे अपना कब तक दिखाई नहीं देता—

“..... मेरे  
अपना दर्पण उठाया  
और पहली बार मेरे उसमें  
अपना बेहरा नहीं पाया । ”<sup>७</sup>

अस्तित्व का यह वित्यक्त, स्वयं के प्रति कवि की भावनात्मक-संज्ञा का  
संकेत है । सर्वहारा-विषयक अनुभूतियों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कवि  
की दृष्टि में, अपने अस्तित्व की प्रमाणित करने का एक साधन है :—

“ If through my poetry I can communicate the  
suffering of the common man of my country, of my world,

---

१- सर्वेश्वर दयाल - जगत का दर्द : पृ० १२ ।

२- “ ..... कुछ बाँधे” ऐसी होती है

जिनमें अपने की देखने की कोशिश करना

अपने से नफरत करने की सुझाव होती है । ”

जगत का दर्द : पृ० १२ ।

३- वही : पृ० १२ ।



**I shall be satisfied, for this will mean to me no less than that in this century I have proved my existence."**<sup>1</sup>

सर्वेश्वर के बार-बार एवधारा का की समस्याओं से जुड़ जाते हैं। भूत, शीतल, लालाशाही कावे समस्याओं की उसने अपने काव्य में विशेष प्रकय दिया है। कति और माविष्य की अपेक्षा वह अपने कर्माम में अधिक सीमित है। कतः उसने जिन विविधताओं को उठाया है वे काव्य के मानव की, काव्य के समाज की हैं। इन विविधताओं से उत्पन्न उसकी नियति है, इसी उतावा और कीर्त उपाय भी नहीं है।<sup>2</sup> उनके भुक्ति के लिए कवि ज्ञान्ति का रास्ता बताता है। ज्ञान्ति करने, भसात उठाने में एवधारा के साथ उत्तरी की पूरी हिस्सेवारी है।

“एव --

उनका और मेरा बेहरा एक ही गया है।  
 हम सब एक क्षार हैं, एक लमट, एक काग,  
 एक शब्द, एक अर्थ, एक राग,  
 एक चरण, एक यात्रा, एक राह,  
 एक संकल्प, एक नारा, एक चाह,  
 समर्पित  
 एक ज्ञान्ति की।”<sup>3</sup>

कवि का यह समर्पण कुत्साही की तरह जल को झोंटा करने के लिए नहीं है,

<sup>1</sup> Sarveshwar Dayal Saxena, South Asian Digest of Regional  
 2- “और तुम कर की क्या समझो ही  
 Writing : P. 90.

कब वह तुम्हारी सामने ही : ”

जल का दर्द : पृ० २५ ।

3- वही : पृ० १६ ।

कृषी की तरह सूजन की इच्छा से वह समापित हुआ है।<sup>1</sup> यह कृषी रंग मरी है  
 का : सूजन की दाम्ना से युक्त है। कुत्ताड़ी का काम काट कर छोटा करना  
 है, नवनिर्माण की सामर्थ्य उसमें नहीं है। 'कृषी' यहां तीन वर्णों में प्रयुक्त  
 हुआ है -- क्रान्ति के लक्ष्य में यह शस्त्र है, कवि कर्म के लक्ष्य में यह कस्तुर है और  
 प्रेम के क्षेत्र में उसकी प्रेमी माधनाओं की थीतक है। इस कृषी से रीढ़ियां की  
 रंगी जा सकती हैं, कोई मयानक जादूति भी बनायी जा सकती है और पणाय  
 - संदर्भों-में नयी सृष्टि भी की जा सकती है। इसके द्वारा कवि साहित्य -  
 सूजन और क्रान्ति करना चाहता है, समाज के विस्तृत फलक पर चीखना  
 तथा समाज का विस्तार करना चाहता है। 'कुआनी नदी' के संदर्भ में  
 सर्वेश्वर ने "I stand by the side of this common-man" <sup>2</sup>  
 कहकर जिस लोक सम्पृक्ति की घोषणा की थी उसे जंगल का दर्द में व्यावहारिक  
 रूप मिला है।

सर्वेश्वर ने मानव समस्याओं को उठा-उठाकर दिखाने के बाद  
 ही अपने कर्तव्य की दृष्टि नहीं समझती है -- इन समस्याओं के समाधान  
 के लिए, मानव भुक्ति के लिए कवि की छटपटाहट सर्वत्र मिलती है। वह  
 घेरबंद करने, बाग लगाने और यहां तक कि सुन-सरावा करने को भी तत्पर  
 है। 'कुआनी नदी' में जो कवि 'मान रही और प्रतीक्षा करो' <sup>3</sup> का

१- "मेरे सुव की तुम्हारे हाथों में

इस जंगल की छोटा करने नहीं सीपा--कुत्ताड़ी की तरह,

एक रंग मरी कृषी की तरह

मेरे सुव की तुम्हारे हाथों में दे दिया।"

जंगल का दर्द : पृ० ८८।

२- Sarveshwar Dayal Saxena - South Asian Digest of  
 Regional Writing : P. 88.

३- कुआनी नदी : पृ० २३।

मन्त्र जप रहा था वही यहाँ ' इन्तजार शत्रु है , उस पर यकीन मत करो ,  
 का नारा उठाती लाता है । इस नारे के द्वारा मानव भुक्ति के लिए उसकी  
 सेवा स्पष्ट हो जाती है , एक पल की भी प्रतीक्षा उसे बरदाश्त नहीं है ।  
 " सर्वेश्वर में यह लोक-सम्पृक्ति व्यक्तित्व के एक सहज गुण के रूप में विकसित  
 हुयी है - - - साधारण व्यक्ति की साधारण तथा कमी-कमी असाधारण  
 समस्याएँ उनके काव्य का उपजीव्य हैं । " २ अपने मूल उद्देश्य में सर्वहारा  
 और उसकी भुक्ति से जुड़े होने के कारण सर्वेश्वर इस धर्म के प्रबल पदाधार है  
 और मार्क्सवादी-साहित्य की तरह उनका साहित्य जनता का साहित्य है--  
 -- " जनता के साहित्य से अर्थ है ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन-मूल्यों को,  
 जनता के जीवनावस्थाओं को प्रतिष्ठापित करता है , उसे अपने भुक्ति-मार्ग पर  
 अग्रसर करता है । इस भुक्ति-मार्ग का अर्थ राजनैतिक- भुक्ति से लाकर अज्ञान  
 से भुक्ति तक है । " ३

( घ ) ईश्वर : अस्मति की मुद्रा :-

मार्क्सवादियों की दृष्टि में ईश्वर अथवा धर्म का कोई महत्व  
 नहीं है । उनकी आस्था मानव और मानव-शक्ति में है । उनके लिए ईश्वर  
 ' राई को पक्का और पक्का को राई करने ' वाली सर्व समर्थ सत्ता नहीं है ।  
 उनके मानव की सामर्थ्य के जाने ईश्वर की शक्ति जोड़ी पड़ जाती है । यह  
 मानव कर्म और शक्ति के बल पर अपना माधेय्य गढ़ता है और अपने कामान को  
 सुन्दर बनाता है , इस कार्य में ईश्वर का कोई वक्त नहीं है । " आज मठापोशी

१- सर्वेश्वर बयाल कमल का बरव : पृ० ४१ ।

२- श्री रामस्वरूप कृतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन : पृ० ४७ ।

३- भुक्तिवाच - नये साहित्य का सामर्थ्यशास्त्र : पृ० ७६ ।

और महन्तों ने अपने की उस उत्सर्जनक शीघ्रता का के साथ मिला लिया है जो दूसरों के शीघ्रता पर पक्ता है। ईश्वर और धर्म इनके हाथ में एक धीमा-छत्र बन गये हैं। लावण्य का सुन करने वाले इन लोगों का सबसे बड़ा और तेज आचार ईश्वर है।..... मोक्षवादी होने के नाते समाजवादी - यथार्थवादी लेखक ईश्वर के अस्तित्व की नहीं मानते हैं।<sup>१</sup>

‘जगत का दर्द’ में ईश्वर अथवा देवीय शक्तियों पर प्रत्यक्ष प्रहार किसी भी क्रिया में नहीं किया गया है लेकिन कवि की अनास्थावादी भावनायें कहीं-कहीं अनायास प्रकट हो गयी हैं—

“ यदि ईश्वर है  
तो वह संगीत रचैगा ही  
मले ही वह मेंढक की तरह  
अन सुले पत्तों पर  
दूर तक उड़ता चला जाये। ”<sup>२</sup>

यहाँ ‘ईश्वर है’ से पूर्व ‘यदि’ लाकर ईश्वर के होने में संदेह प्रकट किया गया है। वह सार्थक संगीत रच सकेगा इसका भी कवि की दृढ़ विश्वास नहीं है। यह भी सम्भव है कि वह मानव-आकाङ्क्षाओं की सुले पत्तों पर मेंढक की तरह उड़ता चला जाये। सुले पत्तों पर उड़ती से हल्की चरमराहट तो हो सकती है लेकिन किसी संगीतबद्ध ध्वनि की उससे आशा नहीं की जा सकती। सर्वेश्वर की जहाँ ईश्वर की शक्ति के प्रति संदेह है वहीं वे मानव-शक्ति के प्रति बहुत अधिक आस्थावान हैं। इस मानव में वे सब कुछ कर लेने की

१- डा० एन० रवीन्द्र नाथ - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास : पृ० १२८-

२- जगत का दर्द : पृ० ८१ ।

-१३६ ।

सामर्थ्य देखते हैं :--'' ऐसा कोई जगह नहीं

'' जहाँ तुम न पहुँच सको

ऐसा कोई नहीं

जो तुम्हें रोक ले । '' १

वही वास्तवा के कारण उन्हें पूरा विश्वास है कि निराशा और वक्त्याव के जो वादत शीघ्रता पर हाथे हुए हैं वे शीघ्र ही फूट जायेंगे तथा तानाशाह शासन, जो आज समाज के सिरमोर बने हुए हैं वे कल शीघ्रता के पैरों के नीचे होंगे । २

आज का मनुष्य यदि धर्म चाहता भी है तो ऐसा धर्म जो उसे मौलिक सुख-सुविचार दे सके, जो उसे समाज से पलायन करना ना सिखाये बल्कि समाज में रहकर मानवीय पूर्णता की प्राप्ति करना सिखाये । '' जो वात्मा और शरीर के द्वन्द्व को हल कर सके, उसकी वाच्यात्मिक और मौलिक प्रवृत्तियों में सामंजस्य स्थापित कर सके और संयुक्त ब्रह्म के रूप में उसे पूर्णत्व प्रदान कर सके । '' ३ वर्तमान धार्मिक व्यवस्था मानव-पूर्णता पर आधारित नहीं है, उसका आधार शीघ्रता है । वह ईश्वर की कल्पना करके मनुष्य को मीर और निरर्थकी बनाती है । ऐसा ईश्वर भास्वबादियों की दृष्टि में बीमार है । सर्वेश्वर ने भी बीमार ईश्वर के लिए तीमारदारी की आवश्यकता महसूस की है ---

..... वेदुनियाद चीजों की एक कस्ती

सही हो जाती है,

ईश्वर और वाक्मी की

तीमारदारी के लिए । '' ४

१- जगत का दर्द : पृ० ३७ ।

२- वही : पृ० ६ ।

३- वा० ६० २० एनसट्रस - समकालीन विश्वसाहित्य पर एक दृष्टि (लेख)  
जातीयता, मुद्रा १९५३ : पृ० १२७ ।

४- जगत का दर्द : पृ० ७६ ।

“ मनुष्य के मर्यादित स्वभाव में निष्पत्ति का और निर्णय ही ईश्वर की दृष्टि की थी , ज्ञात : ईश्वर तथा कर्म दोनों का बाह्यकार हुआ । मनुष्य को स्वयं अपने मार्ग से संघर्ष करने अपने स्वर्ग की रचना करना चाहिए और अपना फलान स्वयं होना चाहिए ; उसे संसार की सीमाओं से , कहीं उस पार न देखकर अपने रचना विधान से इस संसार को ही स्वर्ग बनाना चाहिए । वर्तमान क्षाब्धी के मानववादियों की यही भूलभूत धारणा रही है जिसे वास्तव में मौक्तिक-नास्तिक मानववाद ही कह सकते हैं । ” १

मौक्तिक नास्तिक मानववाद कस्तुतः भास्ववादी मानववाद है जिसके अनुसार सृजन की सम्पूर्ण सम्पत्त संभावनाएं शीघ्रित मनुष्य की भुट्टी में कैद है। उसने हाथ कर्म का , शक्ति का मुलाधार है । सर्वेश्वर ने भी शीघ्रित का के हाथों को और उनकी ताकतों को लावेदार्य माना है --

“ हाथ ऊरी है

उसका चलना और भी ऊरी

और न रुकना सबसे ऊरी । ” २

इस प्रकार ‘ ज्ञात का दर्द ’ में मानव शक्तियों के समक्ष ईश्वर लहलहा गया है । कवि की कहीं भी ईश्वर की ऊँचता नहीं है , वर्तमान को बदलने और माधव्य को निर्मित करने में उसका शीघ्रित मानव पूरी तरह समर्थ है । ३

१- डा. ६० ए० एक्सट्रस - समकालीन विश्व साहित्य पर एक दृष्टि ( लेख )

२- ज्ञात का दर्द : पृ० २३ । आलोचना, मुद्रा ६ १९५३: पृ० १२७।

३- “ भास्ववाद ने यह ज्ञात दिया है कि <sup>मनु</sup>मानव समाज के विकास की पूरी निम्नतम कर्म है । युग की सम्पूर्ण संभावनाओं का निर्णायक सर्वकार है । ज्ञात : उसे साहित्य से बांधित रहकर जो साहित्य रचा जायेगा वह युग की सर्वोच्च नैतिकता और युग की सारी आन्तरिक शक्ति से रहित और शून्य होना । ”

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- साहित्य का वर्तमान संदर्भ ( लेख ) सम्प्रेषण,  
दून-सितम्बर १९७५: पृ० ५ ।

इसके अतिरिक्त प्रेम के दोन में भी सर्वेश्वर मानसवादी मान्यताओं से अक्षम्य नहीं हो सके हैं। पहली बात तो यह है कि संग्रह के स्त्री-प्राय के रूप में कवि ने सुन्दरता और कौमल्य की जितनी फूलों की नहीं चुना है वरिष्ठ उसी स्थान पर वे एक कमरेठ की लाये हैं जो मजदूरों की वास्तवियों में घुस घुमकर वहाँ के निवासियों की फूल जैसी कौमल्य मान्यताओं की शान्ति की आग में बदल रही है।:—

“ मैंने उसे फूल दिया

उसने उसे आग में बदल लिया । ” १

मानस और एलिज़ ने जिस प्रकार शीघ्रताओं की शान्ति का पाठ पढ़ाया था उसी प्रकार वह भी एक-एक पीढ़ी की शान्ति की श, की, सी सिखा रही है ---

“ यह फिर मजदूरों की और

भुलातिव दुर्ग ---

‘ एक बार फिर से तिलों साफ-साफ ---

‘ आग ’ । ” २

‘ यह घर ’ शीघ्रता कविता में इस कमरेठ का एक और रूप सामने आया है। शीघ्रताओं के प्रति उसकी सहानुभूति इस सीमा तक बढ़ी-बढ़ी है कि उनकी पीड़ाओं के समक्ष उसे अपने दायित्व-सम्बन्ध भी महत्वहीन लगते हैं। शीघ्रताओं की पीत-मुकुर सुन कर भी जो कायर बनकर बैठे रहे, शान्ति के लिए

१- जीत का दर्द : पृ० १४ ।

२- वही : पृ० १६ ।

तत्पर न ही जाये --- ऐसा पुरुषण उसे स्वीकार नहीं है ---

“यह उसकी आवाज थी :

‘यदि तुम कायरों की

जिन्की जियोने

तो मैं यह घर छोड़कर

कहीं चली जाऊंगी ।” ६

भावनाओं की अपेक्षा बौद्धिकता का प्राबल्य मार्क्सवादियों की भूत आवश्यकता है। काभरेड के द्वारा पार्टी के प्रति इसी प्रकार का समर्पण अपेक्षित होता है।

अन्त में, किसी भी कवि की कविताओं के आधार पर उसकी वैचारिकता की तलाश पूर्णतः : युक्तिसंगत न होती हुए भी निरर्थक नहीं है क्योंकि कविता अपने सुजन-राण में कवि की भावसिद्धता पर बहुत अधिक निर्भर करती है। अतः उसकी विचारधारा का आभास उसमें मिल ही जाता है। ‘जंगल का दर्द’ की पृष्ठभूमि में यद्यपि सर्वत्र मार्क्सवादी-वर्णन मिलता है लेकिन सिर्फ इसी आधार पर उसके कवि की मार्क्सवादी घोषित नहीं किया जा सकता। ‘जंगल का दर्द’ के परिप्रेक्ष्य में इस वर्णन की सार्थकता-निरर्थकता की जाँचना अनिवार्य है।

सर्वेस्वर की हाथिरे सहानुभूति समाज के मजदूर वर्ग के साथ है। इस वर्ग के दुस्त-दर्दों ने कवि की बहुत अधिक प्रभावित किया है। संघ का मूल उद्देश्य इस वर्ग की अपनी उन्नति के लिए, स्थिति-परिवर्तन के लिए तथा शोणिक-व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए तैयार करना है। यहाँ कहाँ तो उनकी सहानुभूति सच्ची लगती है लेकिन शोणितों की क्राप्ति के लिए तैयार कर लेने के बाद यह समझदाँ पीपी पड़ जाती है या यों कहिये कि उसकी वास्तविकता सामने आ जाती है, क्योंकि कि उसका यह समर्थन सश्रियता की हद तक



नहीं पहुँच पाता और नैवत्मान शब्दों की उहाल बनकर रह जाता है। बार-बार मशाल उठाने, धेराव करने, जाग ला देने का नारा लगाने के बावजूद और क्रान्ति की आवश्यकता को महसूस करते हुए भी --- जब-जब मशाल उठाने का समय आया, कवि सारी सहानुभूति और समर्थन को तिलांजलि देकर अपने आप को बचाने में लग गया। 'जाग' कविता में इस स्थिति की बार-बार देखा जा सकता है। यहाँ उसने क्रान्ति के बड़े-बड़े मारी-मरकम नारे उड़ाए हैं, यह जानता है कि 'कब उनकी कौटियों का धेराव करने के अलावा और कोई चारा नहीं है' --- लेकिन जहाँ भी यह जाग भड़की-कवि उसकी पुस्तक से अपने अस्तित्व को बचाने में लग गया। अंगितेज उसका क्रान्ति-सन्देश राज-नीतिक-नारेबाजी अथवा एक बुद्धिजीवी का शाब्दिकविलास ही लगता है, अनुभूति की गहराई से निकला हुआ सत्य प्रतीत नहीं होता। 'कब उनका और मेरा नैहरा एक हो गया है' तथा 'हम सब एक ऊंगार हैं'....समापित एक क्रान्ति की 'लिख देने से ही कवि को शीघ्रतः वर्ग के प्रति' समापित नहीं माना जा सकता। इस तदाकारिता के बावजूद कवि की 'आत्म राति' जो शीघ्रतः के प्रति प्रेम की भावना से काफी ऊपर स्थित है, सत्ता प्रकट हो जाती है। शब्दों अथवा नारों के जाल में उलझा कर कवि पाठकों को प्रमित नहीं कर पाता। कोई भी कवि ऐसी विस्फोटक स्थितियों में, जिनका चित्रण कवि ने किया है, बार-बार क्रान्ति का उपदेश देकर मसीहा तो बन सकता है पर सैनिक नहीं बन सकता। इसके लिये तो उसे मशाल उठानी पड़ेगी। सर्वेस्वर कहें भी इस मशाल को नहीं उठा सके हैं। सिर्फ मानसवादी शब्दावली, प्रतीक और भ्रम-जाग, मेहिया, मशाल आदि के प्रयोग से वर्ग-संघर्ष की प्रतिका तैयार नहीं हो सकती। यदि जाग कहने से ही जाग ला जाये तो इस सहानुभूति को सत्ता माना जा सकता है --- अन्यथा इस शब्द की सारहीनता है। कोई सन्देह नहीं रह जाता।

बार बार तबु मानव और शोणित का की वास्तुति -पुनरावृत्ति के बाद भी किसी एक की शोणित या पीड़ित की इन कविताओं से का-संघर्ष की प्रेरणा नहीं मिल सकती, यहाँ भी उसकी अनुभूतियों का उत्थापन आदे जा जाता है। ये अनुभूतियाँ सहज और संवेदनों की स्पर्श करने में असमर्थ हैं अतः कोई ठोस प्रभाव नहीं शीठ पाती पर व्यक्त्ता से निराश, अनाचार से दुःख, महाकारीय और विशिष्ट जीवन-दृष्टि ( मार्क्सवाद ) से मती-मोति परिचित एक कवि-बुद्धिजीवी की युग की फैशन -परेड ( मार्क्सवादी विचारों की सामेव्यक्त करना काज के युग में आवश्यक ही नहीं, फैशन भी है ) में शामिल हो जाने की लाकावा का स्पष्ट आवास दे जाती है। 'कुजानी नदी' में सर्वेस्वर ने पोषणा की थी कि --

“ मैं जानता हूँ पथराव से कुछ नहीं लीगा  
न कविता से ही  
कुछ ही या न ही  
हमें अपना हीना प्रमाणित करना है । ”<sup>६</sup>

वहाँ कवि ने अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये पथराव किया था। 'जात का बर्द' में उसने मार्क्सवादी विचारधारा की इसी उद्देश्य से अपनाया है -- उसकी अविषय -अविषय से कवि की मालूम नहीं है “ मार्क्स-नर्म सत्य की होकर वह मार्क्स-नर्म कर्म अपनाते तो उससे भी कुछ ही सकता था (हीना तो प्रमाणित होता ही) पर वह रास्ता उन्होंने अपनाया नहीं। ”<sup>७</sup>

१- कुजानी नदी - पृ० ६०-६१ ।

२- अज्ञेय - कौटिल्य : पृ० ८६ ।

वर्तमान समाज व्यवस्था की सभी समस्याओं का मूल कारण वर्ग-भेद है। कति किसी भी तरह इस भेद को मिटाने के लिए तत्पर है। स्वयं ही नहीं, सैनिका के साथ घर-घर, दरवाजे-दरवाजे जाकर शीघ्रता और वांछित तौरों को ट्रेण्ड करने की आवश्यकता उसने महसूस की है। अनेक स्थलों पर उसका यह दृढ़ विश्वास प्रकट होता है कि एक ना एक दिन सर्वहारा के शीघ्रता की प्रक्रिया समाप्त होनी है, मले ही उसके लिए क्रान्ति या रक्त क्रान्ति को ली जपाना पड़ेगा। उसे विश्वास है कि मावी समाज-व्यवस्था समता, न्याय और बन्धुत्व के आधार पर मानव के सर्वोन्मुखी विकास, उत्थान और समृद्धि को केन्द्र बनाकर चलेगी। अपने इन विश्वासों के कारण ही सर्वेश्वर का मुकाबला मार्क्सवाद की ओर हो गया क्योंकि वे अनेक प्रकार की पीड़ाओं और शीघ्रता से मुक्ति के लिए, मार्क्सवाद द्वारा सुझाया गया मार्ग ही प्रेरक मानते हैं।

चौथा प्रकरण

‘ ज्ञान का दर्प ’ में

वस्तित्ववादी

मान्यवाद

' जगत का दर्द ' में अस्तित्ववादी मानववाद

( त ) अस्तित्ववाद : सैद्धान्तिक मनीषि :-

अस्तित्ववाद यूरोप को देन है किन्तु उसने सम्पूर्ण सम्य संसार का ध्यान अपनी ओर केंद्रित कर लिया है । यह एक ऐसा आधुनिक दृष्टि-कोण है जो सामूहिकीकरण और मशीनीकरण की शक्तियों के विरुद्ध मानव गरिमा और उसके स्वातन्त्र्य की दृढ़ता को बनाये रखकर मानव जीवन की जटिलताओं को तोड़कर उसके जीवन को सुगम बनाने का दावा करता है । आधुनिक काल मानव - अस्तित्व के लिए संकट का काल है । इस काल की व्यक्ति-निरपेक्षा और विघटनकारी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति-हानि की संभावना और विकास को संयोजित और नियंत्रित करती हैं । मनुष्य की नियति और दाम्ना वर्तमान युग की जटिलताओं और दर्दनाओं में जकड़ी हुयी है । मौलिक रूप से वह जितना सम्पन्न होता जा रहा है, व्यक्तिगत जीवन और समाज में स्वयं को उतना ही कमजोर और लौलता अनुभव करने लगा है । इन विविध संकटों के कारण हुए व्यक्तित्व-लोप तथा नैतिक मूल्यों और मानकता की समाप्ति में मानव-अस्तित्व की सार्थकता को प्रश्नांकित कर दिया है ।<sup>१</sup>

१- " मानकता पर लाये इस आसन्न-संकट के कारण अनिवार्य ही गया है कि मानव को पुनः उसके प्राकृतिक-आन्तरिक स्वरूप में ऊर्ध्वमुखी कौन का आधार प्रदान किया जाये, और उसके अस्तित्व को आन्तरिक गरिमा का स्वतः और बौद्धिक सम्पन्न दिया जाय, जिससे वह सम्पूर्ण मानव बन सके । "

डा० रयाम सुन्दर मिश्र- अस्तित्ववाद और द्वितीय स्वरोत्तर हिन्दी

अस्तित्ववाद ने मानव पर जाये संकटों का प्रतिरोध किया है। मॉनिये के शब्दों में --- "अस्तित्ववाद विचारों के दर्शन एवं वस्तु के दर्शन की बात के विरुद्ध मनुष्य के दर्शन की प्रतिक्रिया है।" १

प्लेटों के मत से सार ही प्रमुख और प्राणमय था। संसार की सभी वस्तुओं के अस्तित्व को उन्होंने सार की प्रतिकृति माना क्योंकि वस्तुओं का सृजन और विनाश होता रहता है किन्तु जिस सार के अनुसार उन वस्तुओं की रचना होती है, वह शाश्वत है। अस्तित्ववादी विचारधारा प्लेटों की मान्यता के उल्टा विपरीत है। कोर्कगार्ड की मान्यता है कि, हमें सबसे पहले अपने अस्तित्व का बोध होता है। अन्य व्यक्तियों और वस्तुओं का बोध भी पहले होता है उसके बाद मनुष्य उनके सार को लीज करता है। सार की उपस्थिति चाहे पहले से ही होती ही लेकिन उसे लीजने का काम मनुष्य ही करता है। यह लीज अस्तित्व के अनुभव के बाद ही हो सकती है, अतः सार की अपेक्षा अस्तित्व अधिक महत्वपूर्ण है।

यद्यपि इस वाद का विशेष प्रकार फ्रान्सीसी लेखक सार्व ने किया लेकिन उससे भी पूर्व इसका आभास मिल जाता है।

कोर्कगार्ड की अस्तित्ववाद का जनक कहा जाता है। उनका मत था कि मानव-इतिहास और मानव-चिन्तन मनुष्य के व्यक्तिगत नियंत्रण से संबद्ध है। केवल व्यक्ति सत्य है उसकी समस्याएं या जटिलताएं—तथ्यों की ज्ञानवीन और उनके विचार विमर्श मान से दूर नहीं होतीं। उसने सत्य को आत्म-भरक बना दिया। उसने अनुसार अस्तित्ववाद मनुष्य चिन्तन और प्रामाणिक वरण की प्रक्रिया से अपने ऐतिहासिक-विकास का अन्तर्वर्तन कर सकता है और अपने अज्ञात मार्ग का निर्धारण कर सकता है। उसने चिन्तन और वरण की स्वतन्त्रता को मानव पीढ़ा का मूल कारण माना तथा चर्च के संस्थानक महत्व को स्वीकारते

हूँ भी उसकी नियंत्रणकारी और व्याक्तत्व-विषटनकारी प्रवृत्ति का विरोध किया।<sup>1</sup> वह मानता है कि जैसे ही हम अन्तर्मुखी होकर अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में विचार करने लगते हैं तो हमें अपने अन्दर कुछ विरोधी भाव अथवा तत्त्व मिलते हैं। संसार में व्याक्त एक और तो नरक, शान्त, अपूर्ण और सीमित है तो दूसरी और वह अनन्त, अमर, सर्वव्यापी, शक्ति सम्पन्न और शाश्वत बनना चाहता है। इस विरोधामास के कारण व्यक्ति दुःखी, उदास और संकुत होता है। ऐसी स्थिति में वह विश्वास करता है कि ईश्वर उसकी सहायता अवश्य करेगा और उसे अन्तर्विरोध से बचा लेगा। यह वेदना, संन्यास आदि सदैव नहीं रहती — उन्हें से मावी आनन्द का सन्त मिलता है। वह मानता है कि मानव जीवन का वह प्रत्येक क्षण व्यर्थ जाता है जिसमें व्याक्त ईश्वर से युक्त नहीं होता है। तर्जों द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं किया जा सकता। वह तो मनुष्य के अन्तःकरण में एक प्रेरक शक्ति के रूप में विद्यमान है उसके अस्तित्व को प्रमाणों से नहीं बल्कि पक्ति से प्रमाणित किया जा सकता है।<sup>2</sup> कीर्त्तगार्द ने वर्ग, राज्य,

1- "A christian civilisation is nothing other than the quantity of individual souls living by personal decision on the christian faith."

Maxhurn - Six existentialistic thinkers :P. 5.

2- "Every movement is wasted in which he does not have god."

Soren Kierkegaard- Concluding unscientific post-script, P. 179.

3- "One proves God's existence by worship-..... not by proofs."

Ibid : P. 179 .

संस्था , व्यक्तता , नैसर्गिक मनुष्य , परलोक , बुद्धि आदि उन सब वस्तुओं का विरोध किया जो उसे जीवन के किसी भी चीज में बन्धन प्रतीत हुयीं । अस्तित्ववाद के चिन्तन में कीर्तिनाद का मूल पर्याप्त महत्वपूर्ण है लेकिन उसकी कुछ सीमाएं भी हैं — जैसे आत्मनिष्ठता की वास्तव्याप्ति , समाज का बहिष्कार , नैतिकता और धर्म पर विशेषण बल आदि ।

कीर्तिनाद के पश्चात् लगभग ६० साल बसों तक इस वाद की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी में शान्तिकारी आन्दोलन की प्रवृत्ति तथा पूंजीवादियों की तानाशाही ने — निराश , पराजित जर्मन- बुद्धिजीवी की कीर्तिनाद की मान्यताओं के निकट पहुंचा दिया । मार्त-यारुस्पर्ग ने सिद्ध किया कि मशीनीकरण से समृद्ध वर्तमान-सभ्यता मानव-व्यक्तित्व के लिए लक्ष्मण है । मनुष्य जितना अधिक विचारों की कस्तुरी पर चढ़ता गया उतना ही वह निजी अस्तित्व की वास्तविक विशेषता से दूर होता गया । यान्त्रिकता और औद्योगीकरण में मानव-हृदय की सबसे बड़ा आघात पहुंचाया है । मशीनी- शक्ति मनुष्य की आन्तरिक शक्ति को नष्ट कर रही है । ऐसे में मनुष्य या तो हार्वर की संस्था नकार दे तथा अपने सम्पूर्ण दुर्गों और पीड़ाओं के साथ हार्वर के समक्ष समर्पण कर दे । माटिगे हाइडेगर ने भी कस्तुरी- ज्ञान की कक्षाकार कर दिया । उनके अनुसार मनुष्य जो कुछ देखता-सुनता है वह उसकी कक्षा से प्रेरित आत्मगत-ज्ञान होता है , वह कस्तुरी-ज्ञान नहीं होता । मनुष्य अपने संसार की कस्तुरी रूप में नहीं जान सकता है । वह स्वयं की रूपों के मायालोक में लीया हुआ पाता है । यह मायालोक निरर्थक और निरुद्देश्य है लेकिन इसी में जीने के लिए व्यक्ति विवश है । इस विवशता में वह घुट-घुटकर जीता है । ऐसी स्थिति में आवश्यक ही जाता है कि वह संसार की निरर्थकता और निरुद्देश्यता का साक्षात्कार करे तथा यह अनुभव करे कि वह स्वयं उद्देश्य निर्धारित करके जीवन को अर्थवान बना सकता है और निरर्थक बाह्य-परिवेश को भी सार्थक कर सकता है । लेकिन अधिकांश मनुष्य स्वयं की उद्देश्य नहीं बना पाते और दूसरों के बनाये हुए



उद्देश्यों को अपनाकर जाने बढ़ते हैं। मृत्यु का मय उन्हें निरन्तर आतंजित रहने रहता है। स्वयं की दैनिक-न्यायों में व्यस्त रहकर वे इस मय से बसावन करते रहती हैं लेकिन अपने भीतर कहीं वे इस अपराध - बीध से ग्रस्त रहती हैं कि उन्होंने मृत की वास्तविकता से पीठ मोड़ रक्ती है तथा उन्हें इस मृत के समझा वृद्धतापूर्वक सड़ा होना चाहिए। कोकैमार्द और यास्पर्स ईश्वर के प्रति वास्तवावान थे लेकिन हाइडर ने ईश्वर की सत्ता को नकार दिया। इन तीनों ही विद्वानों ने आत्मज्ञान को मान्यता दी।

नीत्शे ने स्पष्ट घोषणा की " हमने ईश्वर की हत्या कर दी है। " ईश्वर-मृत्यु की घोषणा के साथ ही उसका चर्च पर से विश्वास उठ गया। वह मानता है कि ईश्वरविहीन इस संसार में मनुष्य पूरी तरह स्वतन्त्र है तथा उसके निर्माण के लिए कोई क्षर शक्ति उत्तरदायी नहीं है बल्कि वह स्वयं उत्तरदायी है। अपने लिए मृत्यों का निर्माण उसे स्वयं करना है अतः मानव जीवन की सर्वमत्ता स्वयं उसी के द्वारा ही प्रवृत्त है।<sup>१</sup> उसका विश्वास था कि मनुष्य अकेला ही पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

अस्तित्ववादी-धारणा के प्रमुख विचारक ज्यां पात सार्त्र हैं। उन्होंने भी ज्ञान की वस्तुगत कसौटी को अस्वीकार किया और मानव सम्बन्धों को पारस्परिक-संबन्धों का सम्बन्ध माना। किसी को प्रेम करने के उन्होंने दो पक्ष माने -- 'स्वीडन' -- अर्थात् दूसरे के अनुकूल बनकर अपनी स्वतन्त्रता लौना और 'परसीडन' -- अर्थात् दूसरे को अपने अनुकूल बनकर अपनी स्वतन्त्रता को समाप्त करना।

१- पॉल स्विचैक - अस्तित्ववाद : पक्ष और विपक्ष, पृ० ३२

२- " In a God-less world he has to choose his own set of values, and if any meaning is to be found in human life it can only be the meaning which man himself has given it."

Frederick Copleston-- Contemporary Philosophy : P. 175.

सार्व के अनुसार मानव जीवन कटुता, विषु पता, निराशा और बेवना से निरन्तर घिरा रहता है। इन असंतियों के कारण वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता, अतः निराश होकर ईश्वर की शरण में पहुंच जाता है। लेकिन जब जीवन में ही कीड़े सार-तत्व नहीं हैं तो ईश्वर भी कुछ नहीं कर सकता। वह दोस्तीवस्की की इस मान्यता से पूरी तरह सहमत है कि — यदि ईश्वर विद्यमान नहीं है तो सब कुछ स्वीकृत होगा। ईश्वर का निर्णय करके सार्व ने मनुष्य की अपने मूल्यों का निर्माता घोषित किया।<sup>1</sup> उसने अनुसार स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। मनुष्य केवल स्वतन्त्र ही नहीं है बल्कि स्वतन्त्र होने के लिए अभिशप्त भी है। वह जो कुछ है या जो कुछ करता है उसने लिए वह स्वयं ही उत्तरदायी है। अतः उसका यह उत्तर — वायित्व सारे समाज के प्रति होता है। वह जो चयन करता है वह सम्पूर्ण समाज का चयन है।

सार्व के चिन्तन का विषय — विभिन्न विवेकधर्मियों से घिरे हुए मनुष्य की पीड़ाएँ हैं। विगत महायुद्धों की विभीषिका ने मनुष्य की तन, मन और धन — तीनों ही चीजों में ऐसा पराजित किया कि शास्त्र मूल्यों, विभिन्न आवश्यकता तथा नैतिकता पर से उसकी छाया चुक गयी। मानव का मानव बनेता है, या चाखी हुए भी उसे वैसे रहना पड़ता है। मनुष्य बहुत सीधे-समझकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है और उस निष्कर्ष के अनुकूल

- 1- "Dostoyevsky once wrote---- If God did not exist, Everything would be permitted."  
Jean Paul Sartre- Existentialism and humanism: P. 39.
- 2- "Existentialism is nothing else than an attempt to draw all the consequences of a coherent atheistic position."  
Sartre- Existentialism : P. 61



लेकिन व्यवहार में वह कभी सफल नहीं हो सकता । उसके चिन्तन का आधार आत्मिक और सीखा रहना । वास्तविक चिन्तन का सबसे सुदृढ़ मार्ग अपने अस्तित्व के आधार पर ही हो सकता है ।

- ( ३ ) अस्तित्व की ये सार का पूर्वकीर्ण मानते हैं । मनुष्य स्वयं अपने आप से जूमता है , संसार में ऊपर उठने का प्रयास करता है और बाद में वह अपनी व्याख्या करता है , सार प्राप्त करता है ।
- ( ४ ) सभी अस्तित्ववादी मनुष्य को 'स्वतन्त्र आत्म निर्माता ' और ' आत्म-व्यक्तिमणशील ' मानते हैं । मनुष्य के समस्त ज्ञान के लिये उत्तर होते हैं, उनमें से वह कुछ भी चुनने के लिए स्वतन्त्र है । स्व चुनाव के आधार पर स्वच्छापूर्वक वह अपना निर्माण कर सकता है । स्वतन्त्रता के कारण मनुष्य अपने अतीत से ऊपर उठता है तथा जो कुछ वह बन चुका है उससे जाने बदला है— यही आत्म-व्यक्तिमणशीलता है ।
- ( ५ ) मनुष्य के ऊपर धर्म , ईश्वर आदि का शासन अमान्य है , क्यों कि ये मनुष्य के आन्तरिक विकास में बाधा होते हैं । अपने अस्तित्व के प्रति स्वयं मनुष्य ही उत्तरदायी है , कोई शक्ति सत्ता नहीं ।
- ( ६ ) अस्तित्व विशुद्ध रूप से विचार की वस्तु नहीं है , अनुभव से भी उसका सम्बन्ध बहुत गहरा है । मानव जीवन की समस्याओं की बीजिक आधार पर नहीं सुलझाया जा सकता क्यों कि बुद्धि जीवन की गहराई तक जाने में असमर्थ है , इसके लिए तो माकान्त्य ही अपेक्षित है ।
- ( ७ ) सभी मनुष्य वर्तमान मशीनीकरण और औद्योगिकता के कारण बहुत सी असंतियों से घिरे हुए हैं । ये असंत परिस्थितियाँ उसके अस्तित्व की तोड़ने - मरोड़ने में लगी रहती हैं । आ : मनुष्य की अपने अस्तित्व पर सर्वाधिक ध्यान देना चाहिए । उसके लिये आवश्यक है कि वह इन असंतियों पर दृष्टापूर्वक विचार पाकर ऊपर उठे ।

( ४ ) अस्तित्ववाद : मानववादी परिप्रेक्ष्य :-

मानव-अस्तित्व और अस्तित्व पर आधारित दृष्टिकोण मानववादी दृष्टिकोण है। अस्तित्ववाद के -- ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी -- ये दो पक्ष हैं। अनीश्वरवादी धारणा ईश्वर को नकारती है तथा मानव से जुड़ कर चली है। यूनान विप्लवावस्थाओं में नूतने दृष्टि व्यक्तियों की उत्पत्ति कर यह धारणा उसे अपनी निजी पहचान बनाने की प्रेरणा देती है। "अस्तित्ववाद एक ऐसी विचारधारा है जो सामूहिकीकरण और भ्रष्टीकरण की शक्तियों के विरुद्ध मनुष्य की भाँसा तथा स्वतन्त्रता को पुनः संस्थापित कर मानव जीवन को सम्भव बनाने का दावा करती है।" <sup>१</sup> अतः इस वाद की धारणा मानव-सक्रियता और सृजनात्मकता में है। मानव से ऊपर कोई नियन्ता नहीं है, उसका कर्म ही उसके भाग्य का विधाता और संवाहक है। यह वाद समाज में मनुष्य की वृद्धता से बढ़े रहने की प्रेरणा देता है तथा उन समस्त प्रगतियों और उन्नतियों को अस्वीकार करता है जो मानव-अस्तित्व पर चोट करती हैं। "मीतिकवाद के लिये मनुष्य ही एक वस्तु है ; अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य अपनी दाम्ना को सृजनात्मक ढंग से कर्मय जीवन में चरितार्थ करके अपना निर्माण स्वयं करता है।" <sup>२</sup>

अस्तित्ववाद ने मनुष्य की वस्तुपरकता का निर्णय किया। उसके अनुसार मनुष्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो दूसरों के द्वारा परिचायित और नियंत्रित होती हो। वह स्वयं अपने लिए नये-नये रास्तों का निर्माण

१- नवत किशोर - मानववाद और साहित्य : पृ० ७७ ।

२- योनेन्सु साही - अस्तित्ववाद- कीर्तनाद से कामू तक : पृ० ६५ ।

करने तथा स्वयं ही अपनी बटिलताओं से मुक्त होने वाली शक्ति है ।  
 अस्तित्ववाद की चिन्ता का कारण , अपनी सम्पूर्ण अक्षमताओं से ग्रस्त  
 व्यक्ति है । यह सर्व्वर के अस्तित्व का निर्णय करके उसे धर्म-निरपेक्ष स्तर  
 पर मानवीय वर्ण देना चाहता है । इसका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता है।  
 व्यक्ति के व्यक्तित्व के प्रति वह जتنا अधिक वास्थावान है कि किसी विशाल  
 शक्ति के नाम पर भी उसका बलिदान उसे स्वीकार नहीं है । उसके अनुसार  
 व्यक्ति सभी मानकता के समक्ष जबाबदेह है । सार्त्र ने स्वीकार किया था  
 कि केवल अस्तित्ववादी विचारधारा मानव-महत्त्व के अनुरूप है । यही एक  
 ऐसा सिद्धान्त है जो मनुष्य को वस्तु न मानकर उसकी विषयिगता को महत्त्व  
 देता है । सार्त्र ने मनुष्य की स्वतन्त्रता को मानकतावाद का प्रधान प्रत्यय माना  
 है । यह स्वतन्त्रता '..... मानवीय जीवन को सम्भव बनाती है । इसने साथ  
 ही यह भी घोषित करती है कि प्रत्येक सत्य और प्रत्येक कार्य में मानवीय -  
 संदर्भ और मानवीय आत्मपरकता निहित रहती है ।'' २

'लिटरेचर आफ फिलासफी' में एच० डे० बार्न्स ने अस्तित्व-  
 वाद के मानववादी पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत किया -- 'अस्तित्व की विरु-  
 द्धता की धारणा , एक निरपेक्ष ( अनडिफाईन्ड ) विश्व में मनुष्य के वर्णवत्ता  
 सहित जीने के संकल्प का अनिश्चित्य, मानव एकता के आधार का दार्शनिक -  
 विश्लेषण , कृत्रिम वास्था का विवेचन , सत् और असत् की निरपेक्ष मान्यता  
 पर आधारित समाज की स्वीकार करने से इनकार , उन लोगों के प्रति सहानु-

१-'' सार्त्र के अनुसार अस्तित्ववाद मानववाद ही है कि वह मनुष्य को यह  
 स्मरण कराता है कि उसकी कोई भी और नियम-निर्माता नहीं है और  
 कि इस प्रकार परित्यक्त होकर वह स्वयं अपने लिए निर्णय लेने को विवश  
 है, अतः ही कि वह यह स्पष्ट कर देता है कि केवल अपनी ही मृत  
 मौजूदगी नहीं बल्कि अपना अस्तित्वपूर्ण करने पर ही एक उद्देश्य मिलता है  
 जिससे मुक्ति मिलती है या कुछ विशिष्ट उपलब्धि होती है ।''

नवम अध्याय - मानववाद और साहित्य - पृ० ७३ ।

२- प्रकाश दीप्ति - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० ५७ के आधार पर ।

-मृति जिनकी सामाजिक उपयोग के लिए बलि दी जाती है ; बाब कोई भी सम्पूर्णतः निर्दोष होकर नहीं रह सकता --- इस सहानुभूति के साथ व्यक्ति के चरम मूल्य होने की भावना --- यह सब एक स्पष्ट और निश्चित मनोविज्ञान पर आधारित है, जो मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है किन्तु हम सब उस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं जिसमें एक स्वतन्त्रता को अपना धरण करना होता है ।<sup>१</sup>

( ४ ) ' जगत का दर्द : अस्तित्ववादी मानववाद :-

'जगत का दर्द' की रचनाएं जिस युग में लिखी गयीं, वह विविध प्रकार के संकटों का काल है । वर्तमान मनुष्य आन्तरिक और बाह्य - दोनों क्षेत्रों में दो जलज प्रकार की जटिलताओं से टकरा रहा है । " मशीन युग की यांत्रिकता ने मानव को पंगु बना दिया है, जीवन की यांत्रिकता ने उसमें ऊब और घुटन भर दी है, इनके चलते हममें कूठे हैं जन्म ले चुकी हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि बाज वैज्ञानिक, बौद्धिक और औद्योगिक क्रान्ति होने पर भी मनुष्य अपने आन्तरिक व्यक्तित्व-गठन में असहाय है । " आन्तरिक व्यक्तित्व विघटन की स्थिति में ही अस्तित्ववादी चिन्तन सामने आया ।

'जगत का दर्द' के पहले तण्ड में सर्वेस्वर ने जिन समस्याओं को सामने रखा वे उसके सारे समाज की समस्याएं हैं लेकिन दूसरे तण्ड की समस्याओं का सम्बन्ध काबि की वैयक्तिकता से अधिक है । ये बातें बात हैं कि इनमें से भी अधिकांश समस्याएं समाज की ही दी हुयी हैं । प्रेम- प्रसंगों के मध्य सामाजिक

१- नवत शिरीर - मानववाद और साहित्य : पृ० ७१ ।

२- विजयेन्द्र स्नातक - दिवकाव्य की स्पर्शा -- विजय प्रवेश में सुरेश्वर  
उपाध्याय का वक्तव्य : पृ० २ ।

हठियों के जा जाने से ऊब, घुटन, निराशा, व्यक्तापन आदि का प्रत्यक्षीकरण कवि को करना पड़ा। अस्तित्ववादी चिन्तन की परिधिमें मनुष्य की यही समस्याएं विशेषरूप से जाती हैं, जिन्हें सर्वेस्वर ने दूसरी लण्ड का प्रतिपाद बनाया।

प्रमुख रूप से मृत्युबोध, संक्रास, विसंगति, निराशा, निरर्थकता बोध तथा व्यक्तापन के कारण मानव-अस्तित्व को पहुँचने वाली चींटों से उसी अस्तित्व को बचाये रखने के लिये कवि की चिन्ता और प्रयास उसे अस्तित्ववादी मानववाद से जोड़ते हैं।

(क) मृत्युबोध और संक्रास :-

मानव जीवन की अनिवार्य सीमा मृत्यु है। मनुष्य यद्यपि अपने वैयक्तिक कार्यों में व्यस्त होकर मृत्यु-बोध से पलायन किये रहता है लेकिन फिर भी उसका मन और संभावना प्रत्येक व्यक्ति को आतंकित किये रहती हैं। 'एक विविध तरह का संक्रास आज के आदमी को दबी है, और वह है, लक्ष्मि लालिष्ठा से कभीभी भरकर रास्त पा जाने की स्वतन्त्रता से अलग मृत्यु का समस्त दर्शन माँगते हुए भी जिन्दा रहने जैसा संज्ञा न प्राप्त कर सकना। दूसरी शब्दों में सामान्य मृत्यु मय के तिरौट्टा तथा आत्मघात की निरर्थकता की सिद्धि के ही साथ आज का आदमी अब वह होने के लिए विवश है जहाँ मृत्यु-दर्श तो मरपूर है, किन्तु मृत्यु नहीं है।''<sup>१</sup>

सर्वेस्वर के काव्य में यह संक्रास परिवेश-जन्य है। राजनीति और समाज—दोनों से वे आतंकित हैं। राजनीतिज्ञों की तानाशाही से वे तब मयपीत हो उठते हैं जब देखते हैं कि यह व्यवस्था अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु कबीर, निरपराध लोगों को अकारण ही जेल के सीतलों में कैद कर देती है।

१- कैलाश वाजपेयी - 'वैशान्त से हटकर' में प्रकाशनीय वक्तव्य।



पहली बार उसने मन में मय की एक लकीर तिरती है कि शायद कभी उसे भी बिना किसी कारण के इन सीतलों की घुटन से झुकना पड़ सकता है —

“ पहली बार , मैं अपने कमरे के फर्श पर  
तिरुहियों के ढकों की परशक्यां  
पछी देख  
सहम गया । ” १

यहां संभाव की स्थिति चरम बिन्दु पर है । जेल के सीतलों से वह जतना अधिक संवेत है कि अपने घर की तिहरी के सीतलों की परशक्यां से भी डर जाता है।  
“ बाबू का बाकी ..... तनावों के बीच न जीता है , न मरता है , मरने की प्रक्रिया में हीता है । ” २ यद्यपि जेल का दर्द में हर जगह ‘ बाग ’ और ‘ मशाल ’ की तपन मिलती है लेकिन कहीं-कहीं मौत का ठण्डापन भी मिल जाता है । ‘ दर्द के डेने ’ शीर्षक कविता में कवि सामाजिक असंगतियों तथा प्रेम की पीड़ाओं से जतना अधिक वेत है कि स्वयं को मरा हुआ सा अनुभव करता है --

“ देखती हर तै मुझे जाते उल्ट कर  
हॉठ मुदा ये बरारें लौती है ,  
गिर रही है ज्ञा, कफन फाड़े हुए  
हर एक कड़ियां नीतताई डौती है । ” ३

संवेत- मनःस्थिति के अनुरूप यहां ‘ मुदा ’ ; ‘ कफन ’ आदि मृत्यु का आभास लेने वाले शब्द प्रयुक्त हुए हैं । सामाजिक-असंगतियों के कारण उसे अपनी सम्पूर्ण

१- सर्वेस्वर दयाल - जेल का दर्द : पृ० ५० ।

२- डा० रामकमलराय - क नयी का ज्ञा - उद्भव और विकास : पृ० २१६ ।

३- सर्वेस्वर दयाल - जेल का दर्द : पृ० ११६ ।

परिस्थिति कास दे रही है जिसके कारण समूचा परिवेश घुटा-घुटा हो गया है। अकेलेमन की वजह से रात उसे अपनी धड़कनों पर हावी हुयी सी महसूस होती है।<sup>१</sup> धड़कनों पर किसी का हावी हो जाना स्पन्दनों की रीकने में सक्षम है। 'दर्द के डेने' शब्द प्रेम-पीड़ाओं के कास की अधिक मारी बना जाता है। निराशा और घुटन की स्थिति में अचिरा उसे 'हुले-मनहूस जबड़े का' लगता है। 'दर्द के डेने', हुला मनहूस जबड़ा', कर्मराती हडिडिया' कावि शब्दों के द्वारा वातावरण की मयावस्था साकार हो उठी है। ऐसे वातावरण में कावि जीने और मरने के बीच की स्थिति में है। वह स्वयं की 'बुकता हुआ दीपक' कहता है। बुकता हुआ -- बर्थात जल : जल : भीत की तरफ बढ़ता हुआ। लेकिन सर्वेश्वर का कावि उन परिस्थितियों के जाने मुक्त नहीं है। बन्द कमरे की दरारों से आती हुयी रोशनी की उसके मुदायि हीठों की सोते हुये है बर्थात बहुत धूमिल और धीमा आशा के सहारे वह जीवित है। इस प्रकार जलका मृत्यु बोध भिट जाने की स्थिति में नहीं है बल्कि भगनी सी भी आशा के सहारे वे जिन्दा हैं।

( स ) विसंगति - बोध :-

विसंगति-बोध का सबसे बड़ा कारण मनुष्य का परिवेश है।  
 "परिवेश के यह वैगम्य -- संस्कारों, समूह, यात्रिक व्यवस्था और

१- "दर्द के नीचे हूँ डेने समेटे

रात मेरी धड़कनों पर सी रही है,

जीन है, बुकता हुआ दीपक संभाती

बुझ जवब तीसी घुटन-सी हो रही है।"

अंत का दर्द : पृ० ११६ ।

ऐतिहासिक - यथास्थितियों के रूप में मनुष्य की स्वतन्त्रताओं को नियंत्रित और नियंत्रित करते हैं। जैना और बौद्धों के इस दमन की अस्तित्ववादियों ने विसंगति ( एम्बिडिटी ) कहा है।<sup>१</sup> अतः जहाँ कहा भी श्रद्धाओं के दमन की स्थिति जाती है वहाँ मनुष्य में विसंगति बाँध जागृत हो जाता है। सर्वेश्वर ने अपनी जैना की स्वतन्त्रता और स्वच्छाचारिता पर जब भी किसी बंधु या बाधा का अनुभव किया, वे उस बाधा व्यवस्था विसंगति के प्रति घुम्प ही उठे। 'जगत का दर्द' में ये विसंगतियाँ अधिकतर प्रेम के दौरे में समाज के बाड़े का जाने के कारण हैं। समाज द्वारा विवाहिक स्त्री-पुरुषों के दाम्पत्य-सम्बन्धों की अस्वीकृति उनकी पीड़ा का मूल कारण है<sup>२</sup> और असीमित कवि अपनी प्रेयसी के सुर्तों से ही नहीं दुर्तों से सम्पृक्त होकर भी संतुष्ट नहीं हो सका है ---

“ मैं तुम्हारे दुःख से  
 लपने को जोड़ा  
 और --  
 और अकेला हो गया ।  
 मैं तुम्हारे सुख से  
 लपने को जोड़ा  
 और --  
 और झोटा हो गया । ”<sup>३</sup>

१- प्रकाश दीपावली - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० ५६ ।

२- “ तुम्हारे सिरहाने की रौशनी  
 जोई हाथ बढ़ा बुझायेगा  
 और मेरी सिरहाने  
 वह रात नर अन्तरी रहेगी । ”

जगत का दर्द : पृ० ६६ ।

३- वही : पृ० ६८ ।

सामाजिक-वाचकों से उत्पन्न, मानवीय-सम्बन्धों के क्षिण और विसराव पर यहां उंगली रखी गयी है। सम्बन्धों की इस टूटन से पटु कवि की तलाश है — एक रिस्ते की, जिसे वह सुनों के नहीं दुनों के मौल पर भी सपने की तैयार है। प्रकाश दीप्ति इस तलाश की मनुष्य द्वारा स्वयं अपने आप की तलाश मानते हैं — “परिवेश की निष्पत्ता नये कवियों में बार बार भूत हुई है, मनुष्य के वास-पास लिपटी हुई कृत्स्न और घृणा का प्रतिबिम्ब भी उजागर हुआ है। नया कवि इस सबकी पहचानता है, किन्तु इस सबके बीच बंझित, लपभाजित, ह्लास और अस्तमान मनुष्यों की भीड़ में उसे किसी की तलाश भी है, शायद अपने आप की।”<sup>१</sup>

वर्तमान युग की अति-बौद्धिस्ता समाज के माधुर्य-भनों के साथ संगति नहीं बिठा पाती। इस असंगति से उत्पन्न ‘असक्त’ जगत का दर्द में प्रायः भित जाती है। उसकी मृत्यु तक की संगिनी का गले में बाहें हातकर कौरी सम्मोहन दृष्टि से देखना अथवा बिना विचलित हुए ‘अलविदा’ कहकर चले जाना माधुर्य और बुद्धि के द्वन्द्व से उत्पन्न असंगति है —

“किना वासान था

तुम्हारे लिए यह कह ले जाना

‘अलविदा’

जैसे गुलाब की पंखुरियों में से

एक सुनहरा कीड़ा उड़ा ही।

और मेरा.....

मल्लख करना, मरा हुआ

उस आलीपन की

जहां तुम खड़ी थीं

सड़क की बगिरी पटरी पर”<sup>२</sup>

१- प्रकाश दीप्ति - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० ७१ ।

२- जगत का दर्द : पृ० ६६ ।

एक ओर बुद्धि का ऐसा दुराग्रह है कि प्रिय के अभाव पर भी एकदम सदृक्ता है दूसरी ओर हृदय का वाक्य अना प्रवृत्त है कि प्रेयसी के चले जाने के बाद भी वह जड़ बना रहता है और उसके जाने से साती हुई जगह को कुछ पाण तक मरा-मरा सा महसूस करता रहता है। यह जड़ता प्रेमिका विद्रोह के कारण अनी नहीं है जितनी उसकी माव-शून्यता के कारण है। 'विसंगति से उबने की मनःस्थिति की प्रकार की बौद्धिक-वेष्टाई उत्प्रेरित कर सकती है। एक तो विसंगति और उसके ऐतिहासिक कारणों के परिवर्तनार्थ समूह-धर्मा' क्रान्तिपरक प्रतिक्रिया और दूसरी अनास्था से वंशित व्यक्तियों' वैकल्पिकों की प्रताप की अवस्था में वास्तव-विस्तार नर्पुसक विद्रोह का कारण होता है। नये कवि ने अपना - बुद्धि का एकाकी स्वर्गों के अतिरिक्त समूहधर्मा' रचनाशीलता की व्यापक रूप से नकारा है, और 'लड़ी हुए मनुष्य' के स्वरूप पर 'पराजित मनुष्य' की कला के आकाश पर विसंगति का प्रत्युत्तर बनाने की वेष्टा की है। 'सर्वेश्वर के काव्य में वह यद्यपि विसंगतियों के कारण प्रताप की प्रवृत्ति मिलती है लेकिन वे उनके प्रति क्रान्ति के लिए तत्पर तथा अपनी सफलता के प्रति आस्थावान भी हैं —

“ पतनों पर बौक है पहाड़ का  
 और रात अभी शुरू हुई है।  
 तुम की एक नये सिरे से तराशना  
 मुझे शुरू करना है। ” २

पतनों पर पहाड़ जैसा बौक होते हुए भी कवि पराजित नहीं होता अपितु इन विसंगतियों के अनुरूप तुम की नये सिरे से तराशने लगता है। कहीं कहीं वह विवेक या बुद्धि के दुराग्रहों से पीड़ित दितायी भी हैं लेकिन दूसरे ही पाण

१- प्रकाश दीप्ति - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० ७१-७२ ।

२- कविता का दर्द : पृ० ८२ ।

दुपने सात्वत और दृढ़ता के साथ विवेक को एकदम निरर्थक घोषित कर देते हैं—

“ मूर्ख नापने के यत्न  
पीठ पर लावे लठहरों में  
धुस्ता रह जाता है विवेक  
जब कि दिल की गहराइयों में  
बैबुनियाद चीजों की एक वस्ती  
लड़ी हो जाती है , ” १

( ग ) आत्म - निर्वासन :—

“ हमारा साम्प्रदायिक काल एक मोहमग्न की जड़ता , वैयक्तिकीय के वंश और दिशाहीन अनास्था से पीड़ित युग है । हमारी सामाजिकता गता काट - प्रतिद्वन्द्विता की निर्लज्ज सामाजिकता है , मूर्खों का हास , मानवीय-आत्मा का विघटन और सामूहिक -नैतिकता के अवमूल्यन ने चरित्र के नाम पर स्वार्थ , हठ और बेहमाजी की , कर्म के नाम पर जादूयन्त्र , हत्या और प्रमथना की तथा सामाजिक शिवत्व के नाम पर आलेखपथे की चलाचोंच की प्रतिष्ठा की है । ” २ इन विद्रुपताओं में जाबद व्यक्ति स्वयं को अपने परि-  
- वेष्ट और वातावरण से कटा हुआ , अलग- अलग तथा अजनबी महसूस करता है।  
सर्वेस्वर ने इन विद्रुपताओं की बहुत करीब से देखा है । उनमें आत्म - निर्वासन तथा समाज से पलायन- दोनों ही स्थितियाँ उपलब्ध हैं । ‘ जाग्रत ’ कथिता में कवि समाज से ही नहीं बल्कि सारी सृष्टि से पलायन करके अपनी

१- अंत का दर्द : पृ० ७५-७६ ।

२- प्रकाश दीप्ति - अस्तित्ववाद और नवी कथिता : पृ० १२६-१३० ।

हयैतियों में छिपट गया है ---

“ और क्या मैं

कपनी हयैतियों से

बेकार कह छूरी नहीं मिली । ” १

इस पताथन का स्पष्ट कारण भी कवि ने दे दिया है कि कपनी हयैतियों से ज्यादा अच्छी जगह उसे कहाँ मिली । यहाँ सारा संसार उसके लिये निरर्थक ही उठा है । सार्थक हैं तो केवल उसके अपने दो हाथ --- जिनमें अपना धिआ झुकाकर वह कुछ पाण के लिये संसार की विसंगतियों से दूर हो सकता है । प्रेम सम्बन्धों की टूटन से पीड़ित होकर कवि कभी तो समाज और संसार से भाग कर कपनी हयैतियों में छिपट गया है तो कभी एकान्त कमरे की चारदीवारी में । स्वयं को समाज से जोड़ने वाले दरवाजों को भी उसने बन्द कर लिया है---

“ दरवाजे बन्द हैं

घर में कोई नहीं है

धिवा स्मृतियों के । ” २

+ + +

नकुलों से विमान तक

रैकती है नय

केद बना की । ” २

‘ दरवाजे ’ उसके सामाजिक सम्बन्धों को जोड़ने का वाधक है । इनके बन्द हो जाने से समाज के साथ उसका वादान-प्रदान और वादानमन खतरा हो गया है । समाज से भागकर धिवा अपने में छिपट कर की वह पूरी तरह संकुष्ट नहीं हो पाया है और उसकी मानसिकता कभी-कभी उसे अपने हाथ से भी दूर मानने

१- कलक का बर्ष : पृ० ६७ ।

२- वही : पृ० ८४ ।

की विवश कर देती है। ऐसी ही विवशता में कवि कहीं कहीं इस प्रकार के सारगर्भित सूक्ति-वाक्य दे जाता है। ---

“ कुछ भी ठीक से जान लेना  
सुद से दुश्मनी ठान लेना है । ”<sup>१</sup>

जनजीवन की माधना में तब और भी वृद्धि हो जाती है जब व्यक्ति की अपनी दिशा का ज्ञान नहीं होता।<sup>२</sup> इस दिशाहीनता की स्थिति को भारतभूषण अग्रवाल के शब्दों में इस प्रकार जाना जा सकता है -----

“ और हरेक जाकमी रास्ता पूछ रहा है  
हरेक जाकमी से । ”<sup>३</sup>

जगत का वर्द में समाज-विमुक्तता के बाद दिशाहीन-याना की भी स्थिति जाती है :-----

“ जैसे शाम अकैते  
धूमने निकल गया हूँ  
राह बेपरवान,  
+ + +  
स्वयं में अन्तरधान । ”<sup>४</sup>

१- जगत का वर्द : पृ० ६२ ।

२- “ मोड़ों से बनने वाले राजमार्गों पर अज्ञानता तब और भी अधिक हो जाता है जब चले जाते हैं गन्तव्य की दिशा का ज्ञान ही । ”

प्रकाश दीप्ति - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० ६४ ।

३- भारतभूषण अग्रवाल - एक उठा हुआ हाथ : पृ० ५६ ।

४- जगत का वर्द : पृ० १०३ ।



‘राह बेवहान’ से विशाहीनता का बोध होता है तो ‘स्वयं में अन्तरधान’ से समाज-विमुक्तता का ।

( प ) अकैलापन :-

यद्यपि मनुष्य सामाजिक अस्तित्वों के कारण स्वयं को समाज से अलग कर लेता है लेकिन वह स्थिति में भी वह संतुष्ट नहीं रह पाता निरन्तर अकैलापन की पीड़ाओं से ग्रस्त रहता है । ‘‘ अनन्त अन्धकार के उन्नात समुद्र में अकैला , बिछुड़ा हुआ मनुष्य अस्तित्ववादी कला का नायक है , किन्तु उसके पास नायक के सामर्थ्यवान गुण नहीं हैं । उसका साक्ष्य पंगु , दृष्टिधूमिल , चरण-  
- कम्पित और पौरुषशून्य है । यह युगिन उपहार है , जिसे अस्वीकार करना जितना असम्भव है , स्वीकार कर पाना उतना ही कठिन —’’<sup>१</sup>  
अकैलापन की दृष्टि से जंगल का दर्द में ही पारस्परिक विरोधी भावनाएं भित्तियाँ हैं । क्रान्ति के दौरे में कवि अपने समाज को साथ लेकर चला है , वहाँ समाज का और उसका ‘बैहरा एक ही गया है , चरण एक है , यात्रा एक है और तनय भी एक है ’<sup>२</sup> लेकिन प्रेम के दौरे में वह समाज से अलग कट कर ‘सड़क की बगिची पटरी’ पर खड़ा है , जहाँ अलगा होने के स्याल की बर्फ गिर रही है । अकैलापन की सत्यता ही उसके लिये अनीना नासदायक या हसीलिये जब वह वास्तविकता बन जाती है तो कवि एकदम खड़े हो जाता है । उसे जाने कुछ भी

१- प्रकाश दीप्ति - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० ६-७० ।

२- ‘‘ उनका और मेरा बैहरा एक ही गया है ।

हम सब एक ऊँट हैं, एक लमट, एक जान,

एक डब्बा, एक कर्ब , एक रान ,

एक चरण, एक यात्रा , एक राह, ..

जंगल का दर्द : पृ० १६ ।

३- वही : पृ० ६५ ।

करने , सोचने - समझने में वह बिल्कुल व्यग्र हो जाता है --

“ फिर कुछ न कह पाना

केवल छुट्टी तक

कर्म मलबूझ करना

बला ही जाने के ख्याल की । ” १

‘जगत का दर्द’ के दूसरे खण्ड की अधिकांश कवितारें -- अकेलेपन की विविध स्थितियाँ हैं । ‘ दरवाजे बन्द हैं ’ में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि ‘ घर में कोई नहीं है ’ ।<sup>२</sup> इस अकेलेपन के कारण वह समाज के साथ जुड़ने के प्रयत्न करता है लेकिन सारी कोशिशों के बावजूद अकेलापन ही उसके हिस्से में जाता है ।<sup>३</sup> क्रान्ति के दौर में वह समाज के साथ कदम मिलाकर चलना चाहता है इसीलिए बार-बार सामूहिक-क्रान्ति की प्रोत्साहन करता है लेकिन वहाँ भी उसे अकेले संघर्ष करना पड़ता है । अपने - अपने स्वार्थों से बंधा हुआ समाज लड़ने- मरने की स्थिति में साथ नहीं देता ---

“ वे सब तेज कदमों से जा रहे थे

जैसे लौटकर देखने पर धाका ही सकता है ।

फिर मैं अकेला

राहहीन, घने काते जंगल में

कुछ नया, पलने लगा । ” ४

१- जगत का दर्द : पृष्ठ ६६ ।

२- वही : पृष्ठ ८४ ।

३- “ जैसे चुन्चारी बुल्ले से

अपने की जोड़ा

जोर --

जोर छूँटता ही गया । ”

वही : पृष्ठ ६८ ।

४- वही : पृष्ठ ६० ।

प्रारम्भिक पंक्तियाँ उस सामाजिक व्यवहार की चोतक हैं जिसके कारण कवि अकेलेपन का भागीदार बना है। कान्ति के दौर में तो वह जंगल में अकेला ही चला गया है लेकिन प्रेम के दौर में वह अकेलेपन को क्लेश नहीं कर पाता। एकान्त की तोड़ डालने की कोशिशें 'अकेलापन' कविता में की गयी हैं —

“सूनी राह में दीती  
एक अकेली टहनी  
मैंने उसे दो टुकड़े कर  
पास-पास रत दिया।” १

एक ओर अकेलापन खतना अधिक है कि घर लौटने पर उसे रोशनी मिलने की भी उम्मीद नहीं है। दूसरी तरफ इस अकेलेपन से निवृत्ति 'एक टहनी है के दो टुकड़े कर देने' जैसा आसान काम है।

(ठ.) निरर्थकता और निराशा :-

'तीसरा सप्तक' में मदन वात्स्यायन निराशा और निरर्थकता-बोध का कारण बने हुए लिखते हैं — "जीवन के विसंगति और निरर्थकता का बोध देने वाले अन्य कारण ही रहते हैं। महानगरीय परिवेशों में विशेष रूप से इनकी प्रसर अनुभूति होती है, जहाँ कि यांत्रिक, तीव्र गति वाले और अलग-अलग जीवन में व्यक्ति और समाज के बीच अलगाव और अजबबोपन के अहसासों की गहराई बढ़ रही है। यह अहसास रीजमरा की जिम्दगी से

उभरते हैं और कब-बिहीन रकाबी मनुष्य को उसके एकान्त रचना-दाणों में धर लेते हैं। महानगरों में जीपोंकीकरण और उससे उत्पन्न होने वाले सबंधारा के तनाव की ही संख्या नहीं है, उनका मध्यम वर्ग स्वातन्त्र्योत्तर भारत में अमरवेल की तरह फैलने-पनपने वाली नीकरशाही की वैयक्तिक दृष्टि का आहार बना हुआ है। 'सहस्रनाकुन' की तरह पूजा और फाटने दिशाओं की जीत लिया है, हम में से हर एक व्यक्ति पर वे जा गये हैं, कणियों की छाँस लेने की चाह नहीं। स्नेह सीस लिया कैसे है, फाटों ने हमारा तेज हर लिया और किंवास न तो पूजा की है न फाटों की....<sup>1</sup> उन सामाजिक परिवर्तनों में न केवल मनुष्य की सब ओर से निराश कर दिया बल्कि उसमें स्वयं की समाज के लिए निरर्थक सफलता की भावना घर कर गयी। भारतमुखाण अनुवात की मानव-अस्तित्व पर मशीनों के हावी हो जाने से उत्पन्न मानवीय निरर्थकता से द्रव्य है। उनकी 'ट्रेफिक पुलिस में' कविता

१- मदन वात्स्यायन - तीसरा सप्तक : पृ० ६ ।

२- "जीवन चाहे व्यक्ति पर समाप्त न हो, शुरू वहीं से होता है। और मैंने देखा कि उनके जैसे व्यक्ति एक जंग मान है एक लम्बी-चौड़ी संख्या में, या निरा एक पूजा है एक महा यन्त्र में -- तो मन छूटा ही गया।"

भारतमुखाण अनुवात - 'एक उठा हुआ हाथ' : पृ० ७ ।

में वही निरर्थकता की पीड़ा व्यक्त की है । सर्वेश्वर के काव्य में निराशा और निरर्थकता — दोनों विधातियाँ मिलती हैं । उन्हें निरर्थकता बीच सामाजिक-विप्लववादों के कारण है लेकिन निराशा की भावना प्रायः प्रेम-सम्बन्धों के विस्तार के बरत से है —

“ हर सात कला  
नये पत्तों की छाया पर  
छु करता है तिसरा  
एक प्रणय कथा  
पर हर सात  
फरते पत्तों में  
दीस जाती है  
उसकी व्यथा । ” २

१- “ बीस सात तक  
रोय बिता नागा  
चौराहे पर झूटी बनाकर  
+ + +  
में रिटायर हुआ ।  
एक दिन , यों ही धुन्ना-फिरता  
जब मैं फिर उस चौराहे पर का निकला  
तो क्या देखा हूँ  
वहाँ अब मेरा भाई झूटी नहीं बना  
‘ ऑटोमैटिक ’ ताइटे ली है ।  
तो क्या मैं बाबू बन  
एक नहीन की स्वीकृति करता रहा । ”

प्रासङ्गिकता काव्यगत - ‘ एक उठा हुआ हाथ ’ : पृ० ३० ।

२- काल का दर्प : पृ० ११६ ।

प्रेम-स्थापन में बार-बार की व्यफता कवि की निराशा का कारण है। वही कवि राजनीतिक-संघर्षों के दौर में पीघल चुकी विफलताओं के होते हुए भी निराश नहीं होता, वहाँ वह प्रत्येक स्थिति से जुझने की तैयार है, गहरी से गहरी निराशा में भी उसे आशा की किरण मिल जाती है।<sup>१</sup> इस आशावादिता के कारण वह अपने माबिष्य की सुख-समृद्धि के प्रति आसक्त है—

“ एक चहकती रंगीन क्रीड़ा  
मेरे ऊपर से गुजर जाये  
फिर मैं यहाँ से एक फरना बन वह जाऊँगा । ”<sup>२</sup>

घोर निराशा और पीड़ा के बावजूद उसे अन्तजार है एक ऐसी हवा का जो उसकी जीवन की सार्थकता के नये आयाम देगी —

“ मुझे तुम इस धिराट जल के किनारे  
घास के इस टुकड़े पर ऊँचे पेड़ों के मुकाबले  
मिट्टी में भिन्न धँसा झोंक जा सकती हो ।  
फिर भी मैं क्षराता रहूँगा ।  
ज्यों कि हो सकता है कत तेज हवा चले  
और मैं तमाम तिनकों के साथ किसी बारिश में बहकर  
उस निर्झर से जा भिजुं  
जो नया वस्तियों को बीच से बहता हो । ”<sup>३</sup>

१- “ निराशा की ऊँची काली दीवार में भी  
बहुत छोटे रौशनदान-ही  
बढ़ी रहती है कोई न कोई आकाशिता ”

जगत का वर्द : पृ० ७४

२- वही : पृ० ७७-७८ ।

३- वही : पृ० ८७ ।

राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों के समक्ष कवि किन्हीं बृद्ध वाक्ता और  
 वारुणा के साथ लड़ा है, वह प्रेम-संघर्षों के समय पूरी तरह चुक गया है।  
 वहाँ तो उसकी 'पत्तियों' पर बौक है पहाड़ का, और रात कभी कूट हुयी  
 है '१' --- निराशा इतनी अधिक है कि उसकी सम्पूर्ण वारुणा मर गयी है  
 यहाँ तक कि वारुणा से युक्त कोई स्वप्न भी वह नहीं देख पाता। वाक्ता  
 या सुर्तों की कल्पना भी उसके लिये असम्भव हो रही है ---

“ कोई सपना इतना हल्का नहीं होता  
 कि सुबह बन जाये । ” २

जब कि यही कवि राजनीतिक क्रान्ति के दौरान रंगीन चिड़ियों की तलाश  
 में जमेथ बन में भी बेधड़क प्रवेश कर जाता है ---

“ उसने जवाब दिया :  
 ' मुझे रंगीन चिड़ियां  
 अच्छी लगती हैं,  
 इस जंगल में बहुत हैं । ” ३

जंगल का दर्द का कवि निराशा और निरर्थकता की भावबुद्धता में  
 पड़कर भिन्न-विन्न से पलायन नहीं करता, आत्मघात के लिए तत्पर नहीं होता  
 बल्कि उसके व्यक्ति के लिए प्रयास करता है। अपनी सफलता और सार्थकता  
 पर उसे पूरा मरोड़ है क्योंकि अपने अज्ञान-के-अनागत के विषय में भी  
 वह आकाशवाणी है लेकिन कहीं-कहीं निराशा के रेले पाण भी आते हैं जब वह  
 अपनी अस्तित्व की समाप्ति और संसार के लिए व्यर्थ तथा अनुस्यूनी अन्ध बैठता

१- जंगल का दर्द : पृ० ८२ ।

२- वही : पृ० ८२ ।

३- वही : पृ० १६ ।

है । यह स्थिति केवल मान प्रेम की निराशा के पाणों ही मिलती है --

“ मैं सुख-दुख से परे  
 अपने को तुम से जोड़ा  
 और --  
 और अर्थहीन हो गया । ”<sup>१</sup>

सर्वत्र आशा और आस्था को देखते बाते कवि का इस प्रकार का निरर्थकता बोध उसकी प्रवृत्ति या नियति नहीं हो सकता , निराशा की गहनता के कारण भावनाओं की पाणिक तड़सड़ाहट ही हो सकती है क्योंकि कि व्यस्तता और तड़सड़ाहट एक आपद्-धर्म ही हो सकती है तथापि वह जीवन का लक्षण नहीं है ।<sup>२</sup> स्वयं सर्वेश्वर भी तड़सड़ाहट को केवल गिरने का सूचक नहीं मानते , संभलने का प्रयास भी मानते हैं ---

“ तड़सड़ाना अक्सर गिरना नहीं  
 संभलना भी होता है । ”<sup>३</sup>

( ४ ) पाण की अवधारणा :-

अस्तित्ववादी चिन्तक पाण-पाण में जीता है । उसके लिये हीक पाण का महत्व है । वह प्रत्येक पाण में स्वतन्त्र-चयन करता है और उस चयन के द्वारा अपनी अस्तित्वता को साधक करता है । इन पाणों

१- काल का दर्द : पृ० ६८- ६९ ।

२- प्रकाश की दिशा - अस्तित्ववाद और नयी कविता : पृ० १६ ।

३- काल का दर्द : पृ० ७५ ।



का संगठन ही काल की व्यापकता है। जीवन की समग्रता को उचित रूप में जानने के लिये उस समग्रता को टाण-टाण करके देखना होगा। अस्तित्व-वाधियों की टाण की अवधारणा पर जगत का दर्द के कवि की पूरी आस्था है ---

“ किन्हीं दो टाणों के  
दो छोटे पत्थरों पर टिक जाती है  
एक विश्वास मेहराब  
और सदियों तक टिकी रह जाती है,  
लेकिन गहरी नींव पर  
बनी दीवार ज़रूर टूट जाती है। ” १

यहाँ कवि ने टाण के सामने तमबे काल-सण्ड की महत्वहीन सिद्ध कर दिया है। उसे विश्वास है कि जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ कभी-कभी बहुत बड़े सम्बन्धों को जोड़ देती हैं जब कि बहुत विवेक से बुने हुए सम्बन्ध जल्दी ही बिखर जाते हैं।

इसी प्रकार नवीन-सूजन के लिये भी उसने सूक्ति का एक टाणिक वाधात पर्याप्त माना है उसके लिये कोई विश्वास सरोवर अपेक्षात नहीं है ---

“ यदि हम रचना चाहते हैं  
तो सूक्ति का एक रंगावात  
एक डबडबाया टाण  
एक गंध मरी साँस से  
हृदय भी रच सकते हैं,  
हाँ, यदि हम रचना चाहते हैं। ” २

१- जगत का दर्द : पृ० ७५ ।

२- वही : पृ० ८६- ८७ ।

'सुखिता का रंगमात' कवि के साहित्यिक-सुख अथवा समाजिक कव-  
निर्माण से सम्बन्ध है तथा 'नय मरी साँस का सुकन' प्रेम के दौन में नवीन  
दृष्टि से सम्बन्ध है। सर्वेश्वर ने दाण के महत्व को जीवन के प्रत्येक दौन में  
स्वीकारा है। कहीं-कहीं कवि ने जीवन की दाणिक घटनाओं को अपना  
कथ्य बनाया है ---

“ तितली ने कहा फूल से  
मे तुम्हारे साथ  
कितनी मरीपुरी लगती हूँ  
और उड़ गयी । ” १

यहाँ एक दाण में तितली ने प्रेम का अस्सास दिया और दूसरे दाण स्वयं  
ही उस अस्सास को तोड़ दिया। अस्तित्ववाद “..... जीवन को  
निरुपाय, अवश तथा निरर्थक समझकर उसे एक मानवीय तर्क तथा मूल्य  
वैषी की नैष्टा करता है। अस्तित्व अस्तित्ववादी दृष्टि में प्रत्येक दाण का  
अनुत्पत्तीय महत्व है। ” २

अस्तित्ववादी-मानववाद के दो पक्षों -- वास्तिक और  
नास्तिक में से सर्वेश्वर ने इसके नास्तिक रूप को अपनाया है। अथवा वास्तिक  
रूप ईश्वर-सापेक्षा है और नास्तिक रूप मानव-सापेक्षा है। अतः नास्तिक  
रूप ही सर्वेश्वर की अन्तरात्मा के मानववादी स्वरों के अनुवृत्त पक्ष है।

१- काल का दर्द : पृ० ११८ ।

२- जीवित-कर्म-हिन्दी साहित्य की, भाग-१ : पृ० ६१ ।

‘ जंगल का बर्द ’ में अस्तित्ववादी मानववाद की सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ --- मृत्यु बोध, संन्यास, निराशा, निरर्थकता, अज्ञेतापन और पाण-बोध आदि मिलती हैं। इन प्रवृत्तियों की कवि ने अपने युग के अनुरूप ढाँस लिया है। वे अस्तित्ववादी कूँठा, घुटन तथा अन्य परिवेश अन्य व्यंग्यतियों के बीच छुटपटाते नहीं रहे हैं बल्कि हर जगह उन व्यंग्यतियों से टकराकर लौटने की तत्पर है। जहाँ एक ओर अस्तित्ववादी दार्शनिक मृत्यु या संन्यास को जीवन - ज्ञान की वास्तविकता से जोड़ कर सहज स्वीकारने की बात कहते हैं वहीं सर्वेस्वर हर जगह उसे काटकर आगे निकल जाते हैं। जहाँ वे सुद की एक बुझता हुआ दीपक मानते हैं वहीं उन्हें प्रतीक्षा भी है किसी ऐसी शक्ति की जो उस बुझते हुए दीपक को संभाल ले।<sup>१</sup> प्रेम के जीवन में यह वाह्यान अपनी प्रेयसी के प्रति हो सकता है। उस एकान्त में वही उस बुझते हुए दीपक को संभालकर उसकी घुटन को दूर कर सकती है।

समाज अथवा परिवेश के आगे पराजित होकर सिर झुका लेना भी कवि की मंजूर नहीं है। वह अपनी उस जिन्दादिली के लिये चिन्तित है जिसे यह मृत्यु बोध धीरे-धीरे निगल रहा है ---

“ उस थके अस्तित्व में मेरी पराजय  
झिझकती-सी पग बजार चल रही है,  
पाखियाँ जीवित चित्तारों की बजायी  
यह उन्हें अब एक-एक निगल रही है। ”<sup>२</sup>

१- “ कौन है, बुझता हुआ दीपक संभाली  
यह अन्ध तीली घुटन-सी ही रही है। ”

जंगल का बर्द : पृ० ११६ ।

२- वही : पृ० १२० ।

अस्तित्ववाद की मानववाद की जिस प्रवृत्ति से कवि सर्वाधिक प्रभावित है वह है --- अकेलेपन की प्रवृत्ति । अकेलेपन की पीड़ा से वह बार-बार पीड़ित होता हुआ मिलता है लेकिन इस पीड़ा की बहुत आसान निवृत्ति भी इसमें मिलती है । 'एक टहनी के दो टुकड़े करके पास-पास रख देने जैसा प्रयास इस पीड़ा को दूर करने में सक्षम है । अकेलेपन की पीड़ा भी जीवन में उतनी ही वांछनीय है जितना कि हर्ष का आतिरेक । सर्वेश्वर ने इन दोनों की सार्थकता को सिद्ध किया है ---

“ बड़े से बड़े फलक पर  
एक बुँद चीस सकती है  
हर्ष से या अकेलेपन से  
और अपने से बहुत बड़े को  
जन्म दे सकती है । ”<sup>१</sup>

इसी प्रकार निराशा और निरर्थकता की भी स्थिति है । 'जंगल का दर्द' में कवि का उद्देश्य समाज में व्यक्ति की सार्थकता की स्थापित करना है । अपने विश्वास और कर्म के प्रति उसमें अदम्य आस्था है फिर भी कहीं-कहीं निराशा और निरर्थकता की अभिव्यक्ति मिलती है । लेकिन यह अभिव्यक्ति न तो इस संग्रह का मूल-प्रतिपाद्य है और न ही इसके सर्वत्र-कवि की मूल भावना । अतः इन अभिव्यक्तियों की दायिग जावेन-जन्य कहा जा सकता है ।

इस प्रकार सर्वेश्वर ने युरोप के इस दर्शन की प्रवृत्ति को ग्रहण तो किया है लेकिन इसका अन्यायपूर्ण उन्हांने नहीं किया । युग की अज्ञकार्यता तथा भारतीय-पारिवेश के अनुरूप उन्हांने अस्तित्ववाद की दर्शन की मानववाद की कर्म और संघर्ष के साथ जोड़ कर जीवन्त और जागरूक बना दिया है ।

----- 0 -----

पाषाण प्रकरण

‘ जगत का वर्ग ’ में

भानववादी

प्रेम - भावना

.....  
 : जगत का वर्ध' में मानववादी प्रेम-भावना :  
 : .....  
 : .....

( अ ) प्रेम : नये - पुराने कथनों से :-

प्रेम शब्द का सम्बन्ध अनुप्राति से है , इसे शब्दों में बाधना सह्य नहीं है , लेकिन नयी पुरानी अवधारणालों से गुजरकर इसके स्वरूप को कुछ-कुछ नियमित किया जा सकता है ।

सामान्यतः : प्रेम शब्द का अर्थ है जो प्रीति देता हो , अनन्त तृप्ति प्रदान करता हो -- वह प्रेम है । यद्यपि संकुचित दृष्टिकोण से इसके अन्तर्गत वैदिक मान स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का भाव आता है लेकिन व्यापक दृष्टि से इसके अर्थस्थ रूप हो जाते हैं । मनुष्य का मनुष्य के प्रति ही नहीं अपितु राष्ट्र के प्रति, कुटुम्ब के प्रति, प्रकृति के प्रति--संसार की <sup>आ</sup>विश्वस्तु के प्रति आकर्षण-- प्रेम के अन्तर्गत आता है । महर्षि नारद ने अनिर्वचनीय कहकर इसके स्वरूप की स्थापना की ।<sup>१</sup> उनके अनुसार प्रेम गुणरक्ति, कामना रक्ति तथा प्रतिपाण वृद्धि की प्राप्त करने वाला होता है । जो कोई भी प्रेम को प्राप्त कर लेता है वह उसी के अनुकूल

१- " अनिर्वचनीयं प्रेम-स्वरूपम् । गुणस्वादनम् । प्रकाशते स्वापि पात्रे ।

गुणरक्तिं कामनारक्तिं प्रतिपाणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुमकम् ।

तत्प्राप्य तदेवावलीक्यति तदेव गृणाति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति

-----महर्षि नारद : नारद मणितन्त्र - ५१ से ५५ सूत्र ।

प्रेमता, सुनता, क्लृप्ता और चिन्तन करता है। स्वामी रामतीर्थ प्रेम को ईश्वर - अनुप्राप्ति का साधन मानते हैं। वे प्रेम को 'लाइव द सन' तथा 'पारसेप्शन वॉफ़ ब्यूटी' की संज्ञा देते हुये कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने कभी प्रेम नहीं किया वह ईश्वर का प्रत्यक्षीकरण भी कभी नहीं कर सकता। स्वामी विवेकानन्द उसे सम्पूर्ण सृष्टि के साथ जोड़ते हैं। उनके मत से, संसार की सभी वस्तुयें ईश्वर-जन्य हैं, अतः वे सब प्रेम - पान हैं। प्लेटों ने जीवन में प्रेम के स्पर्शों को आवश्यक माना है। उनके अनुसार प्रेम-राहित्य जीवन अन्धकारमय है। नील्सो प्रेम को अन्तर्दृष्टि का जनक मानते हैं लेकिन श्री सद्गुरुशरण अवस्थी इसकी आध्यात्मिकता की पूरी तरह अवबोध करके हुये उसे 'रेलिक सम्बन्धों की पार्थिव-आकांक्षा' कहते हैं तथा इसकी अर्थात्मिक, आध्यात्मिक अथवा ईश्वरीय कल्माओं को अवैज्ञानिक घोषित करते हैं। 'इत्यत्तम्' में अज्ञेय ने प्रेम को मानव की नैसर्गिक मूल कहा है। ग्रौच-युगल के प्रणय को वे नैसर्गिक मानते हैं और उस मानव को जोखते हैं जो अपने से ही अपने प्रणय को झिझाता रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम को लीम की अगती सीढ़ी कहा है।<sup>१</sup>

प्रेम के स्वरूप के विषय में बहुत अधिक मत-वैमिन्न्य है। कुछ विद्वान उसे बृहता पूर्वक एक लौकिक-वृत्ति घोषित करते हैं तो दूसरे विद्वान उससे भी अधिक बृहता के साथ इसकी अलौकिकता सिद्ध करते हैं। पाश्चात्य विद्वान आदादीमिर प्रेम को मोटा का द्वार कहकर आध्यात्मिक रूप देते हैं तो सी०

१- "विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लीम वह सात्विक रूप धारण करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि - पहला भाग : पृ० ५५ ।

काहवेल उसके विशुद्ध लौकिक रूप की स्थापना करते हैं<sup>१</sup>। आचार्य रजनीश प्रेम को एक और प्रभु का द्वार खोलित करते हैं वहीं दूसरी तरफ संयोग को समाधि का प्रथम सोपान मानते हैं। आधुनिक कवयित्री शकुन्तला माथुर इस शब्द को निरर्थक कहकर अस्वीकार करती हैं<sup>२</sup>। भक्ता अग्रवाल के लिए भी यह शब्द क्षमिमान सन्दर्भों में अनुपयुक्त और फिसा-पिटा हो गया है—

1. "Both popular and philosophic thought has recognized these deep foundations of love. Popular thought has given the same name to the effective tie that binds man and woman sexually, man and man in friendship, and parents and child in family-relationship. A king's love for his people, a disciple's love for his teacher, an animal's love for its young and its master, have all been included in the one category inspite of <sup>obvious</sup> obvious differences."

Christopher Caudwell -- Studies in a dying culture :

P. 131-132.

२- " प्रेम शब्द  
 और उसके  
 समस्त अर्थ को  
 मैं अस्वीकार कर दिया है  
 उस बड़े हुये नास्तिक-जैसा  
 किसे वाच ही सुनह  
 मैं चराह दिया है ।

शकुन्तला माथुर - अभी और कुछ : पृ० ४१ ।



“प्यार लब्ध पिल्लो- पिल्लो

चपटा हो गया है

तब हमारी धमक में

सहवास जाता है ।”

इस वाधुनिक दृष्टिकोण के बावजूद -- ‘प्रेम’ की जगह ‘सहवास’ को नहीं दी जा सकता । प्यार, -- मन का बुझाव है जिसमें मानसिक बुझाव के बाद शारीरिक सम्बन्धों की स्वीकृति है, जब कि सहवास विशुद्ध रूप से शारीरिक - साँदा है ।

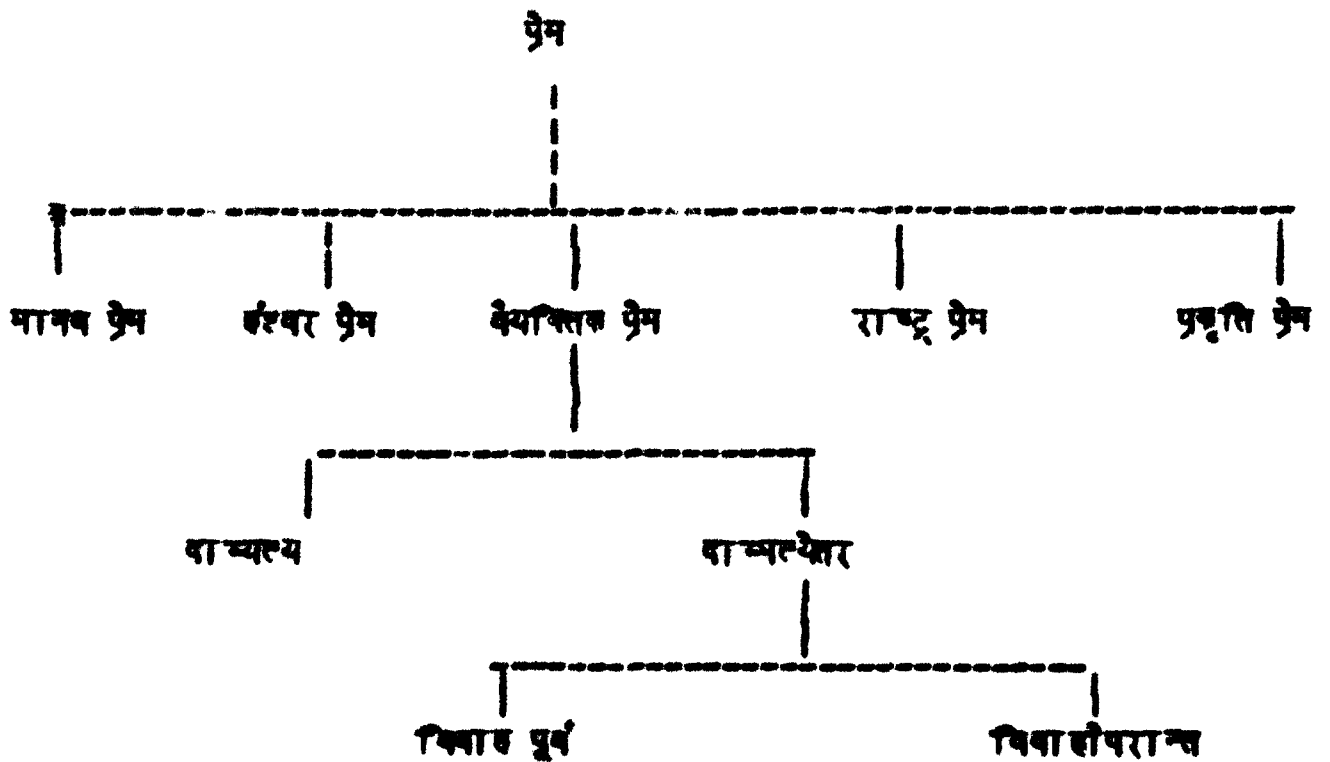
‘प्रेम’ और ‘ईश्वर’ को अनेक बार पर्याय मान लिया जाता है । ईश्वर की ही भाँति प्रेम भी अनिर्वचनीय, अव्याख्यायित है। केवल धर्म और ईश्वर की बुझाई होती हुई, अतीकृता के नाम पर प्रेम को मानसिक - क्षुप्ति या कूटा पनपाने वाला सिद्ध करने वाली दृष्टि भी उतनी ही असंगत और अतिवादी है जितनी कि प्रेम के नाम पर शारीरिक-बुझाव या वासना के वशीपन का शीर करने वाली दृष्टि । अतः प्रेम को इस लोक और पर-लोक के बीच में स्थित किया जा सकता है । यह एक मनः-शारीरिक बुझाव है जो अपने आनन्द की परिधियों में प्रायः अतीकृता के स्तर को छू जाता है ।

प्रेम के रूपों का निर्धारण अत्यन्त दुष्कर ही नहीं अपितु असंगत भी है । फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रायः प्रेम को मानों-उपमानों में विभक्त किया जाता रहा है । सामान्यतः प्रेम से तात्पर्य किसी के भी प्रति आकर्षण से है । संसार की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति इस आकर्षण का कारण हो सकता है और इस दृष्टि से प्रेम के अनेक भेद किये जा सकते हैं। इस व्यापक अर्थ की दृष्टि से इसके रूपों की गणना असंभव है । संकुचित अर्थ के अनुसार इसके अन्तर्गत केवल मानव सम्बन्ध तथा प्रणय वाचना आयेगी ।

साहित्यकार्यों ने रसि के स्थायित्व से निर्मित कुछ प्रमुख रस इस प्रकार बताये हैं ---

- ( १ ) मंगल ( युवा-युक्ती का कामाग्नि प्रेम )
- ( २ ) वानन्द ( सामरस्ययुक्त वदित रस )
- ( ३ ) मणित ( दैतयुक्त वैव विणयक रसि )
- ( ४ ) वात्सल्य ( वात विणयक प्रेम )
- ( ५ ) राष्ट्रियता ( राष्ट्र के प्रति प्रेम )
- ( ६ ) प्रकृति रस ( प्रकृति के प्रति प्रेम भाव )

प्रमुक्त : प्रेम के मेद - प्रमेद इस प्रकार हैं :--



( बा ) ' जगत का दर्द ' : मानववादी प्रेमभावना :--

मनोवैज्ञानिकों ने मृत, व्यास, नींद आदि की तरह प्रेम की मनुष्य की मूल आवश्यकता बताया है कि : प्रत्येक व्यक्ति में इसकी स्थिति अनिवार्य रूप से होती है, यद्यपि उसके स्वरूप और मात्रा में अन्तर तथा कभी-कभी प्रायः भिन्न जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक कला में किसी न किसी प्रकार की प्रेम-भावना अवश्य मिलती है। ' जगत का दर्द ' में प्रारम्भ से अन्त तक कवि की प्रेम-भावना के विविध-रूपों की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ कवि अपने समाज-मानव के प्रति अधिक समर्पित है किन्तु उसकी अनुभूति का केन्द्र कोई पारलौकिक-शक्ति नहीं है, इसी जमीन की हवा-पानी में पत्ते वाले मनुष्य की अनुभूतियाँ उसका कथ्य बनी हैं। प्रेम के क्षेत्र में इसके प्रमुख रूपों में से वैयक्तिक प्रेम, मानव-प्रेम, प्रकृति प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना ' जगत का दर्द ' में मिलती है। सिर्फ़ ईश्वर के प्रति प्रेम या वासना यहाँ उत्पन्न नहीं है। कवि की दृष्टि सिर्फ़ उन्हीं रूपों पर ठहरी है जो उसके मानव तथा क्षमा - परिवेश के अनुसृत हों। किन्तु : ' जगत का दर्द ' की प्रेम भावना के चार प्रकार हैं ---

१- वैयक्तिक प्रेम

२- मानव प्रेम

३- प्रकृति प्रेम

४- राष्ट्र प्रेम

( १ ) वैयक्तिक प्रेम :-

' जगत का दर्द ' का दूसरा छण्ड प्रेमानुभूतियों का छण्ड है। यद्यपि विस्तृत रूप से प्रेमछण्ड इसे नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रेम से ज्ञान्ति और ज्ञान्ति से प्रेम के क्षेत्र में पक्षेय-गुणस्तन यहाँ निरन्तर होता रहा है। फिर भी

इसका पहला छठ समाव-परक अधिक है तो दूसरा छठ प्रेम-परक ।<sup>१</sup>  
सर्वेश्वर के वैयक्तिक प्रेम को दाम्पत्य तथा दाम्पत्येश्वर -- इन दो रूपों में  
देला जा सकता है ।

( ६ ) प्रेम : दाम्पत्य संदर्भ :-

स्त्री-पुरुष के रूप-गुण आदि से उत्पन्न आकर्षण का भाव  
प्रणय कहलाता है । यह भाव जब पति - पत्नी के नायों में होता है तो इसे  
दाम्पत्य प्रेम कहते हैं । सर्वेश्वर की जीवन- स्थितियों से स्पष्ट है कि इनका  
दाम्पत्य जीवन पत्नी की मृत्यु के कारण -- अपने चरम चरणों में बिखर  
गया था । ' गर्म ह्वाएं ' की ' अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद ' शीर्षक  
कविता --- ' बाये हाथ में ते अपना कटा हुआ दाहिना हाथ ' उन सम्बन्धों  
के अन्त की सूचक है । ' जगत का दर्द ' के कवि का अपना कोई दाम्पत्य-  
जीवन नहीं है अतः इस संग्रह में उनके दाम्पत्य सम्बन्धों की अनुप्राप्ति नहीं होती,<sup>मिलती</sup>  
यहाँ जो अनुप्राप्तियाँ हैं वे दाम्पत्येश्वर सम्बन्धों की हैं । प्रारंभिक चार संग्रहों  
( बाँस का पुत , काठ की घंटियाँ , एक सूनी नाव , गर्म ह्वाएं ) में कवि  
का वैवाहिक परिवेश उसके विवाहोत्तर परिवेश में बाधक रूप में आया है -----

१- " जगत का दर्द के दूसरे छठ की कवितारं अधिकतर प्रेम सम्बन्धी कवितारं  
हैं जिनमें स्मानियता का स्वर अधिक प्रमुख है । इस दृष्टि से ' नीली  
घिड़ियाँ ' , ' क्षिप्ता अन्धा होता ' , ' सुर्त ह्येतिया ' , ' अलन होने का  
संयात ' , ' प्रतीक्षा ' , ' देह का संगीत १ - २ ' , ' कसन्तरान-२ ' ,  
कवितारं विशेषरूप से पठनीय है । "

डा० हरदयाल - समीक्षा - नवम्बर-दिसम्बर ७६ : पृ० ३५ ।

२- कवितारं - २ : पृ० १२५ ।

“ मेरी और चांद के बीच एक छत है ।

एक जीवित समाधि

जिसे चारों ओर चांदनी खिल रही है । ”<sup>१</sup>

पारिवारिक -वायित्वों में वह तब कब जकड़ा हुआ है कि सुतकर प्रेम की नहीं कर सकता । ‘चांद का भूत’ में इन वायित्वों के प्रति खोज के स्वर मिलते हैं ---

“ सांक होते ही पैर लीं हैं भुक्तों

जाने किलों अनजान धूनों की रस्म-ययी आयात । ”<sup>२</sup>

ये आयात प्रेम की स्मृतियाँ व्यथा कल्पनाएं हैं लेकिन पावुस्ता के इन उद्दाम धाणों में चांद का विवेक आड़े आ जाता है ।<sup>३</sup> विवेक चांद के मानसिक-विकास से टकराकर उसे कठोर यथार्थ पर सींच लाता है जहां ---

“ दूर कहीं

मुझे खोजते फिरते मेरे रोते हुए

बच्चे की आवाज आती है ,

और मेरी पत्नी

रखौं पर की फाँकी बीमार रीसों में बैठी

मेरी प्रतीक्षा करता बीस जाता है । ”<sup>४</sup>

१- कविताएँ - १ : पृ० १७६ ।

२- वही : पृ० १८० ।

३- “..... और दिन भर के सफे पत्थरों पर बैठा हुआ मेरा विवेक सम्भावनाओं की टूटती लहरों की फिर-फिर जोड़ता है । ”

वही : पृ० १८० ।

४- वही : पृ० १८० ।

प्रेम प्रसंगों की गर्मी के बीच हीलन और ठण्डक परा वास्तव्य जीवन उसे स्वीकार नहीं है —

“ दो गर्म हथेलियों के बीच  
बर्फ की एक पतल  
नहीं, मुझे स्वीकार नहीं  
जीने की यह शर्त । ”<sup>१</sup>

इस प्रकार “काठ की घंटियाँ” एक प्रकार से घुटन, दर्द, पीड़ा और निराशा का काव्य है। पहचानाप, उदासी और सुनापन इस संकलन का मुख्य स्वर है। ‘बाँस का पुल’ संकलन में उनका यह स्वर स्पष्ट हो जाता है कि वह प्रेम की पीड़ा है। पत्नी और प्रेमिका के प्रति मनोभावों की द्विविधता ही इस अन्तर्द्वन्द्व का कारण है”<sup>२</sup>

‘काँत का दर्द’ के कवि के समझा और प्रत्यक्ष वास्तव्य-व्यवस्था नहीं है क्योंकि कि उसके वास्तव्य सम्बन्ध यहाँ समाप्त हो चुके हैं, लेकिन उसका परिवार उसके बच्चे इन सम्बन्धों में बाधक है। परिवार से बंधाव उसके प्रेम में बाधक बनता है। अपने परिवार के कारण वह प्रेम-स्थापन में समाज से बाधक है लेकिन संग्रह की नायिका वास्तव्य और वास्तव्यतर सम्बन्धों की एक साथ जी रही है। ‘तुम्हारा बिस्तर गर्म होगा’<sup>३</sup> में इन सम्बन्धों का आभास मिलता है।

१- कवितारं - २ : पृ० २६ ।

२- डॉ० जीमकुमार शर्मा - साहित्यक कौशल-१९७३ : पृ० २०८ ।

३- काँत का दर्द : पृ० ६६ ।

सर्वेस्वर के प्रारम्भिक संग्रहों में जो वाम्पत्य सम्बन्धी कवरीय है तथा 'काल का दर्द' में 'दिमान से नयुनों तक रेंगती' <sup>१</sup> जो पारिवारिक परिधि है वह वैसे उन्हीं की नहीं है, भारत का प्रत्येक मध्यवर्गीय प्रेम के क्षेत्र में वही तरह छिपा हुआ है। पश्चिम की नज़र पर वह यौन सम्बन्धों की स्वतन्त्रता चाहता है लेकिन उसका अपना परिवेश उसे 'सात फेरों से बंधे हुए जीवन' की ढोने के लिए मजबूर करता है। अतः वाम्पत्य प्रेम के चित्रण में सर्वेस्वर ने केवल निजी घुटन की ही स्वर नहीं दिये हैं, यह उसने प्रत्येक सम-वर्गीय की मानसिकता का ज्वर है।

### ( २ ) प्रेम : वाम्पत्येतर संघर्ष :-

पति-पत्नी के सम्बन्धों की परिधि से पुरुष नर-नारी का शारीरिक और मानसिक जुड़ाव, वाम्पत्येतर सम्बन्ध है।

वाधुनिक्ता के प्रभाव के फलस्वरूप आज का व्यक्ति नैतिक और सामाजिक बन्धन की परतों की धीरे-धीरे बीत्ता जा रहा है। किन्ती वाह्य-बन्धन को स्वीकार न करके वह सर्वाधिक महत्व 'व्यक्ति-मन' को देता है। यदि कोई बन्धन उसके मन या इच्छाओं के प्रतिबल है तो उसे वह स्वीकारता है। मनुष्य की प्रगतिशील चेतना के कारण आज 'प्रेम, परिवार, स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध, ईश्वर और मानवता' सब समीक्ष्य निकल गया है <sup>२</sup>

१- "..... नयुनों से दिमान तक

रेंगती है नय

कैद हवा की । "

काल का दर्द : पृ० ८४ ।

२- डा० श्रीचरण- नयी कविता : नये धरातल : पृ० १३ ।

इस वाधुनिक्ता का सर्वाधिक प्रभाव व्यक्ति के दाम्पत्य-सम्बन्धों पर पड़ा है। मनुष्य परिवार जैसी संस्था को दबिया-झुकी समझने लगा, घर और परिवार उसे अपनी जैतना और इच्छा के बन्धन प्रतीत हुए और उसने समाज से बेपरवाह होकर पत्नी से स्तर यौन-सम्बन्धों को स्थापित किया। आज वैवाहिक जीवन का स्तर महत्व नहीं है जितना विवाहोत्तर जीवन का। इन स्तर सम्बन्धों के द्वारा व्यक्ति ने एक ओर स्वयं को प्रगतिशील सिद्ध किया तो दूसरी ओर पर-स्त्री और पर-पूरुष के प्रति प्रेम-जन्य झुठारों से मुक्ति पायी।

भारतीय समाज में एक बहुत बड़ी कसुबिया है कि यहाँ व्यक्ति यदि प्रेम सम्बन्धों को जीड़े या उनको कुत्तर स्वीकारे तो परिवार और समाज दोनों ही दौनों में उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है। उक्त : यदि वह ऐसे सम्बन्ध जोड़ता भी है तो समाज से तुल-द्विषकर, ज्यों कि हमारी संस्कृति में ये सम्बन्ध अवैध और अधान्य हैं।

अभिव्यक्ति की ईमानदारी सर्वेस्वर की चारित्रिक विशेषता है। अपने अनुभवों को ज्यों का त्यों स्वीकार लेना उनका व्यवहार है, जहाँ कारण साहित्य और समाज में वे साफ़-गोढ़ के अभिव्युक्त बन जाते हैं। राजनीति ही, समाज ही या किन्हीं कवि का निजी प्रणय दोन-उसे जो कुछ कहना है स्पष्ट कहना, निजीक होकर कहना। कबीर की ही तरह 'कुताफिराकर या बहेरा बेकर' कुछ कहना उसके व्यवहार के चिह्न है। ऐसे समाज में जहाँ नैतिकता की परिमाण दाम्पत्य-सम्बन्धों में बावद हो वहाँ दाम्पत्य-सम्बन्धों का स्थापन और निवाह कवि की निर्मयता और स्पष्टवायिता है। वह जब भी, जहाँ भी प्रेम सम्बन्ध बनाता है स्वयं ही अपने समाज के समक्ष उनका झुतासा कर देता है। 'काठ की बंटियाँ' से 'एक झुनी नाव' तक कवि में पत्नी और प्रेमिका से सम्बन्धिता दुविधा का



नाथ था, प्रेमी और पति दोनों की समस्याओं से वह झूक रहा था ।  
 वहाँ प्रेमी रूप के मध्य उसे अपना पति रूपवाचक लगता था क्योंकि विवाह-  
 सम्बन्धों से उत्पन्न सौज और घुटन की इन संग्रहों में बार-बार अभिव्यक्ति  
 हुयी है । एक और उसे अपना दाम्पत्य-जीवन अपने और चाँद के बीच हवा  
 की तरह लगता है तो दूसरी और उसकी नायिका विवाहिलता है ---

“तुम, जो जुगनु-सी  
 हर दाण अपनी रौशनी समेट  
 लेती हो, क्यों कि परवश हो,  
 और दूसरे दाण जला लेती हो  
 क्यों कि औरत हो ।”<sup>१</sup>

‘जगत का दर्द’ की नायिका भी विवाहिलता है । दोनों पद्यों के दाम्पत्य-  
 जीवन के कारण इस संग्रह में प्रेम-प्रसंग तथा निराशा और अकेलापन --- ये दो  
 विरोधी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं । ‘एक सुनी नाथ’ में जो कवि ‘मैंने तुम्हारी  
 गोद में / अपना घर हुआ लिया’<sup>२</sup> कहकर अपने प्रेम-सम्बन्धों की साधकता  
 सिद्ध कर चुका था --- वही यहाँ जाकर बावजूद प्रेम और यौन-सम्बन्धों के  
 नितान्त अकेला और निराश्रित है --- ।

१- कवितारं- १ : पृ० ७३ ।

२- कवितारं -२ : पृ० २२ ।

३- “सारी जिनगी

में सिर हसाने की जगह

बूझता रहा,

और अन्त में

अपनी हवेलियों से

बैठकर कह दूसरी नहीं भिती ।”

जगत का दर्द : पृ० ६७ ।

वह बार-बार इन सम्बन्धों को जोड़ने की कोशिश करता है लेकिन प्रत्येक प्रयास में उसकी सहायता होती है एक निराशा, एक व्यथित मन, जिसका मूल कारण उसकी प्रेमिका का दाम्पत्य-जीवन है। इसी कारण कवि अपने दर्द से व्यथित नहीं हो पा रहा -- 'जेल का दर्द' के पहले तण्ड की कविताओं में जो दर्द है वह मुख्यतः राजनीतिक, धार्मिक व्यथा का दर्द है और दूसरे तण्ड की कविताओं में जो दर्द है वह दूसरे की बीबी को लीला के लिये समर्पित नहीं बना पाने का दर्द है।<sup>११६</sup>

( १ ) प्रेम : संयोग का आनन्द :-

वर्तमान कविता ने अपने ऊपर से समस्त दबावों और बन्धनों को उतार फेंका है और वह सम्पूर्ण वास्तविकताओं के साथ सामने आयी है। इसीलिये इस कविता में मितल के आन्तरिक दागों में लुप्त रूप में उपस्थित हुए हैं। नये कवि ने यहाँ किसी दुराव या आवरण को बर्दाश्त नहीं किया है- संयोग के जिन दागों को उसने मीठा उन्हें ज्यों का त्यों व्यक्त कर दिया ।

प्राचीन साहित्य में काम भावना का प्रकाशन अस्वीकृत के अन्तर्गत आता था। अतः वहाँ अनुप्रास की वास्तविकता -- वास्तविकताओं के कारण मर चुकी होती थी जब कि आज की कविता व्यापक के दुराग्रह के कारण अधिक जीवन्त है। आज का साहित्यकार मानता है कि 'नैतिकता और शुद्धता के दुराग्रहों ने कितना अधिक साहित्य और कला का नष्ट किया है उसना साबित अन्य किसी भी कस्तु ने नहीं किया..... इन दुराग्रहों ने जीवन के सार्वभौमिकों के दर्शन की दृष्टि ही कलुषित कर दी है। इसके परिणाम-

१- नन्द गिरीर नवत - लीला- कुतर्क-अस्त १९७७ : पृ० १८-१९ ।

-रूपक्य कलात्मक या साहित्यिक उपलब्धियों की अपेक्षा वर्जनार्थ अधिक महत्वपूर्ण बन गयी है।<sup>१</sup> नयी कविता उस प्रत्येक तथ्य की नकाराती है जो मनुष्य की झोटा करे, वह तो तबु मानव की भी विशिष्टता के प्रति आस्थावान है। इसीलिए विषय चाहे जोई भी रहा हो, नयी कविता अनुपमि की यथार्थता में ही विश्वास करती है। उसकी दृष्टि में जोई भी वास्तविकता अस्तीत नहीं है। इस कविता में संयोग के चित्र यथापि संस्था-त्मक दृष्टि से कम हैं लेकिन जो है वे सब अपनी ज्ञान-वास्तविकता के साथ हैं।

सर्वेवर के काव्य का संयोग-पदा अन्य संग्रहों की अपेक्षा 'जगत का दर्द' में अधिक व्यापक और पुष्ट है। यथापि संयोग पदा यहां बहुत थोड़े से लिखे में ही है लेकिन अत्यन्त-संक्षेप होते हुये भी यह पदा पूर्णता के चरम-बिन्दु को छू गया है। पूर्ववर्ती संग्रहों में कवि ने संयोग की केवल झुका ही की है, वह भी अत्यन्त दबे घुटे स्वरों में<sup>२</sup>। वहां कवि ने दर्द की आहें और कराहें ही अधिक मरी है। वहां<sup>३</sup> ट्रेजिक फॉर्मात्वा के क्रम में एक दो कवितारं ऐसी भी हैं जो ह्मानियता मरी हैं, किन्तु ह्मानियता भी ऐसी नहीं है जिसमें मजा लेने की माका हो। वहां भी मध्यमार्थ ट्रेजिडी ही सामने है।<sup>३</sup>

१- तत्प्रीकान्त का - नये प्रतिमान : पुराने निरुण : पृ० ७६ ।

२- "बाह मेरी

नहीं बुझ और, हम कबनों की कसक,  
सिर्फ हर और का बिसरा हुआ यह सुनापन  
सिद्धहर, ठोस-सा ही पास मेरे आ जाता,  
बाप पाता, जिसे मैं बाह में अपनी कसकर  
और सौ पाता उन बापों पर अपना सिर धर "

कवितारं-१ : पृ० २१ ।

३- डा० हरिचरण झा - नयी कविता : नये धरातल : पृ० ३३२

‘जगत का दर्द’ का कवि मध्यमवीथी द्वैवेष्टा के समान अपनी शक्तियों को उपेक्षा नहीं करता । शीघ्रताओं की पीड़ा को छोड़े रहकर वह संयोग के दाणों को लीना नहीं चाहता । वह अपनी सुख स्थितियों को समग्रतः मीगता है ---

“ मैं झुमता हूँ  
तुम्हारा भस्तक  
तुम्हारी माँहें  
तुम्हारी छातें  
तुम्हारे कपोल  
तुम्हारे अघर ” १

जैसी प्रकार शारीरिक- तर्कों के चुम्बन-परिगणन की एक लम्बी श्रृंखला है । परन्तु जहाँ कवयित्री हन्दु जैन की चुम्बन एक विभागी स्तन लाता है ? वहीं सर्वेभर शिश से शुरू होकर लामन नत तक झुमते- झुमते परिवृप्त होकर संगीतमय हो उठते हैं ---

“ और खितार की तरह  
तुम्हें कस लेने के बाद  
हुप बजने लाता हूँ । ” २

१- जगत का दर्द : पृ० १११ ।

२- “ चुम्बन स्तन है विभाग का

और चाँटा भी,

बरना जाता-जाता क्या है

होठ और हथेली की चटखन के सिवा । ”

हन्दु जैन ।

३- जगत का दर्द : पृ० ११२ ।

यद्यपि संयोग के दो पाण नितान्त लौकिक हैं लेकिन इनसे उत्पन्न आनन्द लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार का है। एक ओर वह 'देह का संगीत' सुनता है, नारी-तन के साथ 'कपना तन, मैमने छा रगड़ता है' और वहीं शरीर से पृथक् रहकर रहस्यवादियों की तरह संयोग की अनुप्रातियों की वात्सल्य स्तर परमस्वप्नता है —

“ जितना अच्छा होता है  
एक दूसरे की बिना जाने  
पास- पास होना  
और उस संगीत की सुनना  
जी कमनियों में बजता है। ”<sup>१</sup>

यह अलौकिक संगीत प्रेम की हृदय स्तर पर लीज ले जाने वाला संगीत नहीं है अपितु जो लौकिक के नर-नारी के तन और मन की उन्मादता तथा तन्मयता है जो प्रेम की सच्चाई और गहराई की प्रतीक है। मावनात्मक-गहराई की दृष्टि से संग्रह की 'नीली चिड़िया' 'अविना विशेष महत्वपूर्ण' है। 'नीली चिड़िया' आँखों से प्रेम के सन्नि उड़ाने वाली मायिका है। चिड़िया कवि की प्रेयसी की उम्र की मासूमियत, चहक, झुलक, चुलचुलाहट, फुदकना आदि की समग्र अभिव्यक्ति करती है। यहाँ प्रेम का व्यापार मौन रूप से चल रहा है। 'मरी मौन में बसत है, मैमन ही सब बात' की तरह यहाँ भी आँखों से प्रेम की अभिव्यक्ति ही रही है। लेकिन यहाँ 'मरी मौन' की वजह से आँखों की ऊँचाई नहीं पड़ी है बल्कि यहाँ तो प्रेम उस गहराई पर पहुँच गया है जहाँ कुत्ता पत्थर ही जाता है और आँखों की बीजना पड़ता है।

१- संग्रह का वर्ष : पृ० ६९ ।

२- वही : पृ० ८६ ।

संयोग पदा की दृष्टि से 'जंगल का दर्द' कवि के अन्य संग्रहों से भिन्न जा सकता है। पूर्ववर्ती संग्रहों में संयोग की स्थितियाँ या तो हैं ही नहीं थीं जो चौड़ी-बहुता हैं या वे बहुत स्पष्ट हैं। वहाँ कवि विरह के नीचे अधिक गीता रहा है, संयोग पदा को उभारने की हिम्मत उसने नहीं की है। प्रेम को वह सिर्फ दर्द के स्तरों पर मान्यता देता रहा है उसने प्रति विस्तृत चिन्तन का वहाँ अभाव है। 'जंगल का दर्द' में यह कवि इत्तीत - अस्तीत की बाई को पाटकर प्रेम को उसकी सम्पूर्णता में देता है। यहाँ विरह पदा जितना सबल और पृष्ठ है, संयोग पदा उतना ही प्रबल और उत्तेजक है। ' ' अपने आरंभिक - संग्रहों में भी सर्वेश्वर यदि कहें अपने स्मान से ग्रस्त दिखायी देते हैं तो वहाँ और उसे काटकर निकल भी जाते हैं। ' जंगल का दर्द ' में उनकी कविता इस संश्लेष की उपलब्धि भी करती है जो भाव और विचार की टकराहट का नतीजा है। ' ' ६

#### ( ॥ ) प्रेम : वियोग-जनित पीड़ा :-

संयोग और वियोग- प्रणय की दो स्थितियाँ हैं। वियोग की प्रेम की कसौटी कहकर संयोग से अधिक महत्व दिया गया है। लेकिन यह मान्यता उस समय स्थापित हुयी थी जब साहित्य में संयोग-चित्रण अस्तीतता का पर्याय समझा जाता था। वर्तमान साहित्य में वियोग पदा ही अपेक्षा संयोग पदा का यथार्थ चित्रण अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। आज संयोग का चित्रण जितना सुखा, निरावृत्त और यथार्थ है — वियोग का चित्रण अपेक्षाकृत दबा दबा सा है। आज का कवि ' है ला, मृग, है मधुर श्रेणी - तुम देखा सीता मृग नैनी ' की तरह दुनिया के एक-एक बन्दे-परिन्दे के

१- श्री विश्वेश्वर प्रसाद - हायाका दोस्तर काव्य : पृ०-२२३ ।

१- अर्चना कर्मा - 'जंगल का दर्द' : संश्लेष का विन्दु (लेख)  
अलोचना - जुलाई - सित० ६८, पृ० २८

समस्त अपनी व्यापकता की उपायना नहीं चाहता, वह तो अपने दर्द को खुद ही घुट-घुट कर पीना चाहता है। इसका कारण यह है कि यह कवि केवल मात्र भावनाओं में ही नहीं जीता — उसकी भावनाओं के ऊपर विवेक सर्वत्र छावी रहता है। 'नयी कविता का दर्द आयावादी वेदना का ही रूपान्तर है। आयावादी कवि के अनुसार कवि का कंठ धियों की वेदना से फूटता था, नये कावे के अनुसार दर्द की अनुप्राप्ति है। नयी कविता में विवेक का जी स्वरूप स्वर सुनाई देने लगता है वह दर्द से आकर टकरा जाता है।' १

'काल का दर्द' में संयोग पदा में भी व्यापकता और सुलपन है वह धियों पदा में व्यंगितकता और गहराई से युक्त ही गया है। यहाँ सर्वोपर की पीड़ा के दो कारण नजर आते हैं — एक तो उनकी प्रेयसी विवा-  
हिता है, उसका दाम्पत्य-जीवन पूर्ण अव्यस्थित है 'सीतिये वह' हर दाण अपनी रीझी समेट लेती है २ दूसरी और स्वयं कावे का वैवाहिक परिवेश अव्यवस्थित है जो, दिमाग से नयनों तक रेंगकर ३ तीसरी घुटन पैदा करता है। सीतिये कावे की घर लौटने पर अधिरा मिलेगा जब कि उसकी प्रेयसी के सिरहाने की रीझी 'कोई हाथ बढ़ा चुकायेगा।' ४ पारिवारिक परिस्थितियों के इस वैवाह्य के कारण 'जल लौने का स्याल' दोनों की दो पृथक् अनुप्राप्तियाँ पैदा है। कावे की यह स्याल कर्क की तरह सर्व लाता है दूसरी और उसकी प्रेयसी स्त्री जरा भी व्यथित या विवर्तित नहीं है —

१- श्री शिवशेखर प्रसाद — आयावादीतर काव्य : पृ० २२३ ।

२- कवितार-१ : पृ० ७३ ।

३- काल का दर्द : पृ० ८४ ।

४- वही : पृ० ६६ ।

' ' किना वासान था  
 तुम्हारे लिए यह कह ले जाना  
 ' अलविदा '  
 .... और मेरा .....  
 मल्लस करना, परा हुआ  
 उस आलीपन की  
 जहाँ तुम खड़ी थीं  
 सड़क की खिरी पटरी पर ।  
 फिर कुछ न कह पाना  
 केवल घुटनों तक  
 कर्क मल्लस करना  
 खला ही जाने के ख्याल की । ' ' १

प्राचीन साहित्य-शास्त्र में विरह की दस दशायें मिलती हैं । वर्तमान कवि  
 निजी अनुभूतियों के चित्रण में किसी शास्त्रीय-परम्परा के व्यख्यान की  
 बरदाश्त नहीं करता । सर्वेश्वर ने भी यहाँ प्राचीन 'प्रताप' की स्थिति  
 को नकार कर 'फिर कुछ न कह पाना' की स्वाभाविकता का निवाह  
 किया है । लेकिन 'बक़ा' की स्थिति यहाँ मिलती है । 'घुटनों तक  
 की हुयी कर्क' छिलने-डुलने, जाने बढने, पीड़े लौटने की शक्ति का  
 व्यवहार करने में पूरी तरह समर्थ है ।

विरह केवना का दूसरा कारण दोनों प्रेमी वस्तुओं-के पदों की  
 पारस्परिक स्वभावगत विषमता है । सर्वेश्वर स्वभाव से ही मादुल हैं जबकि



उनकी प्रेमिका बौद्धिक अधिक है। स्थितियों जिन स्थितियों में कवि टूटन और घुटन से व्याकुल हो उठता है, उन्हीं स्थितियों में वह एकदम नार्मल रहकर केत जाती है। भावावेश में कवि जिसे अपनी मृत्यु तक की संमिनी, सुख-दुख की सहमागिनी मानता था वह केवल मानस सुखदायकों में ही उससे साथ रह-सेवारी करता है।<sup>१</sup> कवि यहाँ भ्रमनिष्ठ प्रेमी के रूप में सामने आता है लेकिन उसकी प्रेमिका प्रेम - पूर्वधिका है जो पहले अपने प्रेम का भ्रमजाल फैलाती है और दूसरे ही क्षण उड़ जाती है, तितली की तरह ----

“ तितली ने कहा फूल से  
मैं तुम्हारे साथ  
झिनी मरी-पुरी लाती हूँ  
और उड़ गयी। ”<sup>२</sup>

इन परिस्थितिजन्य तथा प्रवृत्तिजन्य वैषम्यों और प्रबंधनाओं के कारण कवि में अकेलेपन का बोध स्थायी हो गया है। सारी जिन्दगी के प्रेम-सम्बन्धों के

---

१- “ और वह जिसे मैं  
अपनी मृत्यु तक की संमिनी मानता था  
केवल मेरे नते में बाँधे डाल  
मेरी आँखों में देखने लगी :  
कौरी सम्मोहन दृष्टि । ”

+ + +

फिर बिना मेरी और बैठे उन सबके साथ ही तो । ”

केत का वर्ष : पृ० ६० ।

२- वही : पृ० ११८ ।

बावजूद उसे उपलब्ध होता है तो स्थायी विलेपन को<sup>१</sup>।

प्रथम झण्ड में साहस के साथ परिस्थितियों से झुगने, लड़ने का तात्पर्यवर्ती कवि प्रेम के क्षेत्र में स्ताश और पराजित हो जाता है। उसकी संघर्ष करने की शक्ति यहाँ चुक गयी है। "जब दूसरे हिस्से में प्रेम-सम्बन्धों के बर्द, देह, देह के संगीत, क्लृप्त वादि की लेकर कुछ अन्धही जकितारें हैं — ताप परी टोस पगी ।..... एक गीत 'बर्द' के कोने 'में व्यक्त मानसिकता नयी जकितारें के वीर की है। उनके धस्तिक में हिपकली सी चली पराजय और भुवाँ होठ की थी जैना पहले हिस्से की जकितारों का धिलोम धालूम होती है।"<sup>२</sup>

बहुत बार कवि का प्रेम छायावादियों के प्रेम की याद दिलाता है। इसमें माधुर्य है, सपने हैं और पीड़ा है। इन सबके दुराग्रह के कारण वह बार-बार यथार्थ की जमीन से छूटता हवा लाता है पर उसकी प्रेयसी का प्रेम प्रयोगवाद की बोद्धिज्ञता से प्रभावित है — उसमें जो कुछ है वह यथार्थ है, सुरवरा है, अतिबोद्धि है — प्रेम जैसी माधुर्य स्थिति में भी वह नितान्त माधुर्य है। प्रेम के विविध उतार-चढ़ाव उसके लिये उसी प्रकार स्वाभाविक हैं जैसे किसी महानगर की सिटी बस में चढ़ना-उतरना — रोज़मर्रा की क्रियाओं की तरह सहज। उसकी यह बोद्धिज्ञता कवि की कमी होती है क्योंकि नितान्त

१- "सारी जिम्मेदारी

में सिर झिमाने की जगह  
हँसता रहा,

और अन्त में

अपनी हलियाँ से

बेखतर जगह झुबरी नहीं पितो ।"

जगत का बर्द : पृ० ६७ ।

२- सीमवन्त - पूर्वार्ध - कुलार्ध अन्त ७७ : पृ० १७ ।

मौन-परक स्थितियों के होते हुए भी वह व्यक्तित्व है, दर्द के गीत गाता है।  
कल्पित कदु जो प्रेमा-कवियों की प्रिय कदु है, कवि के समस्त प्रेम के उतार-  
चढ़ाव का तेसा-जीता लेकर उपस्थित होती है --

“ हर सात कल्पित  
नये पत्तों की छाया पर  
छु करता है लिखना  
एक प्रणय कथा  
पर हर सात  
फरते पत्तों में  
दीस जाती है  
उसकी व्याख्या । ”

उत्तेजक संयोग - चित्रों के साथ-साथ टीस और कर्ब से भरपूर विरह की  
प्रस्तुत करके कवि ने 'कल का दर्द' के प्रेममत्ता की संरक्षण के चरम बिन्दु  
तक सींच दिया है। यह देवता कवि की निजी है अतः टीस ने, सातों  
की भरपूर सामर्थ्य से युक्त है। 'कल का दर्द' की पीड़ा में अन्य संग्रहों  
की अपेक्षा मंचाव और कसाव अधिक है क्योंकि यह पीड़ा 'तीसरा सप्तक'  
से प्रारंभ होकर 'कल का दर्द' तक निरन्तर विद्यमान है और अन्तिम तन्वी  
यात्रा तय करते-करते कवि पूरी तरह मंच कर सामने आता है -- "... कुसरी  
की कान्ठियों से देह रगड़कर देह का संगीत सुन्ता मेमना भी है और  
कौकशाकी कान्ठियों पर दर्द के नीचे छेने समेटे रात की तीली 'नयी कविताई'  
घुटन की। यों 'तीसरे सप्तक' और 'काठ की घंटियाँ' से लेकर 'कल  
का दर्द' तक सर्वेभर दयालु खड़ेना ने तन्वी यात्रा ( दर्द के स्थायी

पीछि माव के साथ) तय की है। \*\*९

( III ) प्रेम नाम यौन-क्रान्ति :-

यौन सम्बन्ध सृष्टि के विकास का आधार है। नैतिकता और जादृश की कोंक में मनुष्य मते ही इन सम्बन्धों को नकारे किन्तु अपने मूल में वह इन सम्बन्धों से पूरी तरह सम्पृक्त है। साहित्य और समाज की नैतिकता के ठेकेदार --- इन सम्बन्धों का विनाश की विरोध करें लेकिन वे भी जानते हैं कि इन सम्बन्धों का अवरोध - सम्पूर्ण सृष्टि को स्थिर और धीरे-धीरे समाप्त कर देगा। यौन सम्बन्धों की व्यापकता के कारण हिन्दी साहित्य में उनकी एक वृत्त परम्परा रही है लेकिन वापुनिक परिवेश ने उनकी जो सुता लप दे दिया है वह पहले कभी नहीं मिलता।

साठोत्तरी कविता से पूर्व विशुद्ध शारीरिक या रोमानी क्रान्ति की कल्पना ही नहीं थी। रीतियुग में यह विद्रोह मिलता भी है तो सुत्तर नहीं बल्कि 'राधा कन्नाई' के वाध्यात्मिक-सावरणों से ढंका हुआ है। सामन्ती समाज की नारी यद्यपि दासी थी, शराब का एक प्याला भी फिर भी मानवीय थी लेकिन पूँजीवादी समाज ने नारी को संमोग या विकास की एक बिन्दु बनाकर डीढ़ दिया है अतएव इस काल के यौन-सम्बन्ध नारी-संमोग के सम्भाव्य और असम्भाव्य तरीकों को अपनाने तक ही सीमित हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध ने प्रत्येक मानव-मूल्य को केतरह किंकीड़ दिया। इस युद्ध की विभीषिका का प्रभाव नर-नारी सम्बन्धों पर बहुत अधिक पड़ा। मौल-वन्ध संवास तथा युद्धोत्तर जाथिक विपन्नता ने दाम्पत्य जीवन की वृद्धता

और स्तम्भितता को हिला दिया । प्राकृतिक-विभूतता के फलस्वरूप यौन-उत्कृष्टता विकसित हुई । सन्तति-निग्रह के नवीन साधनों ने यौन-सुषुप्ति के सुतासे को और अधिक प्रभय दिया । विज्ञान के प्रभाव ने मनुष्य<sup>की</sup> धार्मिक-आस्थाओं को द्विन्न-भिन्न कर दिया उस पर से ईश्वर का मय पूरी तरह हट गया । मशीनीकरण से उत्पन्न आर्थिक - विपन्नता के कारण समाज के मध्यमवर्ग की मनोरंजन के अन्य साधनों में प्रवेश पाना मंजूर पड़ता था कि : उसके पास मनोरंजन का एकमात्र सुख साधन यौन-सम्बन्ध ही थे । अिराष्ट्र यौन-सम्बन्धों और यौन क्रान्ति के मूल में फ्रायड के मनोविश्लेषण की बहुत अधिक प्रभाव है ।

~~निराकृत यौन-सम्बन्धों और यौन-क्रान्ति के मूल में फ्रायड ने~~  
यौनेच्छा को केवल युवावस्था की कर्पोती नहीं माना । उसके अनुसार यौन-प्रवृत्ति तथा विपरित लिंग के साथ सम्वास की इच्छा शैशव - काल से ही विकसित होती है । तथा इन इच्छाओं के दमन से व्यक्ति विभिन्न कुंठाओं से ग्रस्त होकर मानसिक-रोगी हो जाता है । फ्रायड के यौनवाद ने पारचात्य और भारतीय— दोनों साहित्यों को बहुत अधिक प्रभावित किया । उसकी मान्यताओं का मय बिनाकर मयावाहीन , अनेतिक और विद्रोही सिद्धान्तों को प्रचारित किया गया । साहित्यकार वैवाहिक सम्बन्धों की निन्दा करते यौन-उत्कृष्टताओं का प्रतिपादन करने लगे । फ्रायड , तारेन्स आदि की मान्यतायें पारचात्य संस्कृति में मान्यही सकती हैं किन्तु भारत में नहीं । भारत का परिवेश, संस्कृति और सामाजिक - मान्यतायें जितना भी बदल जायें लेकिन पारचात्य-उत्कृष्टता के करीब नहीं पहुँच सकती । किन्तु पारचात्य परम्परा का अनुकरण यहाँ स्वीकार्य नहीं हो सकता । उस परम्परा की भारतीय परिवेश के अनुरूप पचा-कपाकर स्वीकार करना यहाँ अभीष्ट है । यही कारण है कि भारत में वह यौनवाद का अनुकरण तो हुआ लेकिन पाठक और समीक्षक उस अनुकरण को अपने गले से नीचे नहीं उतार

सबे । कुछ समीक्षकों ने उसे कवि की रङ्गण और अस्वस्थ मनोवृत्ति का नाम दिया तथा कुछ ने यौन-क्रान्ति की संज्ञा से अभिलिखित किया । प्रेम के क्षेत्र में स्थापित लज्जा और संकोच के आवरणों की प्राचीन मान्यताओं को तोड़कर - संकष्ट कथवा संयोग की सुलभसुलभ अभिव्यक्ति -- यौन-क्रान्ति है । "उन्मुक्त समाज और उन्मुक्तम शारीरिक सम्बन्धों की पतनहीन कक्षा की पुमावदार माणा में क्रान्तिकेता कक्षा कहा जाता है ।" <sup>१</sup>

सर्वेश्वर एक और जीवन के प्रत्येक क्षण में क्रान्ति के अनुयायी रहे हैं तो दूसरी ओर अपनी परम्पराओं से पूरी तरह मुक्ति नहीं पा सके हैं । आधुनिक युग में प्रेम के रूप में परिवर्तन हुआ है , साथ ही नर-नारी के रूपों में भी भारी बदलाव आ गया है । आज का मानव दाणों में जीता है अतः उसका प्रेम सात जन्मों का अनवरत चलने वाला सतीतिक प्रेम नहीं है । वह प्रत्येक दाण में उपजने और दूसरे ही दाण में उठने वाला प्रेम है । इस विषय में सर्वेश्वर का प्रेम कुछ मोहाविष्ट है । वह अपनी प्रेयसी को सात जन्मों की नहीं तो कम से कम इस जन्म की संगिनी तो स्वीकारते ही हैं । 'और वह जिसे मैं , अपनी मृत्यु तक की संगिनी मानता था ' कहकर वे लक्ष्मी परम्परा का अनुकरण करते हैं लेकिन इस परम्परा की वे अन्त तक निष्ठा नहीं पाते । उनकी प्रेयसी अपेक्षाकृत बौद्धिक है लक्ष्मि साध-साध जीने-मरने कथवा मृत्यु तक साथ देने की बात वह नहीं करती । आज की बौद्धिक नारी की तरह प्रिय पर संकट आने पर वह मरने की प्रस्तुत नहीं होती बल्कि अपना अपना रास्ता बतल लेती है, -----

उसने अपना सुर्ग स्कार्फ तोला

और मेरे नते में बांध दिया ।

मैंने तोटने की पड़ी का आखिरी खिन्ता ।" <sup>२</sup>

१- श्री सोमवत्स - पूर्वार्ध - सुताई-अवस्था ७७ : पृ० १५ ।

२- केशव का दर्प : पृ० ६० ।

‘सुई स्कार्प’ के रूप में वह कवि का प्रेम उसे वापस लौटा देता है। यहाँ सर्वेश्वर की नायिका प्रेम और प्रेमानुभूतियों की बाधार बनाकर रीते-बिहारे हुए जीवन बिता देने वाली पक्षाक्षी, वानभक्षी और उर्मिला बाधि पारम्परिक नायिकाओं से अलग जा पड़ती है। उसकी यह नौजुबता सदैव नशील कवि की बार-बार टोखती है। अतएव वह हर क्षण अपनी प्रेयसी को मिस करता है और अकेलेपन के राग गाता है।

बावजूद इस पीछे से परम्परा-मोह के, सर्वेश्वर ने अन्य लोगों की भाँति प्रेम के क्षेत्र में भी क्रांति की है। वे जिस समाज में रह रहे हैं उसमें प्रेम सम्बन्धों की स्वीकृति नहीं है, दाम्पत्येतर सम्बन्ध तो यहाँ पूर्णतः अवैध और अनेतिक माने जाते हैं। सर्वेश्वर इन सामाजिक बन्धनों को तोड़कर जाने बड़े हैं। ‘काठ की घंटियाँ’ में उन्होंने विवाहिता स्त्री से सम्बन्ध स्थापित किये हैं<sup>१</sup>, जंगल का दर्द की नायिका भी विवाहिता है<sup>२</sup> लेकिन ‘काठ की घंटियाँ’ की नायिका की तरह वह समाज-मोह नहीं

१- “तुम, जो सुमन-सी  
हर क्षण अपनी रीझती समेट  
लेती हो, क्यों कि परवश हो,  
और दूसरी क्षण अता लेती हो  
क्यों कि बीरत हो।”

कवितारंग-घंटियाँ : पृ० ७३ ।

२- “तुम्हारे सिरहाने की रीझती  
नींद हाथ बढ़ा बुकायेगा  
और मेरे सिरहाने  
वह रात भर जलती रहेगी।”

जंगल का दर्द : पृ० ६६ ।

है । वह विवाहोत्तर सम्बन्ध जोड़ता है , संयोग के उद्गम दाणों से  
बुझती है तो कम समाज से जातचित्त होकर ' अपनी रीति समेट नहीं लेता ।'  
वह योगवाद की , योगवाद की सम्पूर्ण समर्थिका है । ' वाचक का मुख्य  
मैहमान तुम , रात के इस ' पत्थोर ली ' में ' की तरह वह स्वयं के उपयोग  
का वाचकता वैधिकाता केता है -----

“ भुके चुपी  
उद्गम सरीवर बना दी  
भुके चुपी  
नदी बना दी  
भुके चुपी  
सागर बना दी  
फिर भी तट पर धूप में निवसित नहायी । ” १

योग सम्बन्धों का ऐसा सुता वाचकता समाज की सभी प्राचीन परम्पराओं  
की ध्वस्त कर केता है , नैतिक मान्यताओं की नकार केता है और प्रेम  
सम्बन्धों की एक नयी विज्ञा केता है । यहां सर्वेश्वर की नारी सीता की  
अनुगामी नहीं है । अपने इस रूप में वह वित्तपोषेता के अधिक समीप ठहरती  
है । २

१- अन्त का वर्द : पृ० १६० ।

२- “ वास्तव में उसका वाचकता सीता का नहीं वित्तपोषेता का वाचक है ।  
हरीर तुष्टि की वह पाप नहीं समकती है , अपितु अपनी मानसिक  
जाति के विविक्त शारीरिक तुष्टि की आवश्यक मानती है । ”

डा० हरिपरण - नवी कविता : नये धरातल : पृ० ५६८



रुक्मिणी कवि के सम्बन्ध वाच्यत्वकार हैं । 'मेरी और चांद के बीच एक क़त्त है' <sup>१</sup> में जिस क़त्त का उल्लेख है वह क़त्तः वाच्यत्व सम्बन्धों का क़त्त है जो चांद और कवि के मध्य अवरोध रूप में है । 'क़त्त का दर्द' में इन सम्बन्धों का क़त्त 'दरवाजे बन्द हैं' शीर्षक कविता में मिलता है । यहाँ 'दरवाजे बन्द हैं' वाच्य प्रणय सम्बन्धों को बन्द कर देने या समाप्त कर देने का घीचणना है रूप में है। यद्यपि वह जानता है कि मान बिवाह ही जाने से मन में स्थित आकर्षण तथा प्रेम की क़ौमल भावनायें चुक नहीं जाती । इसीलिये दरवाजे बन्द कर लेने पर भी बाहरी रौशनी उसके कमरे में दरारों के रास्ते से आ रही है । <sup>२</sup> जब ये बाह्य आकर्षण उसके पास तक पहुँच रहे हैं तो अपना वैवाहिक परिवेश उसे आस देने लगता है , ठीक उसी तरह जैसे कैद हवा -----

" नयनों से दिमाग तक  
रँगती है गन्ध  
कैद हवा को । " <sup>३</sup>

'रँगती है' से स्पष्ट है कि घर की चारदीवारी की हवा अर्थात् अपना ग्राहस्थिक परिवेश उसे कौई सुख अनुमति नहीं दे रहा जब कि दरारों से फाँफ़ी हुई बाहरी आकर्षण उसे रौशनी की तरह सुख और आकर्षण लगते हैं । पुनः यहाँ कवि का परम्परानुगामी तथा परम्परा-उन्नीतक का रूप एक साथ उभरता है । वह

१- कवितारं- १ : पृ० १७६ ।

२- " दरारों से रक्तले बायी रौशनी  
आमोही की पसलियों- सी  
उभरी है  
दीवारों पर । "

क़त्त का दर्द : पृ० ८४ ।

३- वही : पृ० ८४ ।

स्वयं प्रेम भावनाओं से बाधान्त है लेकिन समाज के मय से दरवाजे बन्द करके बैठा है। 'घर में कोई नहीं है' के द्वारा उसने स्पष्ट कर दिया है कि ये दरवाजे संयोग के किन्हीं क्षणों के उपनिग के लिये बन्द नहीं किये गये हैं। यहाँ तक तो कवि सामाजिक परम्परा से सम्पृक्त है लेकिन इसके तुरन्त बाद वह बिग्रीहा ही उठता है और अपनी प्रिया की सलाह देता है — दीवार फाँवकर जाने की। सामाजिक मान्यताओं की इस दीवार को कवि स्वयं नहीं फाँव सकता था और उसने बचकर अपने कमरे में जा बैठा था लेकिन वह वास्तव है कि उसकी नारी पान इस दीवार को बेपङ्क फाँव लेगी। यहाँ कवि परम्पराओं की तोड़ना तो चाहता है लेकिन स्वयं कगुवा नहीं बनना चाहता। नारी शक्ति के प्रति उसकी वास्था यहाँ स्पष्ट है। पुराने हीकर भी वह जिन लड़कियों से नहीं टकरा सगा उसकी प्रेयसी उन्हें बहुत सहज ढंग से काट सकती है।

'काल का दर्द' का कवि यद्यपि प्रारंभ में कुछ कायरतापूर्ण अनुभूतियाँ दे गया है लेकिन बाद की कविताओं में वह विलुप्त निःशब्द साहसिकता के साथ सामने आता है। यहीं से सर्वेश्वर के प्रेमी की यौन-क्रान्ति सामने आती है। सर्वप्रथम 'वह एक शब्द' कविता में उसने अपने प्रेम्पञ्चन्यों

१- " मैं नहीं जानता  
तुम्हें कैसा लीना  
जब तुम दीवार फाँवकर  
भीतर आओगे । "

काल का दर्द : पृ. ८५ ।

की सफलता: स्वीकारा है ----

“ एक सुप्त स्वातामुषी

यह गुंमाणन

सुम्हारा

भुजमें फूटता

— प्रथम ११९

अपने अन्तर में फूटने वाले प्रथम की समाज के सामने रखकर निश्चय ही  
 सर्वेस्वर ने सामाजिक मान्यताओं को हिला दिया है। चाहे जिस देश, जिस  
 समाज का नागरिक है वहाँ यदि प्रेम सम्बन्ध बनपते श्री हैं तो सुन-गिर कर।  
 इस तरह उनका प्रकाशन करना यहाँ सामान्य और अनैतिक है। यौन-सम्बन्धों  
 के क्षेत्र में <sup>जबरदस्ती</sup> किफाईट संग्रह की 'प्रतीक्षा' कविता के साथ हुआ है  
 जहाँ चाहे 'सुती-कली पिछलियाँ,' चाँदी के फूतदान 'कहकर उम्मीद कर  
 रहा है कि 'सोने जहाँ फूत मी, संगीत के अंधरे में'। चौड़े से शब्दों में  
 संयोग की स्थिति, कनेक मनोमाक्ताओं और देर की संभावनाओं की कवि  
 ने प्रकट कर दिया है। 'सुती' शब्द स्थिति की विवक्षता को व्यक्त करता है।  
 'चाँदी के फूतदान' सम्पूर्ण वैयक्तिकता का प्रतीक है। इसके बाद वह 'संगीत के  
 फूतों की अंधरे में' प्राप्त करने की आकांक्षा करता है। 'संगीत के फूत'  
 शब्द स्पष्ट है लेकिन इसके दुरन्त बाद की कविताओं में प्रयुक्त 'देह का संगीत'  
 तथा 'प्रथम पुष्प' शब्द - संगीत और फूत दोनों शब्दों की स्पष्ट कर देते  
 हैं। इस आकांक्षा के दुरन्त बाद कवि की अपनी बौद्ध प्रेयसी की तरफ से

१- संगीत का दर्द : पृ० १०४ ।

२- वही : पृ० १०८ ।

पौन का कामभ्रम मिलता है ----

“ मुझे चूमा  
 और फूल बना दो  
 मुझे चूमा  
 और फूल बना दो  
 मुझे चूमा  
 और बीज बना दो  
 मुझे चूमा  
 और वृक्ष बना दो  
 फिर मेरी झल में बैठ रोम-रोम सुझावों । ”<sup>१</sup>

‘ काठ की घोटियां ’ में सर्वेश्वर ने एक दृष्टा की थी कि ----

“ सिर्फ हर वीर का बिल्ला हुआ यह सुनावन  
 सिबुद्धर, ठोस-सा ही पास मेरे जा जाता,  
 बांध पाता, जिसे मैं बांध में अपनी कसकर,  
 वीर ही पाता उन बांधों पर अपना धिर धर ”<sup>२</sup>

कवि की यह दृष्टा ‘ बांध का पुत ’, ‘ गर्म हवाए ’, ‘ एक सुनी नाव ’  
 और ‘ कुलानी नदी ’ तक बनी रही, + उसे पूरा करने का साहस कवि नहीं  
 कटार बना लेकिन ‘ कात का बंद ’ में यह भरपूर गर्म जोशी के साथ पूरा

१- कात का बंद : पृ० १०६ ।

२- कवितार्क - १ : पृ० २१ ।

होती है ----

“ मैं चूमता हूँ  
 + + +  
 तुम्हारा कंठा  
 तुम्हारे उरोज  
 तुम्हारी नाभि  
 तुम्हारा प्रजनन पुष्प  
 तुम्हारी जंघाएं  
 तुम्हारी पिंडालियां  
 तुम्हारी पेर  
 तुम्हारी जंगलियां  
 तुम्हारे तलुए, हथेलियां  
 और खिलार की तरह  
 तुम्हें कस लें के बाद  
 खुद बजने लगता हूँ । ”<sup>१</sup>

‘तुम्हारा तन’ कविता के साथ संमीन की स्थितियों की समाप्ति ही जाती है। यहां कवि की दृष्टि नितान्त मोगवादी है। ‘तन से तनरगड़ने’ के प्रसंग यहां उसका कथ्य है। यह स्थिति जहां संमीन का चरम पाण है वहीं यौन-क्रान्ति का बोधलेख-वाक्य भी है ---

“ तुम्हारा तन  
 एक हरी मरी काढ़ी है  
 जिससे मैं मैमने सा  
 अपना तन रगड़ता हूँ । ”<sup>२</sup>

१- जगत का वर्द : पृ० १११-११२ ।

२- वही : पृ० ११३ ।

एक प्रकार सर्वेश्वर ने कुल चार पाँच कविताओं ( वह एक सन्ध , प्रतिज्ञा ,  
 वेद का संग्रह -१,२ , तुम्हारा तन ) के द्वारा यौन-क्रान्ति का कण्डा  
 गाढ़ दिया है । इनकी यह क्रान्ति प्रभावित करने, उचित- पुस्तक बनाने में पूरी  
 तरह सफल है । कवि की विशेषता है कि यौन- क्रान्ति के दीन में सारे जाके  
 और उत्तेजना के साथ उतरने के बावजूद उसने अपना सन्तुलन और संयम नहीं  
 खोड़ा है । मीन के चरम दाणों में अन्य कवियों<sup>१</sup> की तरह सर्वेश्वर का 'व्यापित'  
 बर्न न होकर सौफ बनाना रहता है ।

यौन - क्रान्ति के दीन में सर्वेश्वर ने न तो महीशामिरी  
 की है और न वे अपने आप को बचाकर चले हैं । समाज से बेपरवाह होकर वे  
 इस दीन में बूढ़े हैं , स्वयं इस क्रान्ति के लुगना बने हैं । कत : यौन - क्रान्ति  
 के जो चित्र इस संग्रह में आये हैं वे सर्वेश्वर की सच्ची अनुभूतियों से टकराकर हो  
 आये हैं । ' ' वही जहाँ अपने प्रेम पर , अव्यात्म की एक सुनहली आभा टाल  
 बैठे हैं वहाँ उनका अनुभाभी यह कवि उसे क्रान्ति से जोड़ फेता है ।..... इस  
 तरह राजनीतिक - वार्थिक क्रान्ति से यौन- क्रान्ति को मिला देने पर क्रान्ति  
 पूर्ण हो जाती है । ' ' ?

१- ' ' स्तनों की रौखी पागत कवम

तरावि जल्य पर

मृता मङ्गलिया

बीरता के कटे- नुबड़े, अस्तर्जों पर

शिरन की परझाब्या । ' '

गीतिका रजनीक- 'सम्प्रदायिक हिन्दी कविता' के आधार पर : पृ० १३२ ।

२- सन्ध चिह्न पर नवत - 'समीक्षा' ' बुता ४-अगस्त ७७ : पृ० १६ ।

( स ) मानव प्रेम :-

“साहित्य का सम्बन्ध मूलतः मानवीय-संवेदना और अन्तर-सत्त्यों से होता है। जब तथ्य-जगत मानव के अन्तर-जगत से जुड़ जाता है तब कविता का विनय बनता है।”<sup>१</sup> कामान साहित्यिक की दृष्टि जिस मानव पर ठहरती है वह उस दृष्टि का तन्मय मानव है। अपनी लक्ष्मी का सम्बन्ध तन से जतना नहीं है जितना मन से है। काज का कवि शीघ्रतः सत्ता की चापल्यी करने वाली कविताएं नहीं लिखता, मुंह तोड़कर सम्पूर्ण ब्रमाण्ड के वर्तन करा देने वाले, उंगली पर पकड़ उठा लेने वाले मगवान कृष्ण तथा शक्तिशील और सौन्दर्य के मण्डार मगवान राम पर उसकी दृष्टि नहीं ठहरती। उसने लिये ‘सबसे प्रिय कवितारं ये हैं, जो गटर में पड़े शराबियों, लथोड़ा चलाते सुहारों और घूल में लेती हूँ बच्चों की मौली बाँलों में फालकती हैं...’<sup>२</sup> यह मानव अपनी लक्ष्मी में ही महान है। यह असीम शक्तियों से युक्त है। लक्ष्मी जूझने की जो शक्ति उसमें है वह बड़ी-बड़ी सत्ताओं में भी नहीं है। ईश्वर की इस मानव के समता तुल्य है। उसने माय का नियामक या निर्माता कीर्ति स्तर शक्ति नहीं है, वह स्वयं इन सामर्थ्यों का पुत्र है। अपनी लक्ष्मी में भी वह विराट है। शासक सत्ताओं ने उसे तोड़ मरोड़ कर अपने उपयोग का साधन बना लिया है जिससे वह अपनी शक्तियों के प्रति अनास्थावान तथा शासक सत्ता के प्रति मजबूत और अनास्थावान बनाकर निजी सामर्थ्यों के प्रति जंगल ही उठा है। ईश्वर की व्यवस्था ने उसे नियतिवाद के ज्ञान से प्रभित करके अपनी हीन स्थितियों की ही नियति मानकर शान्त रहने के लिये बाध्य कर

१- डा० रामचन्द्र मिश्र - काव्य का हिन्दी साहित्य : पृ० १४ ।

२- फकीर मारवी - कुरा सप्तक : पृ० १७५ ।

दिया । नया कवि मानव की सुप्त शक्तियों को जूँव कर जागरण का संकेत देना चाहता है । टी० एच० इलियट के अनुसार मानवीय-जीव और चिन्ता आज प्रत्येक वर्ग और स्थिति में राजनीतिक वर्ग का मुताबिक है ।

स्वातन्त्र्य पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर मानव की मनः-स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन आ गया है । स्वातन्त्र्यपूर्व का मानव बड़ी-बड़ी सत्ताओं से डरता जाने की अकल्पित सामर्थ्य से युक्त था । उसने सामने आयादी के बाद के जीवन की विविध रंगीन स्थितियाँ दी, जिनके सुन्दर सपने थे जिन्हें वह स्वातन्त्र्य प्राप्त हो जाने के कुछ वर्षों बाद तक भी संजोये रहा लेकिन अन्त में स्वप्नमय की विविध स्थिति आये और वह असीम शक्ति-सम्पन्न मानव अनवरत मुस्मरी, शीं-गण और अतिशय वैज्ञानिक प्रभाव के कारण चिन्दी-चिन्दी होकर बिखर गया । व्यापक प्रम-मय की स्थिति में उसे एकमात्र सहारा साहित्य ने दिया -- "यदि विज्ञान ने धर्म को मार दिया तो ऐसे समय में एकमात्र शक्ति मनुष्य की रक्षा ही सकती है ।" <sup>१</sup> इस रक्षाक माव के साथ वर्तमान साहित्य मानव के सर्वाधिक निकट जा पहुँचा है । आज उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति का केन्द्र बिन्दु मानव है यहाँ कि -- "नया कवि खतरी

---

१- "For the <sup>question of</sup> questions, which no political philosophy can escape, and by the right answer to which all political thinking must in the end be judged is 'simply this': What is man? what are his limitations? What is his misery and what his greatness? And what finally his destiny?"

राजेंद्र प्रसाद सिंह - मानववाद की काव्य चिन्त्यक प्रतिपत्तियाँ (लेख)  
जालीपना - ज्यैष्ठ १९५६: पृ० १२ के आधार पर ।

२- डा० हरिचरण शर्मा - नयी कविता: नये पराजित : पृ० ६६ ।



आदर्श की चिन्ता नहीं करता जितनी यथार्थ की। यथार्थ उसके युग का है, उसके समय का है, उससे सम्बन्धित समाज का है और उसके जैसे मानव का है। वह जो कुछ देख रहा है वही तो किसी देवता की दृष्टि से देख रहा है और ना किसी मानव की दृष्टि से। उसकी अपनी दृष्टि है और श्रुतः मानव दृष्टि है।<sup>१</sup> डा० जगदीश गुप्त की मनुष्य की देवता जयवा मानव की कसौटियों पर कसने का विरोध करते हैं।<sup>२</sup>

'जंगल का दर्द' के कवि का मानव प्रेम प्रत्यक्ष और परीक्षा कई रूपों में प्रवर्तित है।

( १ ) जीकट और गरिमायुक्त मानव :-

'जंगल का दर्द' का मानव दलित, दमिस्त, अनपढ़ पीला, थका, बीमार, तैतिहर मजदूर है। 'यह अपनी मध्य काशाओं और अनवरत शोषण के कारण तन से और मन से भी लंगड़ा गया है परन्तु जीवन के प्रति उत्सुकता और साक्षात् नै इसे टूटने-भरने से निरन्तर बचायेरहा। अपनी गरिमा की चिन्ता रखने के लिये वह तानाशाही शक्तियों से निरन्तर संघर्ष करता है। एक बार 'स्टेज पर लड़कियाँ से जाग लितना सिताये जाने पर पूरा शब्द लिखी है उसका हाथ मस्तक में बल नया है', इसके पश्चात् पूरे संग्रह में यह लघु मानव रूप मस्तक की धामे रहा है।

१- डा० हरिवरण शर्मा - नयी कविता का मूल्यांकन : परम्परा और प्रगति की दृष्टि पर -- पूर्व कथन में।

२- 'मनुष्य एक ऐसी सामाजिक क्रांति है जिसे परम्परागत रीति में देव-मानव के रूप में तोड़कर देवता या रीति बांधकर विभाजित कर डालता उसकी यथार्थ सत्ता की उपेक्षा करना तथा उसकी व्यक्तित्व की अस्वीकार करना है।'

डा० जगदीश गुप्त - नयी कविता : स्कन्द और संस्कार : पृ० १८ ।

यह मानव अपनी स्थिति की स्थिति ही मानता है नियति नहीं ज्ञात: उसे बदलने के लिये वह पूरी तरह झूठ-संकल्प है। अपनी स्थिति की समझ लेने के बाद वह घेराव करने, भाग लगाने के लिये तत्पर है। स्वयं कवि ने इस मानव की 'भाग' <sup>१</sup> कह कर उसकी व्यक्तित्व की तैयारी को बढ़ा दिया है। इसकी विशेषता यह है कि वह समय की भांग की पहचानता है। शीघ्रता की प्रति कीड़ प्रम उसने नहीं पाल रखा और उनकी कमनगारी प्रवृत्तियों से पूरी तरह परिचित है, स्वीकारिये वह चुनौती देता है 'बहुत ही चुका अब ऐसे नहीं चलेगा' <sup>२</sup>

यह मानव नाम से तो तम है लेकिन उसकी शक्ति के समझ सत्याधारियों की शक्ति की तुल्य है ---

“उस में और तुम में  
यही बुनियादी फर्क है

मेढ़िया मशाल नहीं जला सकता।” <sup>३</sup>

मशाल जलाने के लिये जिस साधन की आवश्यकता है वह केवल मान तम मानव की कपीता है, शीघ्रता का इस शक्ति से सर्वथा रहित है। “सर्वेश्वर क्या तबसेना ने मानव के एकाकी, मय-कातर, निराश एवं पराजित रूप की

१- “जाव होकर भी  
सचियों से  
जो इसे तितने-पढ़ने से बांधित रहा ही  
पहले उसकी ताकत तोजी।”

काव्य का बर्द : पृ० १५

२- वही : पृ० २१ ।

३- वही : पृ० २८ ।

स्वीकार करने के स्थान पर उसकी असीमित सहनशक्ति, अपराधेय वास्था एवं परबुद्धतातरता की विशेष रूप से रेखांकित किया है।<sup>१</sup> निरन्तर मिलने वाली प्रताड़नाओं और पीड़ाओं ने इस मानव की पैरों से रौंदा हुआ धूल बना दिया है। कवि इस धूल की शक्तियों के प्रति भी वास्थावान है। केवल हवा का एक फीका यदि इस धूल को मिल जाये तो यह बाधित बन सकती है और शीशकों की छाँवों में पड़कर उनकी दृष्टि का अपहरण कर सकती है --

“तुम धूल हो--

पैरों से रौंदा हुआ धूल।

केवल हवा के साथ उठो,

बाधी बन

उनकी छाँवों में पड़ी

जिनके पैरों के नीचे हो।<sup>२</sup>

‘केवल हवा’ से यहाँ वास्तव भावसंवादी विचारधारा तथा अन्य किसी श्रान्ति - काभी दृष्टिकोण से है। यही धूल सीत्तन के संयोग से दोमक बनकर सदियों से चले जा रहे अपने शीशित रूप की स्थिति ही बना सकती है तथा युगों से बन्द श्रान्ति के दरवाजों को खोल सकती है।<sup>३</sup> यहाँ कवि ने पूरी वास्था के साथ तबु -

१- डा० सरजू प्रसाद मिश्र - आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन: पृ० ४३०।

२- काल का दर्द : पृ० ३७ ।

३- “रातों रात  
सदियों से बन्द इन  
दरवाजों की  
जिड़कियाँ  
कदवाये  
बाँर रौलवान बात हो।”  
काल का दर्द : पृ० ३६ ।

मानव कबवा काम आदमी की महानता की स्वीकारा है। अतः मानव की गरिमा में वास्था रखने वाली दृष्टि को कला दृष्टि कहा है --

“ कला की, साहित्य की बात से जिसे भी देखी वह साध है, अद्वितीय है .... कला जिसे देखने से ही ‘काम’ साध ही जाये वही कला दृष्टि है। जैसे वास्थावान के लिये ईश्वर ‘काम’ नहीं होता वैसे ही कलाकार के लिये आदमी ‘काम’ नहीं होता। ”<sup>१</sup>

### ( २ ) मानव पीड़ा और समस्याएं :-

आज का कवि अपने समाज के प्रत्येक पीड़ित मनुष्य की पीड़ाओं में हिस्सेदारी करके समाज के प्रति अपने नैतिक कर्तव्य की वापुर्ति करता है। मानव से उसके जुड़ाव की सार्थकता मानवीय पीड़ाओं से जुड़ जाने में है। सर्वेश्वर अपने मूल रूप में मानव से सम्पृक्त है अतः मानवीय पीड़ाओं और समस्याएं बनायास उनके काव्य में आ गया है क्योंकि ‘आजादी के बाद देश में बड़े पैमाने पर जहालत, गरीबी और भ्रष्टाचार का जो प्रसार हुआ है वह सर्वजनशील कवि को रह-रहकर सात्ता है। पूरा राष्ट्र ही उसके सामने नंगा सड़ा है। राष्ट्रीय जीवन में यह गिरावट किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिये बर्द का कारण है।<sup>२</sup>

‘जात का बर्द’ में मनुष्यकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक पीड़ाओं और समस्याओं पर विशेष रूप से उगती रसी गयी है। ‘जितनी डंठ है’ में राजनीति के जातक और व्यापार तथा ‘सात साईंफित’ में कर्पशू के जातक और पुत्रिय की जनैतिकता की उठाया गया है। प्रथम में वातावरण जतना सर्द है कि ‘शब्द कण्ठ में ही कर्क हो गये हैं’ दूसरी में कर्पशू का वातावरण,

१- अतः - अन्तरा : पृ० ११७ ।

२- डा० रामचन्द्र राय - नयी कविता : उद्भव और विकास : पृ० २४१ ।

येत है सीतेली तथा उसके उत्पन्न संभाव है ---

“ रात भर

एक तात सायन्ति

कटीते बाहें से टिकी

कैसी लड़ी रही।

पुत्ति की सीटियाँ बजती रहीं

उनके मारी बूटों की बाधाओं खाती रहीं ।

+ + + +

पहली बार, मैं अपने कमरे के फर्श पर

खिड़कियों के जहाँ की परभाव्या

पढ़ती देख

सह्य गया । ” ६

यह संभाव केवल कवि का ही नहीं है, तानाशाही के नीचे वही-पिसे प्रत्येक मानव का है-उस मानव का जिसके - शब्द कठ में ही कर्त हो गये और ज़पोंतों पर दुल्ले कांसु जम गये । समाज में जिसकी जीजात 'पेरी' से रोका हुआ घृत' है बराबर है ।

समाज की सबसे बड़ी समस्या का-बेगम्य है जिसे 'जान' और 'जंत का बर्द' कविताओं में विशेणतः सामने रखा गया है ? --- समाज के स्पष्ट का पूजा-पति का और मजदूर का है । पूजापति को कवि ने मोड़िया कहा, जो अपनी

१- जंत का बर्द : पृ० ४६-५० ।

२- “ ताज्जवर मैं सब का तिया

कमजोर मैं उन्निष्ट है

सन्तान कर, बर्द से मुँह हिमा तिया । ”

वही : पृ० ४४ ।

सम्पूर्ण शिक्षा वर्गीयता और जातिभेदता के साथ मजदूर वर्ग की जायगी में लाया हुआ है। 'बाग' कविता में यह वैचारिक अधिक स्पष्ट है ----

“साधियों ! महीनों से बाप की  
पगार रुकी हुई है,  
भातिमान परत्वास्त हथकड़ी  
जा रहे हैं,  
बाप फाँके पर फाँके कर रहे हैं, ...”

समस्या जितनी गंभीर है उतनी ही अनुरूप प्रतिक्रियात्मक समाधान भी कवि को चलाता है --

“खन उनकी कौठियों का पिराव  
करने के सतावा और कौं बारा नहीं,  
क्या करते हैं : ...”

कवि-मैद की समस्या पर भी बलदेव वर्मा ने इन शब्दों में उक्ति किया है --

“नीचे का व्यक्ति और नीचे चला गया, ऊँचा और ऊँचा चला गया है।  
किसी एक प्रमाण रावधानी चित्ती में ही, सरकार के नाक के नीचे उठी  
बहुविक्रम मध्य स्मारक है, निम पर बढ़कर देते हैं नीचे लड़े बावली की  
बाँकात और हेचिका री उठेगी किन्तु यह नीचे लड़ा (पड़ा) पिछड़ा एवं  
जरा सा बावली के पर बढ़े बरबों-बरबों के शर्णा का समान रूप से केन्दार  
है। ...”

१- मजदूर का दर्द : पृ० १७ ।

२- बही : पृ० १७ ।

३- श्री बलदेव वर्मा- पिछड़ा और साहित्य(सं० नरेन्द्र मोहन) : पृ० १३७८ ।

‘मूख’ मनुष्य की मूल आवश्यकता और कामान मूल की स्वाभाविक विभट समझा है। सत्ताधारियों ने अपने शीघाण का आधार मनुष्य की वही आवश्यकता की बना रखा है। मूख व्यक्ति के समान टुकड़े के कर के उसे अपना नुताम बना लेते हैं और यहाँ से शीघाण का, कम का कम का सु ही जाता है।<sup>१</sup> लेकिन ‘फाँके पर फाँके’ करने वाले ‘मूख रहने वाले’ का ही सौन्दर्य अपनी मौलिक जरूरतों की पूर्ति के लिये संघर्षरत होने में है ---

“जब भी  
मूख से लड़ने  
कोई लड़ा ही जाता है  
सुन्दर बीतने लगता है।”<sup>२</sup>

यहाँ कवि ने सौन्दर्य बोध की भी नये वाक्याम दे दिये हैं। यहाँ ‘सायक सम मायक नयन’ या ‘सिता ही ज्यों बिज्जी का फूल’ जैसा सौन्दर्य उपलब्ध नहीं होता, काज के इस मानववादी कवि ने रीटी के लिये नुकते हुए मूख मनुष्य में सौन्दर्य के कणों की पा लिया है। इस मानव के साध कवि की सम्पुक्ति उसकी यातना और समस्याओं के माध्यम से हुयी है। उसके बर्णों की

१- “वे मूख थे।

नैने टुकड़ा फेंका।

वे बाजार लौट

बापस में नुंग नये,

लहसुनान ही नये।”

कमल का बर्ण : पृ० ४४।

२- वही : पृ० ३५ ।

कवि सम्पूर्ण रूप से जानता और महसूस करता है ।<sup>१</sup>

मुक्त मनुष्य की प्राप्ति की वीह और गरीब वर्ग की प्रमुख समस्या है । कवि-वेद समाज का अभिज्ञाप है और तानाशाही राजनीति का । वे प्रमुख पाढ़ाये हैं जो शोणित वर्ग की तरह-तरह से टीकती हैं । इस समस्याओं और उनके समाधान के प्रस्तुतीकरण के द्वारा सर्वेश्वर अपनी सम्पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी और वात्सीयता के साथ मानवता की कटघरे में जा सहे होते हैं ।

( १ ) वैदियों की वस्वीकृति :-

व्यस के शोणित मानव की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वह जीवन के किसी क्षेत्र में स्वतन्त्र नहीं है । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, बौद्धिक तथा भावात्मक सभी स्तरों पर वह परतन्त्र है । सामाजिक विषंगतियाँ, पूँजीपति वर्ग तथा शोणिक सत्ता के बन्धनों में यह मानव कसा पड़ा है । कवि ने इन कसावों का अनुभव निजी तौर पर किया है ।<sup>२</sup>

१- " He is broken in every respect. All have deceived him in their own interest. He is fed-up with those in power and with political-parties. He has lost his faith in every body. High prices and poverty have ruined him....." Sarveshwar Dayal Saxena-South Asian Digest of Regional-Writing. P. 88.

2. " The emergency through which our country is passing and the manner, in which the established-order by means of bullets, lathis and tear-gas, is suppressing the dis-satisfaction of the uneducated masses weakened in body and spirit and in the clutches of caste, community and region-alism, have created a situation in which the writing of poetry



ये कैदियाँ कबि की कमी है वह: उनकी पीड़ा और स्तब्धता के लिये उसकी छपटावट गहराई तक छूँकती है। पूर्वापत्तियों और सत्ताधारियों की भक्कुरी करना उसकी शारीरिक परतन्त्रता है, अनकारत् नम के बाद प्रताड़नाओं और जड़यन्त्रों से पिंजना तथा पैसे-पैसे के लिये तरसना उसकी मानसिक नियति है। ये कैदियाँ केवल शारीरिक स्तर तक ही सीमित नहीं हैं, उसका दित, दिमाग, विवेक, भावनाएं सभी कुछ यहाँ तक कि उसका पूरा अस्तित्व दूसरों की धरोहर है —

" The mind of the common man, who is a product of the established-order, a product of the misrule of democracy and the <sup>(constitution)</sup> constitution, is laid bare layer by layer. "

ये सर्वेश्वर का मानव प्रेम ही है कि वे किसी भी तरह की वास्तव से मानव-भुक्ति की कामना करते हैं। 'जगत का दर्द' में उन कबीरों की तौड़ने की वाकान्ता और प्रयत्न सबल मिलती हैं। संतों की पहली कविता 'जिनी ठंड है' में उन कवियों की चरम अवस्था मिलती है। मनुष्य केवल हंसने के लिये ही पराधीन नहीं है वह अपनी हल्का से री भी नहीं सकता, अपनी पीड़ाओं की तेज़र कुछ कह भी नहीं सकता, धिक् पीट-पीटकर अपनी जिम्हरी नर्क कर देना उसकी नियति है। परतन्त्रता ने मनुष्य की कर्ष की तरह बना

---

1- Sarveshwar Dayal Saxena- South Asian Digest of Regional Writing, P. 88.

दिया है , उसे एकदम बेतनाहूँय कर दिया है --

“ कितनी ठंड है  
क्योंतों पर ठुलै बांधू  
जम गये ।

कितनी ठंड है  
हृदय कंठ में ही  
कफ ही गये । ” १

सब और से इस प्रकार जकड़ा हुआ मनुष्य जीने और मरने के बीच की स्थिति में त्रिशूल की तरह लटका हुआ है ।<sup>२</sup> ऐसी मरणशील स्थिति में पड़ा हुआ मानव अपनी ही शक्तियों की पहचानने में असमर्थ है , स्वयं लाग होकर भी उसकी वास्तवता से वह अपरिचित है । छाँकों ने उसे जकड़ती अपनी शक्तियों से अपरिचित रखा जिससे वह उस लाग से श्रान्ति की मशाल न जला सके । सर्वेकार व्यक्ति के लिये अपनी ' निजता की पहचान ' की प्राथमिकता होती है। अन्तर्धारियों ने उसे ' गया ' बना कर रखा हुआ है पर वास्तविकता इसके विपरीत है -----

“ समय का गया है  
जब हमें बाक़ी और गयेना  
रिस्ता समझाना होता ।

१- कल का दर्द : पृ० ६ ।

२- “ बांध का बाक़ी भी एक हाथ कई तनावों की झेलता हुआ जाता है।  
बाँटकर्यों कहें कि तनावों के बीच न जीता है न मरता है , मरने की प्रक्रिया में होता है । ”

डा० रामचन्द्र राय - नयी कविता उद्गम और विकास : पृ० २४० ।

इन्हें जाननी होनी का बख्तास भ्राना होना  
और उनकी मया होनी का । ..<sup>१</sup>

जब समाज का एक काँ बनेतिक जन्मनों में जड़ता हुआ हो तब उसकी स्वतन्त्रता  
का फण्डा गाढ़ना साहित्यकार की नैतिक जिम्मेवारी है ----

“ बंद रास्ते पर  
दोड़ने की यातना जानते हुए भी  
दोड़ो ।  
+ + + +  
निर्धारित यातना  
और अर्जित सुन्तौण  
दोनों जब आपने-धामने सहे हो  
तब तुम कह नहीं रह जाओगे  
जिसे लिए रास्ता बंद था । ..<sup>२</sup>

जब का साहित्य उस मानव को निमित्त कर रहा है जो “..... निरंकुश  
स्वतन्त्रता का जन्म देना है जिसकी पाने या बनाये रखने के संग्राम में पराजित  
होने की अपेक्षा वीरों की मृत्यु मरना ही उसे बरणीय है । ..<sup>३</sup> परतन्त्र  
संविगत मानव को सर्वोत्तर ने धिंजों में बन्द लेकिन बाहर निजस्व की केशरह

१- जगत का दर्द : पृ० १५ ।

२- वही : पृ० २४ ।

३- श्री० नारायणन कुटिट - हिन्दी की नयी कविता : पृ० ६७ ।

कटपटाती हुई बिड़िया के रूप में देखा है —

“ फिर भी बिड़िया  
मुक्ति का गाना गायेगी  
मारि जाने की वाशुंका से मरे होने पर भी  
पिबड़े से जिना वग निकल सकेगा निकलेगी,  
छरछूँ और लगायेगी  
जोर पिबड़ा दूट जाने या सुल जाने पर उड़ जायेगी । ”<sup>१</sup>

बिड़िया की ‘ शारीरिक लज्जा ’ के द्वारा शोणित मानव की लज्जा की  
जोर सक्ति किया गया है ; लेकिन इस बिड़िया की कलकलतायें जोर प्रयत्न  
इस मानव की बिराहता के ल प्रतीक हैं ।

( ४ ) मानव-मविष्य के प्रति आस्था :-

“ मनुष्य ने यदि एक जोर पर संशय प्रयत्न कच्चाकों के लिये  
‘ झूठे ’ लड़े हैं तो झूठा जोर उसने छिटकर, मुसीबतों और स्टाति का  
अंधाया में भी रक्तपात करके देखा लिया है । मानव नियति में न तो झूठे  
परिणाम का लोको जोर न में कुछ । नियति का रूप स्वयं मनुष्य के आत्म -  
विरहास द्वारा निर्मित होना , उसकी इतिहास में अनगणित मनःस्थिति  
द्वारा होना , उस अन्तर्गत द्वारा होना जो लज्जा मानव के लज्जा परिलेख है  
उपलब्ध है । ”<sup>२</sup> ‘ अंत का बर्ष ’ में सचैरवार का दृष्टिकोण आशा और  
आस्था के युक्त है । बटित से बटित पीढ़ाएँ और समकालीन की उसकी आस्था  
की विवक्षित नहीं कर पाती बटित और अधिक तन कर लड़े ही की

१- अंत का बर्ष : पृ० ६० ।

२- डॉ० लक्ष्मीनारायण वर्मा - नवी कविता के प्रतिमान : पृ० १५५ ।

हिम्मत की है । 'पाव ही पाव बना निकले' <sup>१</sup> तथा 'तप रहा था पड़े  
बीते, पाव चुने, जायात बीते' में यातनाओं की चीट सा कर और अधिक  
सतर्क हो जाने के स्वर हैं । इस हिम्मत और शक्ति ने कवि को मानव-मविष्य  
के प्रति आशावादी बना दिया है -----

“उन चमकदार, सुन्दर, तारत जांतों में  
जी मविष्य की है ।” <sup>२</sup>

इस चमकदार मविष्य की पाने के लिये कविान में सूफ-बूफ से काम लेने की  
ज्जरत है । 'संकल्प से पहले, समझने की बात है' <sup>३</sup> लेकिन उससे भी अधिक  
आवश्यकता संगठित हो जाने की है । फिर निश्चय ही राह निकलेगी ऐसा  
कवि का पृढ़ विश्वास है ---

“विपत्ति में  
तुम कहेते नहीं हो  
असत्य सीते कुत्तुलाते हैं  
चट्टानों में  
बितकर एक पारा बनने की  
इसे पहचानी  
राह निकलेगी निश्चय ।” <sup>३</sup>

मविष्य के प्रति सर्वेस्वर की इस आस्था ने न केवल उनके साहित्य में प्राण  
पूँज दिये हैं बल्कि अगिरे में कराहते, दम तोड़ते मनुष्य की जीने के लिये नया

---

२- अंत का दर्द : पृ० ६५ ।

१- वही : पृ० १२१ ।

३- वही : पृ० ११ ।

रौंझी की है । मुक्तिबोध के शब्दों में " अस्तित्वहीन होती हुई भी मविध्य  
कामान की एक व्यर्थ प्रदान करता है -- इतिहास का यह एक विरोधाभास है।"  
इसीलिये सर्वेस्वर ने तड़सड़ाते हुए बीमार मविध्य में गिरने से अधिक संयत जाने  
की स्थिति को टटोला है --

“ कांपते घेरों पर  
कामान का कंधा पकड़  
तड़ा ही जाता है बीमार मविध्य  
और नये सिरे से चलता सीक्ता है ।  
तड़सड़ाना अक्षर गिरना नहीं  
संयतता भी होती है । ”<sup>२</sup>

कवि के लिये आवश्यक है कि वह कतिपय, कामान और मविध्य तीनों पर  
अपनी दृष्टि को टिकाये -- उनमें से किसी को भी वह अजरअन्धाय नहीं कर  
सकता । कामान में जो पाँच और बाक्रीस सर्वेस्वर में मिलता है वह कतिपय  
और कामान की मिली-जुली बाया है , साथ ही कवि बार-बार सौगित  
का भी मविध्य में भी काँफता है । “ कवि का जीवन आज में बस नहीं है,  
वह भिन्नत जीवी है ”<sup>३</sup> कहकर अलेख ने कवि में मविध्य को देख लेने की शक्ति  
को स्वीकारा है । ‘ कतिपय का दर्द ’ में सर्वेस्वर की मविध्य को बाँक लेने  
की दृष्टि सर्वत्र मिलती है । अपनी क उसी शक्ति के द्वारा कवि ने समाज के

१- नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान : पृ० २४२ के आधार पर ।

२- कतिपय का दर्द : पृ० ७४-७५ ।

३- अलेख - निरुद्ध - : पृ० ४० ।

माँ की इतिहास की पूरा पढ़ लिया है —

“ इतिहास के अंत में  
हर बार मेझिया माँ से निकाला जायेगा ।  
आका साख है, एक हीकर,  
महात्त तिर लड़ा हीना । ”<sup>१</sup>

मधिर्य की देत लेने के बाद ही कीई कवि क्षतने बूढ़ स्वरों में चीनणा कर  
सकता है — जाने वाले कल की -----

“ योहे दिन और, ”  
बादल छेने,  
कल के सिरमीर  
पेरी पटेने । ”<sup>२</sup>

( न ) प्रकृति-प्रेम :-  
-----

मानव और प्रकृति एक ही पिता ( कल ) की दो सन्तानें  
हैं । दोनों की सृष्टि के परिपार्य में कल की आत्म प्रसार की इच्छा निहित  
है । इसीवर होने के नाते दोनों का सम्बन्ध छूट है । इन्हें पुनः करके देना  
जीवन-समष्टि की वास्तविक सत्ता की अन्वीकारना है । ‘ चारों ओर के  
प्रकृति प्रसार की देकर मानव के हृदय में एक अनादि व चिर-निवृद्ध मुक्ति-  
तरिका प्रेम भावना उत्पन्न होती है ’<sup>१</sup> कहकर की रामेश्वरसत लण्डेत्मात

३- की रामेश्वर सत लण्डेत्मात - आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और  
हीन्यवर्ध : पृ० १२६ ।

१- जंगल की देर : पृ० ३१

२- वही, पृ० ६८

ये प्रेम के इस रूप को अनादि और अविनाशिक संज्ञाओं से युक्त करके कुछ रहस्यमय रूप दे दिया है। प्रकृति और मानव की उत्पत्ति का मूल स्रोत और कारण ही एक नहीं है बल्कि इस पृथ्वी पर जो वे एक दूसरे के सहभागी और सहचर हैं। सहजमन और साहचर्य के दौरान दोनों का पारस्परिक आकर्षण स्वाभाविक है। आकर्षण प्रेम उत्पत्ति का कारण है क्योंकि 'प्रकृति सम्बन्धी रति या प्रकृति प्रेम हमारे हृदय के रतिवृत्त का एक महत्वपूर्ण तण्ड है। इस प्रेम को वाणी देना सम्पूर्ण हृदय की पूर्णता को वाणी देने का एक अनिवार्य अंग है।' मानव जीवन में प्रकृति का महत्वपूर्ण भूमिका के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'प्रकृति रस' के नाम से एक नये रस की कल्पना की। वे मानते हैं कि 'जब दृश्य हमारे आँखों में आतम्बन हो तब इस रस के लिये कोई स्थान नहीं रहा कि प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में कौन सा रस है? जो जो पदार्थ किसी न किसी पदार्थ के आकर्षण हो सकते हैं उन सबका वर्णन रस के अन्तर्गत है क्योंकि कि भाव का ग्रहण ही रस के समान ही होता है।' प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत एक और पक्ष-पक्षियों के प्रति प्रेम की भावना आती है तो वृक्षों तरफ लता, फूल, उद्यान, नदी, ताताक, मैदान, पर्वत आदि प्राकृतिक उपादानों के प्रति आकर्षण की भावना समाहित है।

मानव और प्रकृति का साहचर्य जिसका प्राचीन है उसकी ही प्राचीन हमकी साहित्यिक-स्थिति है। दृष्टि के प्रारम्भ की भाँति साहित्य के भी प्रारम्भ से मानव और प्रकृति की सत्ता वर्तमान है। अनादि काल से मानव प्रकृति की नींव में झुका करता आया है क्योंकि प्राचीन साहित्य में प्रकृति को आतम्बन बना कर प्रेम की भरपूर व्यंजना हुयी है। जैसे-जैसे सभ्यता का

१- श्री रामेश्वरदास लण्डेस्वात - आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और

सौन्दर्य : पृ० १२६ ।

२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - रस नीमांश : पृ० २४२-२४३ व



प्रकृति का वह वैल्लास क्या, मानव प्रकृति से दूर होता गया । क्षमाजन महीना-  
 कुल की मान-बोझ, उसाड़-पसाड़ में गिरता, टूटता और लड़खड़ाता हुआ  
 मनुष्य प्रकृति की लज्जा मुला मुला है । उसका जानम्व केवल मानव जात तक  
 ही सीमित ही गया है । प्रकृति का जानम्व आज जगत की वस्तु है । वायु-  
 निक युग में जीवन के प्रत्येक क्षण में किसान के हावी ही जाने के कारण क्यापि  
 मानव और प्रकृति के सम्बन्ध बहुत कुछ बिखर चुके हैं फिर भी प्रकृति साहित्य-  
 -कारों के साकशात् का बिन्दु निरन्तर रहा है --- सिर्फ इस प्रेम के स्वरूप  
 में परिवर्तन आ गया है ।

सर्वेस्वर दयाल साधेना क्षमाजन युग के ऐसे कवियों में से हैं  
 जो किसान और प्रकृति दोनों के प्रभावों को एक साथ फेल रहे हैं । इनके  
 प्रथम काव्य संग्रह 'गाँव की घंटियाँ' से 'जंगल का दर्द' तक प्रकृति  
 निरन्तर इनके साथ बसी है । इस जागरूक कवि के लिये प्रकृति आवश्यक थी  
 है क्योंकि कि विविध प्राकृतिक उपादान मानव की सुखपूर्वक जैना को जानने में  
 पर्याप्त सहाय है ।<sup>१</sup>

सर्वेस्वर जी के काव्य में प्रकृति के विविध चित्र अत्यन्त  
 हैं । इनका एक एक संग्रह प्रकृति के अनेक रूपों का प्रस्तुतिकरण करता है ।  
 इनकी प्रकृति कभी मनुष्य से सुझकर बहती है तो कहीं अपना स्वतन्त्र अस्तित्व  
 बनाये रखती है, कहीं वह मानव की सलाहिली है कहीं अनुसालिली तो  
 कहीं कहीं मानव से एकदम असम्बन्धित थी --- अपने निजी वैशिष्ट्यवाली ।

१- "मानव जीवन के पुराने सहर बुझा लता, फाड़ण्डी पटपर, लम्बे मैदान  
 लहराती जतराहि, बगार् की कड़ी या कीड़ पातल या कीली पलु  
 हमारी सीढ़ें हूँ जैना को जानने में बहुत समर्थ है ।"

राजेश्वरदास लण्डेसवाल- वायुनिक हिन्दू कविता में प्रेम और सीमन्तः

'काठ की घंटियाँ' से 'जंगल का बर्द' तक का यात्रा में प्रकृति हर मोड़ पर सहो है। इनका प्रारंभिक साहित्य रोमांचो मावाहुता के घेरों में जागृत था लेकिन रूने: रूने: उनका सबिदमशील मन युग की नब्ब की टटोल्ता हुआ उस बिन्दु पर पहुँच गया जहाँ माहुता योगी पहुँच जाती है और बाँदिलता के घेरे व्यक्ति-मन की समाज के साथ जोड़ देते हैं। इस बाँदिलता का परिणाम यह हुआ कि 'काठ की घंटियाँ' का प्रकृति-प्रेमी जो प्रकृति की लपने विल की गहराइयों में बसा कर उसके चित्र उकेरा करता था वही 'कुलानी नदी' और 'जंगल का बर्द' में मानववाद का चरमा बढ़ाकर प्रकृति का निरीक्षण करता है। प्रकृति उसे लाकणित करती है लेकिन उससे भी अधिक जाज का शीणित मानव कवि की अपनी तरफ लौट लेता है -- 'सुन्दर है विला सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम्' की तरह। यही कवि किसी समय प्रकृति प्रेम के प्रवाह में ऐसा बह गया था कि सामान्य प्रगति के उस मोड़ की सूचीकार नहीं कर सका जिसके कारण गाँव की किसी कच्ची सड़क की पक्का कर दिया गया है। यहाँ वह मूल नया है कि सड़क का पक्का हो जाना ग्राभीण जक्ता के विल में है। यहाँ प्रकृति के प्रति प्रेम मानव हितों से अधिक महत्वपूर्ण है।

१- " अब वह कहाँ गया ?

जिसने कहा उसे पक्की सड़क में बसत दो ,

उसकी हाँसी बेसीस कर दो

रूपाह कर दो यह कैलर्भिक कटा

चिबेती तारकीत से ; "

कवितारण - १ : पृ० २१८-२१९ क

'काल का दर्द' का कवि इस प्रकार के भावार्थों से बाधित नहीं है। यहाँ उसने प्रकृति और प्रकृति के महत्त्वों को समसामयिकता के अनुरूप बात किया है। उसके लिये मानव हित और प्रकृति प्रेम से भी ऊपर है। प्रकृति की स्वतन्त्र रूप से देखने की उसे फुसल ही नहीं है, प्रकृति प्रेम के बीच उसका समाज जाड़े का गया है।

'काल का दर्द' का प्रकृति-प्रेमी जीवन की ऐसी 'विसंगतियों' से घिरा हुआ है कि प्रकृति के करीब पहुँच ही नहीं पाता। अपने समाज में वह जिन 'विहम्बनाओं', 'दुःख-दर्दों', 'विसंगतियों' को देखता है वे उसे प्रकृति से बहुत दूर ले जाती हैं। जीवन के प्रत्येक क्षण में वह उन सामाजिक 'विहम्बनाओं' से उबरने की कोशिश में लगा हुआ है। काल : ऐसे में वह जीवन से, समाज से, पलायन करके प्रकृति से कैसे जुड़ सकता है? इसी लिये इस संग्रह की कोई भी कविता ऐसी नहीं है जिसमें स्वतन्त्र रूप में प्रकृति की चित्रित किया गया हो। यहाँ समाज-मानव प्रकृति से भी ऊपर उठ गया है। इसी लिये जहाँ एक ओर यह संग्रह प्रकृति से दूर जा पड़ा है वहीं उनके पूर्वजों संग्रहों से भी अलग छिटक जाता है।

इस सबके बावजूद 'काल का दर्द' में प्रकृति पूरी तरह अनुपस्थित नहीं है। सर्वोपर की जब भी काव्य प्रतीकों की आवश्यकता हुआ वे चुनचाप प्रकृति के कुछ उपादान उठा लाये और उन्हें अपनेकाव्य में स्थापित कर दिया।

ये प्राकृतिक - प्रतीक दो प्रकार के हैं :-

- ( 1 ) जैन प्रकृति से गृहीत प्रतीक ।
- ( 11 ) बड़ प्रकृति से गृहीत प्रतीक ।

कैतन प्रकृति से कुछ प्रसृत प्रतीक — मेड़िया, तेन्दुआ, साँप, कुत्ता, चीता, तितली, बिड़िया, तोता आदि चुने गये हैं।

मेड़िया, तेन्दुआ और साँप — समाज के शीशक वर्ग के प्रतीक हैं। मेड़िया अपनी हिंसात्मक और बर्बर प्रवृत्ति के कारण तथा तेन्दुआ अपनी कानियागिरी और घुसघुसेमन के कारण शीशक वर्ग के करीब जा पड़ते हैं। 'मेड़िया मुराता है' और 'मेड़िये की आँखें सुत हैं' — इन वाक्यांशों के द्वारा शीशकों की बर्बरता को सामने रखा है—ताँ 'चट्टानों पर, भिंफौड़ रहा है, अपना शिकार, काता तेन्दुआ' कहकर इस वर्ग की हिंसक प्रवृत्ति को और उल्लेख किया है। 'साँप' उस झूजीपति का प्रतीक है जो मजदूर वर्ग को छाने के लिये प्रतिपादण अपना फन उठाये रहता है। 'रंगता साँप' तथा 'सर्प' : चार स्थितियाँ 'में इस प्रतीक को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है। 'कुत्ता' इन मेड़ियों, तेन्दुओं के सामने दुम हिलाने वाली चाटुकार प्रजा का प्रतीक है। यह समाज के उस वर्ग को प्रस्तुत करता है जो चौड़े से रौंटी के टुकड़ों के लिये अपने सम्पूर्ण चरित्र की बेन कर शीशक वर्ग के पट्टे में बंधा हुआ, उसका श्रितवास है। शीशक वर्ग के सामने इन चाटुकारों का व्यवहार ठीक वैसा ही है वैसा कुत्तों का रौंटी डालने बातों के प्रति होता है +-----

'' जब हर बेहरा

हाफता, सार टपकाता

नबर बाये,

पुनकारते हो

दुम हिलाये,

कुत्तारते हो पैट बिजाये,

सारा माहौल फुँडवाने से भर जाये । ''

साहित्यिक स्तर पर ये स्थितियाँ हूँ तो वे सम्बन्ध लगती हैं लेकिन अपनी व्यक्तित्वता रखते एकदम पृथक्, सत्ता के बापसुओं से जुड़ जाती है। 'बांध का पृष्ठ' और 'एक सुनी नाव' को बना करती हूँ डा० हरिवरण शर्मा ने उनसे कभी मुलाकात की और समित किया — "..... प्रकृति विनाशक ने बहाने ही सही कवि ने अपनी अनुभूत स्थितियों को सम्बन्ध किया है। कई बार यह भी लगता है कि ये प्रकृतिवाक शीर्षक विषय नहीं हैं बल्कि अपनी अनुभूतियों को सम्बोधित करने के 'मिडिया' में हैं। ऊपर से ये कविता के विषय लग सकते हैं या गहराई से देखें तो तीर दूसरे निशाने पर भी लगता है।"

पदों- का में से कवि ने लिखिया और तीरों के प्रतीकों को लिया है। 'मुक्ति का आकाश' कविता में लिखिया अपनी निराशा और समुद्र के कारण समुद्र मानव की स्थानापन्न है। उस मानव की जो अपनी समुद्र में भी धिराट है, कल्प सन्निवृत्त वाता लोंते हुये भी जो मुक्तिवादी है।<sup>१</sup> 'नीला लिखिया' कविता में यह लिखिया नायिका की बातों से प्रकट होने वाले प्रेम-सन्निवृत्तों का प्रतीक है जो कवि-प्रेम के अवसरों पर से शब्दों को बाने की तरह चुन लेता है।

१- डा० हरिवरण शर्मा - नयी कविता : नये घरातल : पृ० ३३१ ।

२- फिर भी लिखिया

मुक्ति का नाना नायिका

+ + +

हरष और लायिका

और लिखिया टूट जाने या सुत जाने पर उड़ जायेगी। "

काल का रस : पृ० ६० ।

३- " तुम्हारी बातों से उड़ी

नीला लिखिया

मेरी सुनी अवसरों पर बैठ जाती है

— सम्बन्ध चुनने लगती है । "

काल का रस : पृ० ८६ ।

इसी प्रकार कुंभीन-झीड़ाओं में रस नायक की हरी-मरी काढ़ियों से ज्वना  
 तरंग रमने वाले मैमों के रूप में<sup>१</sup> तथा प्रेम-प्रबंधिका नायिका की सितली  
 के रूप में देखा है।<sup>२</sup>

‘जगत का दर्द’ में जगतन प्रकृति से लिये गये प्रतीकों का  
 संख्या अधिक है। कुछ प्रमुख प्रतीक फूल, पेड़, घृत, बादल, ज्ञान, मशाल,  
 छाया, रात, लक्ष्मी, पत्तों कादि हैं।

फूल शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। ‘ज्ञान’  
 कविता में ये फूल मानव मन की भावनाओं का प्रतीक हैं। कवि ने फूल के  
 परम्परागत रूप को नकार दिया है। यह किसी नायिका के कोमल चेहरे के  
 लिये प्रयुक्त नहीं हुआ है बल्कि मानव मन की कोमल भावनाओं के रूप में लाया  
 है। इस की आवश्यकता है कि फूल जैसे कोमल भावों की जाग में बदल दिया  
 जाये।<sup>३</sup> प्रेम के क्षेत्र में ये फूल उस नायक का प्रतीक हैं जिसे उसकी प्रबंधिका  
 नायिका ने पराग फुलकर निरिह अवस्था में छोड़ दिया है। ‘सितली ने कहा,’  
 फूल से’ में फूल का यही रूप सामने लाया है।<sup>४</sup> ‘जहें’ कविता में पेड़

१- जगत का दर्द : पृ० ११३ ।

२- वही : पृ० ११८ ।

३- “मैंने उसे फूल दिया

उसने उसे ज्ञान में बदल दिया ।

सुखि पयल कर रीझी मन नया

जीर कोमलता ने

मेरे चेहरे पर फूल दिया ।”

जगत का दर्द : पृ० १४ ।

४- वही : पृ० ११८ ।

हवा, और उन्हें ये तीन प्रतीक एक साथ जाये है —

“ वहसी हवाओं में सड़ा पेड़  
तालियाँ बजाता है  
ज्यों कि उसकी जड़ें  
घरती में बहुत गहरी हैं । ”<sup>१</sup>

वहसी हवायें शौचान्न सत्ता की प्रतीक हैं, पेड़ वह मानव है जिसकी जड़ें घरती में गहरी हैं क्योंकि जिसकी मूल भावना मार्क्सवाद तथा मार्क्सवाद की तरह की किसी अन्य क्रान्तिकारी विचारधारा से जुड़ी हुयी है। मार्क्सवादी विचारों तथा क्रान्ति के मत पर यह मानव वहसी हवाओं के समान वृक्षायुक्त सड़ा है। ‘रात’<sup>२</sup> और ‘बादल’<sup>३</sup> शब्द अपने पारम्परिक रूप में निराशा और अवसाद के प्रतीक हैं। ‘धूल’ समाज के उपेक्षित वर्ग की प्रतीक है। कवि ने धूल की कविता के साथ जोड़कर शौचान्न मानव के क्रान्तिकारी रूप की सामने रखा है।<sup>४</sup>

१- अंत का दर्द : पृ० २५ ।

२- “ दर्द के जाने हुए छेने खोटे

रात में पहणों पर ली रही है , ”

अंत का दर्द : पृ० ११६ ।

३- “ लोहे दिन और....

बादल छंटेने , ”

अंत का दर्द : पृ० ६८ ।

४- “ लुप्त धूल ली

पैरों के नीचे लुप्त धूल

धूल के पित्त काजी । ”

वही : पृ० ३८ ।

इसके अतिरिक्त 'जंत' के प्रतीक हैं — वेद, पूत, पशु, पशु, पूत, बांधी, रात, बाइत बादि सभी प्रतीक सिगट बांधे हैं। वेद, पूत बादि प्रतीकों की कवि मानव-समाज के विभिन्न वर्गों - उपानों के लिये लाया है जत : जंत क अपनी समग्रता में मानव समाज का चोतक है जहां पूत की है और बाइत की, मेढिये- तेंदुर और साँप की तथा पूतें तार टपकाते कुत्ते की।

'जंत' शब्द दयार्थक है। प्रथम तण्ड का जंत व्यक्त का बाह्य परिवेश है जिसमें अव्यक्तता, कमेव, शीघण, पीड़ाएँ और समस्याएँ हैं। दूसरी तण्ड का जंत मानव के मन से सम्बद्ध है जिसमें बाह्य-जंत से उत्पन्न दर्द, टीस, संवास और निराशा हैं ---

“ जिसी पीले पत्तों पर पग-बापक  
निरादर्य एकान्त की भी  
इस जंत के दर्द की  
हल्काकर देता है । ” १

इस प्रकार प्रकृति का प्रतीक-रूप में विभण सर्वेश्वर के प्रकृति-प्रेम का पर्याय ती है ही साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि उनका यह प्रेम मानव-जीवन के संबंधों में ही साफ़ हुआ है। अपनी मानव-प्रेमी भावनाओं की अभिव्यक्ति की सुकता और कलात्मकता देने के लिये ही वे प्रकृति के दोन में उतरे हैं।

प्रकृति का मानवीकरण ती शायदादी कविता में भी प्रचुरता से मिल जायेगा पर सर्वेश्वर के उसका आधार बनाया है कलणा, विवशता, अथाभाव, याचिका अथवा साधारण-जीविका की, जो हिन्दी कविता के विचार से सुनियादी तीर पर आधुनिक स्थितियाँ हैं। ” २

१- जंत का दर्द : पृ० ७६-८० ।

२- कविता कुमार - कविता का आधार : पृ० १४६ ।



प्रकृतिचित्रण के वास्तव्य, उद्दीपन, उपदेशात्मक आदि परम्परागत रूपों की कवि ने माध्यम नहीं बनाया है। प्रतीक-कवय की यद्यपि पारम्परिक रूप है लेकिन कवि यहाँ नवीनता के आग्रह से मुक्त नहीं हो सका है। सभी परम्परा-गत प्रतीकों का नयी बानगी के साथ प्रस्तुतीकरण उन्हें परम्परा-मुक्त कर देता है। कुछ प्रतीक रात, वादल, धीरा आदि परम्परागत हैं लेकिन इन प्रतीकों ने अपनी सार्वभौमता और सारवर्भिता के कारण कवि के अन्तर्बाह्य जीतों के घटनाव और उत्कर्षाव को हल्का हो किया है।

(घ) राष्ट्र-प्रेम :-

XXXXXXXXXXXX

राष्ट्र-प्रेम की भावना अत्यन्त व्यापक भावना है। जब मनुष्य 'स्व' की सीमाओं की लघुकर 'विरुद्ध' में तीन होना चाहता है तो उसमें राष्ट्र-प्रेम की भावना जागृत होती है। देश-प्रेम वास्तुतः अनेक प्रकार के प्रेम भावों जैसे जन्म भूमि प्रेम, प्रकृति प्रेम, मानव प्रेम, निजी सम्पत्ति और संस्कृति से प्रेम आदि की संगठित अनुभूति है। इन सभी से प्रेम करने पर देश-प्रेम पूर्णता की प्राप्ति होता है। मेरझूत ने बड़ी हिचकिचाहट के साथ राष्ट्र-प्रेम को प्रेम की कोटि में रखा क्योंकि अन्ततः यह दुःखनात्मक, आत्मविश्वास का विकसित रूप और अनेक लोगों की कर्तादारी से युक्त है -----

" In the patriotic sentiment, the protective impulse and tender emotion may play so subordinate a part that it hardly can be called love. Yet, even then, patriotism is a potent factor; because it is a form of extended

self-regard, and because it is in some sense a synthesis of all a man's loyalties to lesser groups -- the crown of a system of group sentiments, all of which contribute something of their strength to this sentiment for the major object."<sup>1</sup>

काचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस सारी लिक्विडाइट का निराकरण करते हुए राष्ट्र-प्रेम की प्रेम की क्रांति में स्थापित करते हैं।<sup>2</sup> श्री प्रभाकर श्रीधर ने मानव-दृष्टि के साथ देश-प्रेम की मायनाओं का पविष्ट सम्बन्ध माना है।

<sup>1</sup>- William M. C. Dugall--An Outline of Psychology, P. 433.  
<sup>2</sup>- "देश-प्रेम है क्या ? प्रेम ही तो है। इस प्रेम की वास्तविकता यही है।"

सारा देश लगाते मनुष्य, पशु, पक्षि, मत्स्य, मृग, पक्षी, वन-संसार का प्रेम। यह प्रेम किस प्रकार का है ? यह सार्वजनिक प्रेम है। जिसके बीच हम रहते हैं, जिन्हें बराबर बातें हो देती हैं, जिसके बातें सुनी हैं, जिसका हमारा हर पक्ष का साथ रहता है, सारा यह है कि जिसके सामर्थ्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है उसके प्रति लीन या राम ही जाता है।"

रामचन्द्र शुक्ल - रत्न बीनाशा : पृ० ६५१ ।

१- "पर, ग्राम व प्रान्त आदि का प्रेम भी देश-प्रेम का ही है। इस प्रेम का हमारे सामान्य दृष्टि के साथ पविष्ट सम्बन्ध है, जो : राज्य में भी स्थान बहुत महत्व है।"

प्रभाकर श्रीधर - प्रवाद का साहित्य : प्रेम साहित्य दृष्टि : पृ० ।

प्रेम का सम्बन्ध मावनाओं के साथ है। अन्य राष्ट्रों की जैसा भारत में मावना का आवेग अधिक है वह : चाहे वह प्रकृति ही या मानव, राष्ट्र ही या प्रणय दोन, भारतवासी अधिक गहराई और अधिक व्यापकता के साथ प्रत्येक दोन में उतरी है। यहाँ यदि पन्तसिंह, लाजपत, सुभाषचन्द्र-जैसा तथा अन्य प्रकाश नारायण जैसे राष्ट्र प्रेमी हैं तो कूबरी और हीर-रामिका और लैला-मजनू जैसे प्रणयी - युक्त हैं, यदि पन्त जैसा प्रकृति प्रेमी है तो गान्धी जैसा मानव प्रेमी भी इस राष्ट्र की सम्पत्ति है।

साहित्य में राष्ट्र प्रेम की भावना बहुत प्राचीन ज्ञात है। प्राचीन साहित्य में इस भावना की महज एक काव्य प्रकृति के रूप में व्यक्तता पायी गयी है। वे कवि राष्ट्र प्रेम के बीज बोकर अपने प्रेम का प्रमाण देना चाहते थे तथा राष्ट्र कवि के वासन पर वासीन होना चाहते थे। उनके प्रेम में अनुसूचित समाज नहीं था, केवल उपरी विभागा था। इसीलिये उन्होंने राष्ट्र की महिमा के बीज बो दिये हैं लेकिन राष्ट्र की स्थिति-परिस्थिति और आवश्यकताओं से वे बाँधे बंधे रहे हैं।

काव्य का कवि 'भारत देश महान है, सब रत्नों का भान है' जैसा गौरव महिमा नाम नहीं करता। वह अपने राष्ट्र की समस्याओं को देखता है, पहचानता है, उनसे झूझता है और उन समस्याओं को दूर करने के लिये तथा अपने राष्ट्र की उन्नति के लिये निरन्तर चिन्तित रहता है।

'कल का दर्द' भारतीय मानव और मानव समाज के दर्द का काव्य है। कवि मानव और समाज के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र से झूझना चाहता है। यहाँ वह स्व की सीमाओं से निरन्तर समाज में घुस गया है। वह हर तरफ एक नयी सामाजिक पैदावा के ता रहा है, पैदावा की एक समाज की कूबरी समाज में फैली हुई है राष्ट्र की उन्नति में बाधक होनी। वह समाज की सुधारना चाहता है क्योंकि वह जानता है

कि समाज के उत्थान में सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति और प्रगति समाहित है। यहाँ सर्वोपर का कवि सर्वत्र कुछ सामाजिक समस्याओं को पकड़े हुये है। उसकी दृष्टि में समाज की सबसे घातक समस्या कर्म-भेद की है। तार्किक वाधार पर समाज का विभाजन समाज को कमजोर बनाता है और कमजोर समाज राष्ट्र के पतन का कारण है। दूसरी समस्या शोषण की है। कर्म-भेद के कारण समाज में शोषण का क्रम लगातार चलता रहता है। तात्पर्य सब कुछ ता है और कमजोर उल्लिखित से संतुष्ट होकर दर्द से मुँह छिपा ले, यह स्थिति कवि की बख्दास्त नहीं है।<sup>१</sup> अतः जब भी भूस से तड़ने के लिये कोई तन जाता है तो वह कवि को सुन्दर दीखने लगता है। इस कवि की ईमानदारी यह है कि यदि इसकी एक मुट्ठी में समस्या है तो दूसरी मुट्ठी में उस समस्या

---

१- 'जगत का दर्द : पृ० ४४ ।

२- "कषटता काज ,

फन उठाये साँध,

दी पैरों पर लड़ी

कांटों से नन्हीं पत्तियाँ लाती बकरी,

वही बाँव काढ़ियों में चक्का पीता,

हात पर उल्टा लटक

फन झुलता सीता,

या इन सबकी जगह

जावनी होता ।

जब भी

भूस से तड़ने

कोई लड़ा हो जाता है

सुन्दर दीखने लगता है । "

जगत का दर्द : पृ० ३६ ।

का समाधान भी है। यदियुक्त है तो उस युक्त के प्रति लड़ाई भी है, सीपण है तो उसे मिटाने के तरीके भी है। यही कवि 'कुआनी नदी' में बड़ा-बड़ा राष्ट्रीय - अन्तराष्ट्रीय समस्याओं (हरणाधीन समस्या, जम्बीरिया, बर्मा, युद्ध आदि) पर उभरी रहता है लेकिन इन समस्याओं का कोई सुलझाव बर्हा नहीं मिलता। एक समाधान, पगराव उसे सुझा भी है लेकिन वह स्वयं ही स्वीकार कर लेता है कि पगराव से कुछ नहीं होगा।<sup>१</sup> इन समस्याओं का कोई भी सामाजिक हल कवि नहीं ला सका है। 'जगत का बर्द' में कवि ने अधिक विवेक से काम लिया है। यहाँ उसने सीधे राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय समस्याओं को नहीं पकड़ा है, वह पहले समाज की समस्याओं को उठाता है और उनके समाधान का तरीका भी बता देता है। :---

“ सब उन की कीठियों का घेराव  
करने के लतावा लीर कोई चारा नहीं,  
क्या कहते हो ? ”<sup>२</sup>

कवि बताता है कि यदि मैदुये की काँसें सुई हैं तो तुम भी अपनी काँसें सुई करी<sup>३</sup> लेकिन यदि वह मुराली है तो उसके लिये महात्त उठाना बाँझा है।<sup>४</sup>

‘जगत का बर्द’ में सर्वेस्वर ने राष्ट्र का पारम्परिक प्रसक्ति-नाम नहीं किया है। उनका यह धैर्य ठीस और व्यापक जीवन पर

१- कुआनी नदी : पृ० ६० ।

२- जगत का बर्द : पृ० १७ ।

३- वही : पृ० २६ ।

४- वही : पृ० २८ ।

रिक्त है। उसका प्रेम ऐसा कल्याणकारी है कि राष्ट्र की समस्याओं से उसे रक्षकर उसकी रक्षा बोलता रहे। वह तो अपने और शानदार राष्ट्र प्रेम की तरह अपने देश की एक-एक कुराई को खींच कर धामने रक्ता है और साथ ही उन कुराईयों के निवारण के लिये सामूहिक-प्रयास करने की तत्पर है।

‘काल का दर्द’ कवि के समाज का दर्द है। कविने इस दर्द की समझा है, जाना है और उसके लिये समुचित दवा भी ढूँढा है। काल: समाज, समाज-मानव, प्रकृति आदि के प्रेम के द्वारा वह अपने राष्ट्र से सम्बन्धित: जुड़कर और उसकी समस्याओं के समाधान के लिये अपने आप को समर्पित करने अपनी नागरिकता का उचित प्रदेय राष्ट्र को प्रदान करता है।

कृता प्रकरण

उपसंसार

उपसंहार :

( अ ) ' ज्ञान का दर्प ' के मानववाद का अन्य धारणा :-

भुक्तिर्नाथ के अनुसार ' ज्ञान का केन्द्र व्यक्ति है , पर उही केन्द्र की उस विरह-ध्यापी करने की आवश्यकता है । ' मानववाद , जो अपने केन्द्र बिन्दु मानव की विरह ध्यापी करने के लिये सत्तु प्रवृत्त होता है , वही प्रकार की विचारधारा है । मानववादी विचारधारा के विविध रूप -- रैनेडा मानववाद, धार्मिक मानववाद, मानववादी मानववाद , अस्तित्ववादी मानववाद , नव मानववाद, लेमाण्ड का मानववाद, हिता का मानववाद आदि वर्णित - प्रचलित है । यह रूप वैभिन्न्य विद्वानों के ज्ञान-वैभिन्न्य का प्रतिफल है , जो पाठकों की पर्याप्त मतिपुन देकर मानववाद के स्वरूप की पूर्णता बनाता है । अतः उन सभी मैदा के पुस्त में कुछ सामान्य तत्त्व मिलते हैं -- मानव- केन्द्रता , अंध-अस्वीकार, मानवीय-वस्तुवादी और पीछावादी का उन्मुख तथा विरह-मानव की सामाजिक , राजनीतिक , धार्मिक , बौद्धिक और भावात्मक- स्वाभ्यन्ता प्रदान करना आदि कुछ वही प्रकार के सामान्य तत्व हैं ।

मानवीय- वस्तुवादी और उन्ही भुक्ति के प्रयास ' ज्ञान का दर्प ' का उपवीज्य है । अतः : वह अंध का परावर्तन निरुद्धित मानववादी है । सर्वेश्वर की कविता में वहाँ एक और निजी दुः- दुः की अभिव्यक्ति मिलती



है वहीं कुबरी और जान के बाह्य स्पर्शका सुझाव बिना भी किया गया है, जब: उनके काव्य की इन दोनों दृष्टियों से परखा हो जायित था। सर्वेश्वर ने अपने समाज के लोक चिन्तकतीय बिना प्रस्तुत किये हैं तथा उनकी समस्याओं और चिन्तितियों की उभारा है। बाह्य शोचण और कर्म केर का समस्याओं के विस्तार से बिना और शोचित मानव के प्रति उनका शिर्ष्योपेक्षक स्टाट्यूट उन्हें मानसवादी मानववाद से जोड़ता है। व्यक्तवा - शिरीष, सर्वहारा की पदाधारता, रक्त-क्रान्ति, धर्म - निषेध तथा कर्म-वेगम्य कर्मादि 'कर्म का दर्द' में मानसवादी मानववाद का आधार बने हैं। कामान युग की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्याओं से 'कर्म का दर्द' का कवि जुड़ा है साथ ही इन समस्याओं के समाधान के लिये उसने सबसे अधिक उत्तेजक और शीघ्र प्रभावक मार्ग (मानसवादी रक्त-क्रान्ति का मार्ग) पकड़ा है। कवि क्रान्ति की आवश्यकता की बहुत पहले से मन्सुख कर रहा था। 'गर्म हवाएं', 'एक सुनी नाव' तथा 'सुनानी नदी' में के सुनी स्थितियाँ मिलती हैं जो इस क्रान्ति के लिये उत्तरदायी हैं। लेकिन कवि की किसीही आत्मा परा वन्सुख, भ्रष्टास, सत्तवार या लाठी---- कीड़ों की सत्तन नहीं उठा सकी है। यहाँ वह सिर्फ 'व्यंग्यपूर्ण' शब्दों की मार करता रहा है। व्यंग्याधिनय की स्थिति में कभी-कभी कवि के किसीही स्वर कल्पष्ट से लगने लगते हैं। 'सुनानी नदी' में इस कल्पष्टता की जाट कर सर्वेश्वर ने शोचण का है -- 'कभी टाँके मार से, टिप्पणी नहीं उबड़ जाती है, शीघ्र और मन्सुख सीनी चाहिए .....।' यहाँ कवि यह आवश्यकता ही अनुभव करके रह गया है कि शीघ्र और मन्सुख सीनी चाहिए। 'सुनानी नदी' जारी के निशान तक पहुँचकर रह गई है,

उस निशान की पार नहीं कर सकी है । इस निशान की पार कर जाने की स्थिति 'जगत का दर्द' में भिन्नी है । इस संग्रह की पहली कविता में ही उसकी स्मृतियाँ जान की तरह घपक रही हैं । ये जान क्रान्ति की जान है जिसे जान से कई वर्ग पूर्व मानव और स्नेह सुलाना नये थे । इस जान की वर्तमान युग की आवश्यकता के रूप में उठा लेना अपेक्षित था । सर्वेस्वर ने इस आवश्यकता की समझा और अपनाया है ।

वर्तमान संदर्भों में समाज के कमजोर और पीड़ित मानव के साथ सम्पृक्त रहने वाले के लिये मार्क्सवाद की अपनाना आवश्यक ही जाता है । शीघ्रता के दबाव की देखी हुए सत्य, प्रेम या अहिंसा का मार्ग यहाँ कारगर नहीं ही सकता । इसके लिये तो शीघ्रता-का की बहाल उठानी होगी और इस का के साथ सच्ची सहानुभूति रखने वाले कवि को अपनी कतम की मशाल बनाना हीना । कुछ तीन कविता ही आर्थिक या राजनीतिक लड़ाई का हथियार न मानकर आदमी की भीतरी जरूरत मानने के पक्ष में ही सकते हैं किन्तु यह भी सत्य है कि जिस प्रकार बीरनाथ काल में कविता सुझाए तथा सुदूरत राजाओं के लिये प्रेरणा-शक्ति दी जैसे ही जान समाज में शीघ्रता के तिलाफ की माँबाँव्दी चल रही है उल्लेख वर्तमान साहित्य प्रेरणा-शक्ति तथा दिशा-निर्देश के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है । आर्थिक-शीघ्रता और का-वेण्य से मुक्त समाज के नव-निर्माण के लिये मार्क्सवादी विचारधारा का अनुसरण करके सर्वेस्वर ने न केवल स्वयं सम्पृक्त मार्ग चुना है बल्कि अपनी स्थिति की निर्यात मानकर व्यापारों की निर्धारीय रूप से चलने वाली मानव - जति की एक नये पथ का आसक्ति दिया है ।

मार्क्सवादी - क्रान्ति के लिए प्रेरणा देने, उचित मार्ग तथा साधनानियों का निर्देश करने तक ही कवि की स्थिति बहुत साहित्य और

जानकर रही है। उसके बाद सर्वशरार्थ के प्रति अपने स्वर्ण की पीणणा-  
 कवि ने 'समर्पित एक ग्रामि की' के रूप में की है और यहाँ पहुँच कर  
 उसके साथ एक मायात्मक उदात्त बनकर रह जाती है। 'जान लाने' या  
 'महात्त उठाने' की स्थिति जाने पर वह समाज से विमुख तथा आत्मा-  
 चुरकत हो जाता है। वही आत्म-रति की कह से उसकी ग्रामि सन्नित्यता  
 के स्तर पर नहीं पहुँच पाती। फिर भी उनकी इस साहित्य-ग्रामि की  
 सार्थकता की पूरी तरह अवबोधन नहीं किया जा सकता।

सर्वेश्वर युग और व्यक्ति के संदर्भ में बाह्य एवं आन्तरिक  
 दोनों प्रकार के परिवर्तनों के प्रति सज्ज है। व्यक्ति के निजी सुत - दुःख  
 और उसकी निजी मानसिक-मायात्मक अनुभूतियों की उन्होंने पैनी दृष्टि  
 से देखा है। गटित और अनुभूत परिवेश की देन के रूप में अजनबीपन,  
 अज्ञेतापन, आत्मपरायापन, व्यर्थता आदि अनुभवों की उन्होंने का व्यात्मक  
 रूप दिया है। सामाजिक स्थितियों और वज्रों के बीच टूटी, सत्तम  
 होती जाय के व्यक्त के अनुभव ही 'जगत का दर्द' के कवि में निराशा,  
 अवसाद, अज्ञप्ति आदि मनः-स्थितियाँ पर्याप्त रूप में मिलती हैं। देखे  
 ताँ ये विशिष्ट मनः स्थितियाँ कवि की अस्तित्ववादी बनाती हैं किन्तु  
 कुछ नहीदेखने पर कवि की अपनी, निजी जीवन-दृष्टि उसे अस्तित्ववादी  
 चिन्तनपथारा से अलग करती दिखाई देती है। सर्वेश्वर निराशा, घुटन  
 आदि स्थितियों की अपना भाग्य मानकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे नहीं  
 रहते बल्कि यहाँ उनका कवि परम्परागत अस्तित्ववादी पारणाओं से  
 अलग हो पड़ता है। अस्तित्ववादी चिन्तनों की तरह वह मृत्यु, घुटन आदि  
 की स्थितियों की वरणिय नहीं मानता अपितु उन परिस्थितियों में वह  
 कर्म और स्वर्ण से जुड़ जाता है। जोड़ की दर्द, पाहे वह उसके समाज की  
 देन ही या उसकी किसी वैयक्तिक - कमजोरी से उत्पन्न ही— उस दर्द की

फट्टे रहकर बिहुरते रहने में वह अपनी साधकता नहीं समझता बल्कि उन  
बुराई की काटकर जाने बढ़ जाने से ही उसका अस्तित्व प्रमाणित और साधक  
होता है ।

सर्वेश्वर की व्यक्ति-परक कविताओं में दुर्नयन और अनैतन की  
अनुरूप विषयान ताँ है पर वे दुःख और शोक के स्थान पर ,उन परिस्थितियों  
से उबरने के लिये अवैदित एक विशेष प्रकार की प्रेरक-शक्ति अपने में छिपे है ।

कवि की मानवताकी प्रेम - माका ' कृत का दर्द ' में बहुत  
स्पष्ट है । इस प्रेम - माका के चार पदा मिलती हैं - प्रणय माका ,  
मानव प्रेम , प्रकृति प्रेम तथा राष्ट्र प्रेम ।

संग्रह में उपलब्ध प्रणय- अनुप्रतियाँ दाम्पत्येतर-सम्बन्धों पर  
आधारित हैं । इन प्रणय अनुप्रतियों की देखते हुए कवि ' घर में पत्नी, बाहर  
प्रेयसी ( जेनेन्द्र ) का समर्थन करने लाता है । दाम्पत्येतर सम्बन्धों की वह  
अनैतिक नहीं मानता तथा विरह , संयौन और संयौन की स्थितियों से समान  
रूप से गुजरता है । उसका विरह रीति - कसम की और आलाप- प्रताप से युक्त  
कीरी माकुत्ता का गुबार नहीं है बल्कि अपने दुर्गों की समाज से हिमाकर  
हुड होकरवास्त करने की समझ से युक्त एक बुद्धिजीवी का विरह है । अपनी  
चोड़ाओं की चुपचाप सहन करने में मार्किता और माकुत्ता पर्याप्त मात्रा  
में है लेकिन अर्थ की ऊँचा और अतिशयोक्ति से वह बचा रहा है , अपने  
दुर्गों की बढ़ा- बढ़ाकर समाज की आत्माही छूटने की इच्छा उसमें नहीं है ।

अपनी दुःख स्थितियों की सर्वेश्वर ने वैयक्तिक स्तर पर कैला  
है पर संयौन के निजी आनन्दों की वह हिंसा अपने तक सीमित नहीं रख  
सका है । कवि ने अपनी एक - एक अनुप्रति की सम्पाद और ध्यानवारी  
के साथ कहीं का त्यों समाज के सामने रख दिया है -- चाहे वह पाद- पाद

बैठकर आन्तरिक सम्बन्धनों को मजबूत करने की अनुमति ही या देह से देह रमने और फिर से पाँव तक कूदने की प्रक्रिया । मानिक और मान-परक विरह-अनुभवियों के साथ स्पष्ट और ठोस संयोग को जोड़कर कवि ने प्रेम की परिपूर्णता की अभिव्यक्ति की है किन्तु संयोग दाणों का यह क्वाकृत - अभिव्यक्ति यौन-श्रान्ति का पर्याय भी कहा जा सकता है जो अपने आप में एक बहुत सांख्यिक कदम है ।

श्रीनिवास मानव की 'कल का दर्द' का काव्य-नायक कहा जा सकता है । सर्वेश्वर ने जिस मानव की प्रस्तुत किया है वह श्रीनिवास है, पोखित है, ज्वेदित भी है किन्तु प्राप्य को पाने के अपने प्रयत्नों में संघर्षों से भुल मोड़ना उसने नहीं सीखा है । 'कल का दर्द' का सर्वशरीर कहाँ किसी मोड़िये की सुत काँती का सामना कर रहा है, कहाँ रौंटा के दो टुकड़ों के तिर तार टपका रहा है और कहाँ घूत की तरह पैंतों से रौंदा जा रहा है । इस मानव की यह विवेकता है कि वह अपने ऊपर होने वाले अनाचारों के विरुद्ध विद्रोह हेतु देने का सत्कर्तृ से युक्त है । श्रीनिवास का स्वयं जान है और अपने से टकराने वाली प्रत्येक शक्ति की जताकर साक कर सकता है । कवि जहाँ उसे संतुष्ट होकर श्रान्ति करने की प्रेरणा देता है वहीं श्रान्ति के परिणाम की चीन्हा भी वह कर देता है — 'कल के धिरमोर, पैरों पटने ।'

'कल का दर्द' के काव्य-नायक की हम लघु-मानव कह सकते हैं पर उसकी लज्जा केवल आर्थिक जीवन में ही है । सर्वेश्वर का विश्वास है कि यह मानव अपने संघर्षों में अतन्त अक्षय होना, अतन्त तानाशाही-अक्षय्य उसकी संतुष्ट श्रान्ति से नष्ट हो जायेगा, जान को तीन धिर-मोर की दूर है वे ही कल श्रीनिवासों के पैरों के नीचे होने और जाने वाले कल ही श्रीनिवास मानव का होना ।

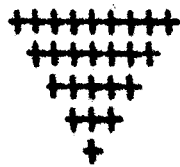
**जीवित -मानव** के प्रति सहानुभूति और वापस कवि का अपनी आन्तरिक चीज है का: स्वयं अपनी विज्ञान का कवि स्वयं की जीवन संघर्षों के अनुभव जीवित करने की इच्छा नहीं है। यह तो अनुभूतियों का संचय वाक्य है जो बाहे -अन्य है उनके प्रत्येक संग्रह में प्रकट होता रहा है। 'काल का दर्द' में इसकी पहचान अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और व्यापक है। विशेष उल्लेख्य बात यह है कि समाज की अन्य अनेकानेक समस्याओं की लेकर किए चिन्तन और मनन के अतिरिक्त 'काल का दर्द' का कवि राष्ट्रीय-समस्याओं से उदासीन नहीं है। वह अपने राष्ट्र की समस्याओं की लेकर चिन्तित और उनके निराकरण के लिये सतत प्रयत्नशील है।

**प्रकृति** की लीर आकृष्ट होने के पीछे सम्भवतः कवि का एक उद्देश्य है और वह उद्देश्य है प्रतीक-चयन का। जैन और वैज्ञान, दोनों प्रकार के प्राकृतिक - प्रतीकों का उपयोग सर्वेश्वर ने किया है। नवीन, मौलिक प्रतीकों के अतिरिक्त रात, बादल, रौशनी, धीरा आदि अनेक पारम्परिक - प्रतीकों का प्रयोग भी 'काल का दर्द' में मिलता है। यह बात लीर है कि यह प्रतीक - योजना कहीं भी दुर्लभ, दुर्लभ होकर कवि और पाठक के मध्य दोबार नहीं बन पाती अपितु सुस्पष्टता और सुनीयता के कारण कुछ अधिक आकर्षित करती है।

**संदर्भ वैयक्तिक - प्रेम** का ही या प्रकृति-प्रेम का, राष्ट्र-प्रेम का ही कवि मानव - प्रेम का — प्रायः हर एक सर्वेश्वर की कथुर्षा साक्षिण्या, मानकता, युद्धा आदि ने उनकी कविता की सामर्थ्य और शक्ति प्रदान की है। सर्वेश्वर नवी कविता के उन जोड़े से कवियों में से हैं जिन्होंने अनुभूति की प्रामाणिकता के नाम पर लीर वैयक्तिकता के चिन्ता में न उलझकर मानव-सत्य की अपनी कविता का कथ्य बनाया है। वही कारण है कि 'काल का दर्द' की मानकता और वैयक्तिकता

अतिरंजना पूर्ण या संकीर्ण नहीं है अपितु व्यापक और संतुलित है । यह आकस्मिक नहीं है कि " जंगल का दर्द " नयी कविता के मुहावरे की अपेक्षा सत्तरोत्तरी युवाकविता के क्षेत्र के अधिक निम्न जा पड़ता है । इसका मुख्य कारण व्यक्तिवादी जमीन को छोड़कर कवि का मानववादी धरातल पर उतरना है ।

चाहे कथ्य और वैचारिकता का प्रश्न हो अथवा सामाजिक प्रतिबद्धता की भावना के अनुष्म तोले, सजीव और लोक जीवन से सम्बद्ध विम्बों का प्रश्न हो — " जंगल का दर्द " सत्तरोत्तरी कविता का प्रतिनिधित्व करता है । भाषा के धरातल पर भी कवि आम आदमी से जुड़ा है । मुक्तिबोध, धूमिल, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर आदि कविधों से उनकी इस दृष्टि से तुलना भी की जा सकती है । वस्तुतः सामाजिक प्रतिबद्धता, वैचारिक नवीनता, मानववादी संवेदना के धरातलों और तदनुकूल शैलिक संग्रहण के कारण "जंगल का दर्द" सत्तरोत्तरी काव्य की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सर्जना है ।



सातवां प्रकरण

परिशिष्ट

( व० ) उपवीच्य ग्रन्थ

( भा० ) उपस्कारक ग्रन्थ



परिशिष्ट

( व ) उपजीव्य ग्रन्थ :-

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - जंगल का दर्द , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७६ ।

( वा ) उपस्कारक ग्रन्थ :-

( क ) हिन्दी :-

श्री क्लेश	कंतरा, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली , १९७५ ।
“	त्रिशंकु , सरस्वती प्रेस बनारस, १९४५ ।
“	दूसरा सप्तक, प्रगति प्रकाशन दिल्ली, १९५१ ।
“	तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, १९५६ ।
वज्रि कुमार	कविता का जीवित संसार , वन्दार प्रकाशन दिल्ली, १९७२ ।
रमिल बन्स	माक्सवाद क्या है ? ( अनु० जीमप्रकाश संगत ) , पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १९७६ ।
कैलाश वाजपेयी	देहान्त से हटकर , वन्दार प्रकाशन दिल्ली, १९६७ ।
कृष्णातात हंस	प्रगतिवादी काव्य साहित्य, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९७१ ।
गोविन्द रज्जीश	समसामयिक हिन्दी कविता: विविध परिदृश्य, देवानगर प्रकाशन, जयपुर , १९७३ ।
गंगा प्रसाद पाण्डेय	महाप्राण निराता, साहित्य संसद प्रयाग, सं० २००६ ।

- नववीस पुष्प नई कविता: रूकम्य और समन्याय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, १९६६ ।
- देवी शंकर लक्ष्मी श्री देवराज विवेक के रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, १९६६ ।  
संस्कृति का वास्तविक विवेचन, प्रकाशन अ्युरी सूचना विमान, उत्तर प्रदेश, १९५७ ।
- “ नामवर सिंह कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १९७४ ।
- “ नीरंज मोहन विद्रोह और साहित्य, साहित्य भारती दिल्ली, १९७४ ।
- “ नवल किशोर मानववाद और साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, १९७२ ।
- “ एन० रवीन्द्रनाथ मानववाद और हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन दिल्ली, १९७६ ।
- “ प्रकाश दीपावली अस्तित्ववाद और नयी कविता, अनादि प्रकाशन अलाहाबाद प्रथम संस्करण
- “ प्रभाकर श्रीविय प्रसाद का साहित्य: प्रेम तात्त्विक दृष्टि, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, १९७५ ।
- “ भारत धुनण कुवाले- एक उठा हुआ हाथ, लोकभारती प्रकाशन अलाहाबाद, १९७५ ।
- “ मुक्तिबोध नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, १९७१ ।
- “ मार्क्स एनीस कम्युनिस्ट पार्टी का पीछाणा पत्र, प्रगति प्रकाशन मारुकी
- “ मोहन चन्द्र राय मानववाद और साहित्य, आराधना प्रकाशन वाराणसी, सं० २०१३ ।
- “ मोहन साहू अस्तित्ववाद- कर्मवाद के काबु तक, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया, १९७५ ।
- राधकान्त दुबे चिन्तामणि-बहका मान, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड प्रयाग, १९७१ ।

- जी रामचन्द्र सुन्दर रास भीमाष्टा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २०११ ।
- “ रामचन्द्र मिश्र बाबू का हिन्दी साहित्य: संवेचना और शिल्प, अमिनव प्रकाशन दिल्ली, १९७५ ।
- “ रामेश्वरदास लण्डेत्वात- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सीम्बर्य ,
- “ रामचन्द्र राय नई कविता : उद्भव और विकास, विहार हिन्दी ग्रन्थ क्लबकी पटना, १९७४ ।
- “ राहुत साहित्यायन- मानव समाज, लोकमार्गी प्रकाशन कलकत्ताबाद, १९७७ ।
- “ रामचन्द्र कर्तव्य हिन्दी नव लेखन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९६० ।
- “ रणजीत हिन्दी की प्रगतिशील कविता, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली एवं प्रगतिशील प्रकाशन दिल्ली , १९७६ ।
- “ लक्ष्मीकान्त वर्मा नयी कविता के प्रतिमान, भारतीय प्रेस प्रकाशन कलकत्ताबाद, सं० २०१४ ।
- “ “ नये प्रतिमान पुराने <sup>निकष</sup> विमर्श, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६६।
- “ लीलाधर गुप्त पारम्पर्य साहित्यालोचना के सिद्धान्त , हिन्दुस्तानी स्कैली कलकत्ताबाद, १९६७ ।
- “ विजयेंद्र स्नातक कवि काव्य की रूपरेखा, कर्पोली पब्लिकेशन्स जयपुर, १९६५ ।
- “ बी० नारायण कृष्ण हिन्दी की नयी कविता , अनुसंधान प्रकाशन जानपुर, १९६४ ।
- “ रघुनाथ सुन्दर मिश्र अस्तित्ववाद और द्वितीय सम्राट्तर हिन्दी साहित्य , विद्या प्रकाशन मथुरा दिल्ली, १९७१ ।
- “ लक्ष्मी माधुर कवी और कवि , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, १९६६ ।
- “ लक्ष्मी माधुर आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्ति , विमर्श पुस्तक मंदिर जानपुर, १९६४ ।

जी सुबेकर दयाल सुखेना - काठ की घंटिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी,

१९५६ ।

- “ “ कुल रंग कुल गंध, सिपि प्रकाशन दिल्ली, १९७४ ।
- “ “ कविताएं - १ , राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १९७८ ।
- “ “ कविताएं - २ , राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १९७८ ।
- “ “ कुजानी नदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १९७८ ।
- “ “ गर्म हवाएं ,
- “ सिकंदर प्रसाद श्यामावातसर काव्यपारा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९७४ ।
- “ सरजू प्रसाद भिन्न आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व वक्र, पुस्तक संस्थान कागपुर, १९७७ ।
- “ सावित्री सुवत संत साहित्य की सांभाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन लखनऊ, १९६३ ।
- “ हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, उत्तरप्रदेश कपुर एण्ड सन्स कपुर, १९५६ ।
- “ हरिचरण का नयी कविता नये परासत , पद्म प्रकाशन कपुर, १९५५ ।
- “ “ नयी कविता का मूलधार : परम्परा और प्रगति की मुनिता पर , वाता प्रकाशन गृह , नई दिल्ली , १९७२ ।

**ENGLISH BOOKS :-**

- Christopher Caudwell**     **Studies in a Dying Culture,**  
John Lane the Bodley Head, 1951.
- Clemens Dutt.(Editor)-** **Fundamentals of marxism and Leninism,**  
Foreign Languages Publishing House,  
Moscow.
- Corliss Lamont**     **Humanism as a Philosophy-**  
Watts & Co. London, Third edition,  
1952.
- F.C.S.Schiller**     **Humanism,**  
Macmillan London, Second Edition, 1952.
- H.J.Blackburn**     **Six Existentialistic Thinkers,**  
Routledge and Kegan Paul, London,  
1952.
- Jacque Maritain**     **True Humanism,**  
Geoffrey Hoes London, 1954.
- Karl Marx and F.Engels-** **Selected works ( Volume I ),**  
Foreign language publishing house,  
London, 1951.
- Maurice Cornforth**     **Dialectical Materialism ( Part II ),**  
National Book Agency Ltd. Calcutta,  
1954.
- M C Douglas**     **An outline of Psychology,**  
Methuen & Co. Ltd. London, 1949.

**William Henry Hudson An Introduction to the Study of  
Literature,**

**George G. Harrap & Company London,  
1954.**

**न- संस्कृत पुस्तक एवं कौशल ग्रन्थ :-**

ऋग्वेद  
यजुर्वेद  
अथर्ववेद  
महर्षि नारद- नारद मति सूत्र  
जी जीम प्रकाश शर्मा ( सं० ) - साहित्यिक कौशल,  
साहित्य सभा राई, फिरोजशाह रोड, दिल्ली, १९७३ ।  
डा० नरेन्द्र-(सं०) मानविकी पारिमाणिक कौशल( साहित्य खण्ड ),  
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली , १९६५ ।  
जी पीरेन्द्र वर्मा ( सं० ) हिन्दी साहित्य कौशल- भाग- १,  
ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी-१, द्वितीय संस्करण  
सं० २०२० ।

**Ervin A. L. Saligson**

**Encyclopedia of Social Science,  
Part VII- VIII , The Macmillan ,  
Company New York.**

घ- पत्र - पत्रिकाएं :-

- आलोचना - बिस्ती  
 कल्पना - हैदराबाद  
 प्रकीर्ण - मीरपुर  
 प्रकाशन समाचार-बिस्ती  
 मधुमती - उदयपुर  
 समीक्षा - पटना  
 संवेक्षण - जयपुर

South Asian Digest of Regional Writing,  
 Heidelberg - West Germany,  
 Soviet Literature, 1972.